Rs 6.00

प्राकृतिक चिकित्सा के चमत्कार

•

लेखक तथा संपादक

महाबीर प्रसाद पोद्दार

•

१९८२

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
एन-७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली

•

दूसरी बार : १९८२
मूल्य : ६.०० रुपये

•

मुद्रक
अग्रवाल प्रिंटर्स, दिल्ली

प्रकाशकीय

'मण्डल' से अब तक स्वास्थ्य-संबंधी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उन्हें पाठकों ने बहुत पसन्द किया है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि इन पुस्तकों की मांग बराबर बनी रहती है। हमें यह कहते हुए बड़ा हर्ष होता है कि पाठकों को ये पुस्तकें विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध हुई हैं और हो रही हैं।

प्रस्तुत पुस्तक इस साहित्य की अत्यन्त मूल्यवान कृति है। इसके पहले खण्ड में बताया गया है कि रोग क्यों होते हैं और उनसे किस प्रकार छुटकारा पाया जा सकता है। दूसरे खण्ड में विभिन्न रोगियों के अनुभव दिये गए हैं।

स्वास्थ्य की समस्या का प्रत्येक व्यक्ति के जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि हमें रोगों की और प्राकृतिक चिकित्सा की सरल और कम खर्चीली विधि की जानकारी हो तो हम आसानी से बहुत-से रोगों से मुक्त हो सकते हैं। इस दिशा में यह पुस्तक बड़ी मूल्यवान है।

कागज, छपाई, जिल्दबन्दी आदि के दामों में असामान्य वृद्धि हो जाने पर भी हमने पुस्तक का मूल्य लागत से कम रक्खा है। यह 'प्रकाश ट्यूब्स लिमिटेड के निदेशक श्री जयप्रकाश के आंशिक सहयोग से ही सम्भव हो सका है। हम उनके आभारी हैं।

हमें पूरा विश्वास है कि अनुभवी लेखक की लिखी इस उपयोगी कृति का पाठक पहले से भी अधिक स्वागत करेंगे और इसे बार-बार छापने का अवसर देंगे।

—मंत्री

भूमिका

(पहले संस्करण से)

प्राकृतिक चिकित्सा पर हिन्दी में एक पूरी पुस्तक लिखने की मेरी इच्छा बहुत दिनों से है। इसके लिए अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध सैकड़ों पुस्तकें पढ़ीं। तीन साल (१९४०-४२) जेल में तो मेरे पास प्राकृतिक चिकित्सा-संबंधी एक साधारण पुस्तकालय-जैसा ही रहा। श्री घनश्यामदासजी बिड़ला ने प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तकों का अपना संग्रह मुझे वहां भेज देने की कृपा की थी। जेल से ही मैं दो साल तक 'जीवन-साहित्य' का (जब वह प्राकृतिक चिकित्सा-प्रधान पत्र था) संपादन भी करता रहा। अपने अनेक राजनैतिक साथी कैदियों पर इस चिकित्सा के प्रयोग करता रहा। इसके लिए गोरखपुर-जेल के तत्कालीन सिविल सर्जन सुपरिंटेंडेंट श्री कक्कड़ ने एक दिन मजाक में कहा भी कि आप प्रतिद्वंद्वी सरकार की भांति यहां प्रतिद्वंद्वी अस्पताल करना चाहते हैं क्या?

उस समय प्राकृतिक चिकित्सा पर एक पुस्तक लिखनी शुरू की थी। सौ-सवासौ पृष्ठ लिखे भी गये, पर वहाँ लिखने में कम, पढ़ने में मन अधिक लगता था। यों भी, मुझे पढ़ना अधिक और लिखना कम पसन्द है। लिखने की जरूरत जान पड़ने पर भी, थोड़ा और पढ़ लूं, यह पढ़ लूं, वह भी पढ़ लूं, सोचते हुए पढ़ता ही रह जाता हूं। कुछ मित्र उलाहना भी देते हैं—अरे, हमेशा जमा ही किये जाओगे, कुछ खर्च भी करो, यानी लिखो। पर शायद, मेरी प्रकृति कंजूस है, स्वयं निकलता नहीं मुझसे। जबरदस्ती करनी पड़ती है मित्रों को निकलवाने में। 'कब्ज, कारण और निवारण' पुस्तक का यही हुआ। कुछ हिस्सा लिखकर रखा था, आये यशपालजी, ('जीवन साहित्य' के वर्तमान संपादक) उठाकर ले गये, प्रेस से कंपोज कराकर प्रूफ भेज दिये। लाचार किताब मुझे पूरी करनी ही पड़ी।

उसके प्रकाशन से उत्साहित होकर उन्होंने दूसरी किताब की मांग

की। मैंने कहा—भाई, मुझे कभी भयंकर कब्ज था, भुक्त-भोगी था मैं उसके बुरे परिणामोंका, प्राकृतिक चिकित्साकी बदौलत उससे मैंने छुटकारा पाया था, इसलिए उसपर लिखना तो उचित ही था। अब मुझे प्राकृतिक चिकित्साका विशेष प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने दीजिए, तब दूसरी किताबकी उम्मीद कीजिए।

जवाब मिला—अड़तीस सालसे अपनेपर और लोगोंपर प्राकृतिक चिकित्साके लाभ आप देख रहे हैं, बारह सालमें 'आरोग्य-मंदिर'से आपके सामने हजारों रोगियोंने इस चिकित्सासे फायदा उठाया है, फिर भी अभी आप प्रत्यक्ष ज्ञानकी दुहाई देते हैं!

मेरा प्रत्युत्तर था—अभी बहुत बाकी है, माफ करें, अपनी कमीको मैं आपसे ज्यादा जानता हूं

इस तरह कहते-सुनते कई साल निकल गये। संयोगोंने चार साल पहले मुझे जसीडीह (संथाल परगना) ला बिठाया। यहां ६०-७० रोगियोंका एक प्राकृतिक चिकित्सालय मेरे निरीक्षणमें चलने लगा। इस बीच मैंने सैकड़ोंको, केवल अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंसे ही नहीं, बल्कि जीवनसे भी निराश रोगियोंको प्रकृतिकी कृपासे आराम होते देखा।

यह सब देख-सुनकर प्राकृतिक चिकित्सापर एक पूरी पुस्तक लिखनेकी इच्छा फिर जागी। लेकिन वही पुरानी आदत 'आड़े' आई कि कुछ और पढ़ लूं। इस बार आयुर्वेदके ग्रंथ एकत्र किये। अथर्ववेद भी मंगवाया। इन सबमें प्राकृतिक चिकित्साके अधिकतर सिद्धांत पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। पास ही मिल गई वस्तु गोपथ ब्राह्मण (१४) में कहा है—"अथार्वाङिनमेतास्वेवाऽप्स्वन्विच्छेति"—अब पास ही उसे ढूंढो। वह पास ही है। प्राकृतिक चिकित्साका मूल तत्त्व तो यही है कि हमें आरोग्यकारी उपादानोंके लिए दूर जानेकी जरूरत नहीं, वे पास ही हैं। जिन पंच महाभूतोंसे हमारा शरीर निर्मित हुआ है, उन्हींसे उसकी चिकित्सा होनी चाहिए।

सौ-डेढ़सौ वर्षोंके अंदर लिखे गए अंग्रेजी ग्रंथोंमें भी इस विषयकी कम सामग्री नहीं मिलती है, लेकिन यह देखकर कितनी खुशी होती है कि पांच हजार साल पहले तकके इन ग्रंथोंमें वे तत्त्व किस खूबसूरतीसे

दिये गए हैं। प्राकृतिक चिकित्साके प्रचलित रूपके महान् आचार्य जर्मनी-निवासी लूई कूनेने अपनी प्रमुख पुस्तकका नाम 'New Science of Healing' (नवीन चिकित्सा-विज्ञान) रखा था, यदि उन्हें इस सामग्रीका पता होता तो शायद वह उसे Revived Science of Healing (चिकित्सा-विज्ञानका पुनरुद्धार) नाम देते।

लेकिन कूनेने अपनी किताब किताबें पढ़कर नहीं लिखी थी, सब अनुभव-के आधारपर लिखा था। जान पड़ता है, कूनेने बिना अनुभवके कुछ लिखनेकी 'हिमाक़त' नहीं की थी। उनकी जर्मन पुस्तकके पहले संस्करणके (१८९१) अंग्रेजी अनुवादमें 'धूप-स्नान' का जिक्र नहीं है। उस वक्ततक शायद उन्होंने उसका प्रयोग न किया होगा। पर ज्योंही उन्हें इसके लाभका ज्ञान हुआ वे अपनी पुस्तकके आगामी संस्करणमें धूप-स्नानके महत्वकी विस्तारसे चर्चा करनेमें न चूके। जो वस्तुएं पहले उन्हें, अथवा उनकी जानकारीमें औरोंको भी, अज्ञात थीं, वे सब उनके लिए, एक प्रकारसे नई ही थीं। प्राकृतिक चिकित्साकी वर्तमान सरल विधियोंके लिए, और लाखोंपर प्रयोग करके उन्हें सिद्ध कर दिखानेके लिए, हमें उन विदेशी आचार्योंके सामने सिर झुकाना पड़ेगा। आयुर्वेदमें पंचकर्मकी विधियां बतलाई गई हैं, लेकिन वे दुस्साध्य हैं। और यही कारण है कि आज हजारोंमें कोई एक वैद्य भी 'पंचकर्म' का आश्रय लेता नहीं दिखाई देता।

लगता है कि मेरी पढ़ाईका अंत आनेवाला नहीं है। तब, बड़ी पुस्तक लिखनेके लिए न रुककर, छोटी-छोटी पुस्तकोंके रूपमें, जो अबतक अनुभव किया है या जो पढ़ता, अनुभव करता जाऊं, लिखता जाऊं, इस विचारका परिणाम यह पुस्तक है।

प्राकृतिक चिकित्सा सिखानेको शिक्षणालय खोलनेकी चर्चा जब-तब सुनाई देती है, आशा है उन शिक्षणार्थियोंके लिए, तथा दूसरे प्राकृतिक चिकित्साको समझना-समझाना चाहनेवालोंके लिए भी, यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। भारतीय वैद्य-समुदायको भी, इस पुस्तक द्वारा मालूम होगा कि प्राकृतिक चिकित्सा उनके लिए कोई बाहरी वस्तु नहीं है। यदि दवाके

बदले वे इसे अपनायें तो अपने रोगियोंका वे अधिक हित करेंगे ।

कभी-कभी लोग इस पद्धतिपर यह शंका करते पाये जाते हैं कि इससे नीरोग होनेमें बड़ा समय लगता है ।

इस गलतफ़हमीका कारण यह है कि अबतक इस पद्धतिका आश्रय लेनेवालोंमें सौमें निन्नानवे व्यक्ति प्रायः पुराने—कभी-कभी तो दस-दस बीस-बीस सालके रोगी होते हैं, हर तरफसे हारे—निराश हुए । इनका सिर्फ दो-तीन महीनेकी प्राकृतिक चिकित्सासे अच्छे हो जाना क्या देरका काम माना जाना चाहिए ? कहां दस साल यानी १२० महीने दवा करके भी सिर्फ निराशा ही नहीं, और नये-नये रोगोंका पीछे लग जाना और कहां दो-तीन महीनोंमें ही रोगका समूल नाश हो जाना, इसे देर कहेंगे या जल्दी ? साधारण रोगमें या रोगके आरंभमें ही प्राकृतिक उपचार अपनानेसे तो दिनोंमें रोगका निवारण होता है, इसके सैकड़ों उदाहरण सामने हैं ।

दूसरी नासमझी है कि प्राकृतिक चिकित्सा संयम बहुत मांगती है—पहले और पीछे भी । जिस चिकित्साकी बुनियाद ही यह है कि संयमके अभावमें ही रोग होते हैं उसके संयमकी मांग करनेमें आश्चर्य क्या है ? संसारमें कोई भी अच्छा काम असंयमी होकर सिद्ध नहीं हो सकता तो अकेला स्वास्थ्य ही उसमें कैसे अपवाद हो सकता है ? लेकिन संयम द्वारा अपना स्वास्थ्य सुधारकर बराबर अपनेको स्वस्थ रखनेवालोंने कभी इसकी शिकायत नहीं की कि उन्होंने कुछ खोया है । उन्होंने अपने जीवनमें निरंतर आनंदवृद्धिकी ही बात कही है ।

इस पुस्तकके पहले भागमें रोग, उसका कारण, निवारण तथा रोग एवं उपचारोंकी एकताके संबंधमें प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धांत और उनके समर्थनमें वेद, आयुर्वेद तथा संसारके अनेक महापुरुषोंके मत दिये गए हैं । दूसरे भागमें पाठकोंके सामने १०१ रोगियोंके अनुभव दिये जा रहे हैं, जिन्होंने इन सिद्धांतोंपर चलकर लाभ उठाया है । इनमेंसे अधिकांश विवरण रोगियोंके अपने हाथके लिखे हैं—संपादकने केवल भाषा सुधार दी है ।

इन विवरणोंसे पता चलता है कि इन रोगियोंमें से बहुतोंने पहले नामी - गिरामी डाक्टर, वैद्योंकी दवाओंके पीछे, अपने सामर्थ्यके अनुसार काफी धन---एकने तो एक लाख तक---धन, साथ ही अपना वर्षोंका---किसी-किसीने तो बीस-बीस वर्ष---समय खपाकर भी कुछ फायदा नहीं उठाया था, उल्टे, "मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की।" पहले एक-दो रोग थे तो दवाओं द्वारा---खासकर डाक्टरी दवाओंसे दबाये जानेपर---रोगोंकी संख्या कई गुना बढ़ गई। दवासे रोग-निवृत्तिके भ्रमका खण्डन इन विवरणोंसे भली-भांति हो जाता है। मनुष्य अच्छा तो होता है प्रकृतिसे---अपने आप---अपनी जीवनी शक्तिसे, दवा और चिकित्सक झूठा यश लेते हैं।

प्रायः सब प्रकारके, कठिनतम समझे जानेवाले रोगोंका इलाज एक ही विधिसे, पूर्ण सफलताके साथ होना रोगोंकी एकताके सिद्धाँतका बहुत बड़ा प्रमाण माना जाना चाहिए।

इस पुस्तकमें कई ऐसे उदाहरण भी दिये गए हैं, जिनमें, दिनोंमें और किसी-किसीमे तो घंटोंमें रोगीको इस पद्धतिसे लाभ मिला है, बिना किसी खर्च और परेशानीके। कुछ देर सिर्फ उन्हीं रोगोंमें लगती है, जो बहुत पुराने हो जाते हैं।

अनेक रोगियों ने अपने विवरणोंमें इस चिकित्साके प्रति इस बातके लिए कृतज्ञता प्रकट की है कि इससे उन्होंने नया जीवन, नई स्फूर्ति पाई और एक नई जीवन-पद्धति सीखी।

अनेक व्यक्तियोंके दो तुलनात्मक चित्रों से देखा जा सकता है कि उनका पहलेका बेडौलपना जाता रहा। आगे निकली हुई तोंद पिचक गई, चेहरा बदल गया। इस उपचारसे त्वचामें एक आकर्षण आ जाता है। सौंदर्य बढ़ जाता है। अपनी बदली हुई सुंदर आकृतिको देखकर स्वयं रोगी-को और उसके कुटुंबियोंको भारी खुशी होती है।

दीर्घकालीन रोग व्यक्तिको बदसूरत बना देता है। दवा अपने असर-से रोगको अंदर दबा-दबाकर उसके बेडौलपनेमें वृद्धि करती है। आकृति में स्वाभाविकता आना ही निरोगिता की सच्ची कसौटी है।

प्राय: रोगियोंने अपने विवरणोंमें डाक्टर, वैद्योंके नाम दिये थे, लेकिन उनमेंसे अधिकांश अनावश्यक समझकर छोड़ दिये गये हैं। यदि किसीका रह गया हो तो उसके लिए हम उन चिकित्सकोंसे क्षमा चाहते हैं। विवरणों के छापनेके बारेमें प्राय: रोगियोंसे पूछा जा चुका है। जिनसे हम नहीं पूछ सके, आशा है, वे हमें क्षमा करेंगे।

इस पुस्तककी तैयारीमें मुझे जिन अनेक साथियों और मित्रोंसे मदद मिली है, उन सबके प्रति मैं हृदयसे आभारी हूं।

आयुर्वेदाचार्य डाक्टर भास्कर गोविंद घाणेकर एम. बी. बी. एस., बी. एस-सी. (हिंदू विश्वविद्यालय—काशी) ने मेरी 'कब्ज—कारण और निवारण' पुस्तककी भांति ही इस पुस्तकके भी संपूर्ण प्रूफ पढ़कर यत्र-तत्र संशोधन करनेका कष्ट स्वीकार किया, इस कृपाके लिए मैं उनका अति कृतज्ञ हूं।

सुप्रीम कोर्टके माननीय जज श्री बी. पी. सिंह महोदयके प्रति भी मैं अपनी आंतरिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूं, जिन्होंने प्राकृतिक चिकित्साकी विशेषताओंपर प्रकाश डालनेवाला एक लेख इस पुस्तकके लिए लिख देनेकी कृपा की है।

अंतमें सर बद्रीदासजी गोयनकाके सुपुत्र श्री केशवप्रसादजी गोयनका (ट्रस्टी श्रीरामचंद्र हरीराम गोयनका चैरिटबुल ट्रस्ट, कलकत्ता) के प्रति भी मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूं, जिन्होंने अपनी धर्मपत्नी स्व० रुक्मिणीदेवी गोयनकाके स्मारकमें दो लाख रुपयेकी लागतसे निर्माण कराये गए जसीडीहके इस स्थानको बिना किसी शर्तके प्राकृतिक चिकित्साके प्रयोगके लिए हमें सौंप दिया। इतना ही नहीं, यहांकी किसी कमीकी ओर उनका ध्यान दिलाये जानेपर बड़ी खुशीसे वह उसकी पूर्ति करते रहते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा-केंद्र **—महाबीरप्रसाद पोद्दार**

जसीडीह (बिहार)

१ जनवरी, १९५८

प्रमाणग्रन्थ

संस्कृत

चरक; सुश्रुत; अष्टांगहृदय;

काश्यपसंहिता; भावप्रकाश;

भावप्रकाशनिघंटु; शार्ङ्गधर संहिता; अथर्ववेद

हिंदी

आरोग्य साधन	(गांधीजी)
आरोग्यकी कुंजी	,,
आत्मकथा	,,
गांवका आरोग्य	(विनोबाजी)
अथर्ववेद चिकित्सा-शास्त्र	(प्रिय रत्न आर्ष)

अंग्रेजी

New Science of Healing	Louis Kuhne
Nature Cure	Lindlhar
Bilz Encyclopedia 2 parts	
Royal Road to Health	
New Dictionary of Thoughts	
Good Health	(Ellis Barker)

प्राक्कथन

कुछका कहना है—"प्राकृतिक चिकित्सामें क्या धरा है।" दूसरे इसमें बहुत-कुछ बतलाते हैं। मैं इसी दूसरे मतका अनुयायी हूं। अपने जीर्ण रोगोंके निमित्त अन्य सब प्रणालियोंसे हारकर—कोई लाभ न पाकर—ही मुझे प्राकृतिक चिकित्साकी शरण लेनी पड़ी। देश, विदेशमें प्रचलित अनेक चिकित्सा-प्रणालियोंके अध्ययन और प्रयोगके उपरांत अपने व्यक्तिगत अनुभवोंके आधारपर ही इसके पक्षमें मेरा मत बना है।

मेरा विश्वास है कि मानव-रचित समस्त संस्थाओंकी भांति, कोई भी चिकित्सा-प्रणाली, पूर्ण नहीं कही जा सकती। सत्यके अनेक पहलू होते हैं, हर व्यक्ति सब पहलुओंको नहीं देखता, शायद देख सकता नहीं। भिन्न-भिन्न नामधारी चिकित्सा-प्रणालियोंके आविष्कारक भी सत्यका अल्पांश ही देख पाये, संपूर्ण नहीं। अतः, किसी एक चिकित्सा-प्रणालीको सर्वांगपूर्ण बताना, और अन्य प्रणालियोंको अनाड़ी कहकर कोसना, सत्यका अपलाप है। हमें उदार रहकर सब पद्धतियोंकी विशेषता समझनेका यत्न करना चाहिए। जीर्ण रोगमें अति उपयोगी पद्धतिके, किसी समय उग्र रोगमें नाकामयाब होनेपर, किसी दूसरी व्यवस्थाकी आवश्यकता हो सकती है। हमें किसी एकको एकमात्र या सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा-प्रणाली माननेकी भूल नहीं करनी चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धांत गिने गिनाये हैं और अत्यंत सरल। हर कोई, थोड़ी समझ रखनेवाला भी, उन्हें आसानीसे समझकर उपयोगमें ला सकता है।

इस चिकित्सामें रोगको शत्रु नहीं माना जाता। आमतौरसे तो लोग रोगके नामसे ही घबराते हैं। पर क्या यह सत्य नहीं है कि बहुत बार अशुभ-के साथ शुभ रहता है? बीमारी अपने साथ पीड़ा—तकलीफ लाती है जरूर,

पर इसीके साथ वह हमारे लिए यह चेतावनी भी तो लाती है कि तुम्हारे शरीरकी भीतरी व्यवस्था ठीक—प्रकृतिके अनुकूल नहीं चल रही है। वह एक सजग प्रहरीका-सा कार्य करती है। रोग प्रकृतिके साधारण नियमोंके उल्लंघनकी एक सूचना मात्र है। प्रकृति न्याय-परायण है और इस प्रकार निष्ठुर भी। उसके नियम भंग करके दंड भोगना अनिवार्य है। उसकी दी हुई हल्की चेतावनियोंपर ध्यान देकर, यानी अपनी खान-पानकी आदतोंमें सुधार करके हम उसके कठोर दण्ड-प्रहारसे बच सकते हैं। प्राकृतिक दर्शनकी दृष्टिसे रोग शरीरमें संचित दोषको दूर करके उसे पुनः स्वस्थ करनेका एक प्रयत्न मात्र है। रोगका साधारण आक्रमण तो प्रकृतिकी अप्रकट कृपा ही मानी जानी चाहिए। प्रत्यक मनुष्य कुछ शारीरिक और मानसिक विशेषताएं लिये हुए जन्मता है। उनके सदुपयोगका फल अच्छा और दुरुपयोगका फल प्रायः भयानक होता है।

अंग्रेजी में कहा गया है, We are what we eat—हम भोजन से ही बने हैं। यह ध्रुव सिद्धांत है कि यदि हम उचित प्रकारका भोजन, उचित मात्रामें और उचित मेलमें (किस चीजके साथ क्या चीज खानी चाहिए, इसका विवेक रखकर) खायं तो हमारा शरीर, और परिणामस्वरूप हमारा मन भी, स्वस्थ और सबल रहेगा। हमारी खुराकमेंसे शरीर के लिए आवश्यक तत्त्वोंके ग्रहण कर लिये जानेपर बाकी फुजला शरीरसे नित्य ठीक समयपर खारिज न होनेपर अंदर-ही-अंदर सड़ता है और हमारा शरीर एक मल-कुंड बन जाता है और इसके परिणामस्वरूप मनुष्यको अनेक रोग होते हैं। दूसरे शब्दों में, हमारे अधिकांश रोगोंका कारण कब्ज है। उससे बचना चाहिए। कब्ज और मंदाग्नि दोनों एक ही चीज हैं—एक सिक्केकी दो पीठें। कब्ज सभ्यताकी देन है, इस कथनमें कोई अतिशयोक्ति नहीं जान पड़ती। इस युगमें हम अपनी खुराकको बहुत मांज, घिस-छीलकर, उसका सार-सार खाते हैं। आटेमेंसे चोकड़, चावलमेंसे कण और लाल-पीली पर्त, तथा तरकारियोंमेंसे छिलके निकाल फेंकते हैं, भातमें-से मांड़ पसा दिया जाता है, तरकारियोंको उबालकर उनका पानी फेंक दिया जाता

है। इस प्रकार उनके अनेक 'विटामिन' यानी सत्त्वांश नष्ट करके, उनका मौलिक स्वाद खोनेके बाद, तरह-तरहके मसाले डालकर उन्हें स्वादिष्ट बनानेकी कोशिश की जाती है। वैसे निस्सत्त्व भोजनका भी, हम न परिमाणका ध्यान रखते, न मेलका। हम अपनी पाचन-शक्तिपर उसकी क्षमतासे कहीं अधिक भार लाद देते हैं। हमारी बहुत-सी खुराक बिना काम आये, बिना पचे—बिना अंग लगे—मलके रूपमें शरीरसे बाहर निकलती है। भोजन द्वारा शारीरिक और मानसिक शक्तिका आधार उसकी मिकदार नहीं, बल्कि खुराकका अंग लगना है। पाचन-शक्तिपर बेजा बोझ पड़ जानेके कारण हमारी आंतें ठीक समयपर मलको बाहर नहीं निकाल पातीं। इस प्रकार एक दुष्चक्रकी सृष्टि हो जाती है। अपचसे कब्ज और कब्ज़से अपच हो जाता है।

पाचन-शक्तिको स्वाभाविक अवस्थामें लानेमें हमें प्राकृतिक उपचारोंसे अनुपम सहायता मिल सकती है। उनसे लाभ उठानेके बाद हमें अपने शरीरकी आवश्यकता समझकर उसे इतना ही, और इस प्रकारका भोजन देना चाहिए, जो आसानीसे पचकर उसका रस बननेके बाद बचा हुआ अंश ठीक समयपर मलके रूपमें निकल जाय। हमारा स्वास्थ्य आंतों, गुरदों, फेफड़ों और त्वचाके छिद्रों द्वारा मल-निष्कासनका कार्य समुचित होनेपर ही बहुत-कुछ निर्भर है। इसके लिए हमें लंबी सांस लेनेका अभ्यास करना चाहिए, जिससे फेफड़े मजबूत हों। गुरदोंसे ठीक काम करानेके लिए यथेष्ट मात्रामें स्वच्छ जल पीना चाहिए। त्वचाके छिद्रोंको खुला रखनेके लिए स्वच्छ जलसे नित्य स्नान करना चाहिए और जब-तब भाप-नहान, धूप-नहान और सदा स्वच्छ हवाका सेवन करना चाहिए। पाचन-शक्तिके सुधार और कब्जसे छुटकारा पानेके लिए हमें नियमित कुछ आसन और शारीरिक व्यायामोंका सहारा लेना चाहिए।

स्वस्थ रहनेके लिए मनुष्यको शारीरिक और मानसिक श्रमका सामंजस्य रखना आवश्यक है। मानसिक श्रम अधिक करनेवालोंको शारीरिक श्रम करके उसका संतुलन करना चाहिए।

स्वास्थ्यके लिए स्थूल शारीरिक क्रियाओंका ध्यान रखनेके साथ-साथ आरोग्याभिलाषीके लिए काम, क्रोधादि मानसिक विकारोंके संयमका अभ्यास भी कम ज़रूरी नहीं है।

भोजनका प्रकार और उसकी मात्रा व्यक्तिकी आदतोंपर, उसके रहन-सहनके तरीकोंपर, उसके श्रमके अनुपातपर और उसके ढांचेपर निर्भर करती है। इस दृष्टिसे हरेकको अपना पथ-प्रदर्शक स्वयं बनना चाहिए। यह कथन बहुत सत्य है कि एक आदमी ४० सालकी उम्रमें अपना चिकित्सक आप बन जाता है अथवा मूर्ख बना रहता है। प्रौढ़ावस्थामें पहुंचते-पहुंचते मनुष्यको यह ज्ञान हो जाना चाहिए कि कैसे आहार-विहार द्वारा वह अपनेको स्वस्थ बनाये रख सकता है।

कहते हैं, चीनमें लोग स्वस्थ रहनेके लिए यानी रोगको दूर रखनेके लिए चिकित्सक रखते हैं। इसमें और रोगी होनेपर चिकित्सककी शरणमें जानेमें बड़ा फर्क है। हमारे देशमें भी ऐसी संस्थाओंकी बड़ी आवश्यकता है जो लोगोंको तंदुरुस्त रहना सिखावें—स्वस्थ रहनेके नियम बतलावें। ऐसी संस्थाओंपर किया गया व्यय अंतमें सूद, मूलसहित वसूल हो जायगा, क्योंकि इनके द्वारा औषधालयों और अस्पतालोंकी संख्या घटाई जा सकेगी यानी इनकी जरूरत ही बहुत कम रह जायगी। अमेरिकाके कालिफोर्निया प्रांतमें इस तरह की 'सन डाइट सैनिटोरियम' (Sun Diet Sanatorium) नामकी एक संस्था है, जो वहांवालोंके लिए अत्यंत लाभदायक सिद्ध हुई है। उसके मार्फत लोगोंमें स्वस्थ रहनेकी विधियोंका प्रचार किया जाता है और अस्वस्थ हो जानेपर उनकी स्वास्थ्य-प्राप्तिका उपाय।

हमें इस देशमें प्राकृतिक चिकित्साकी ऐसी संस्थाओंकी नींव डालनी चाहिए और उन्हें पनपाना चाहिए कि जिनका उद्देश्य बिना दवाके—मिट्टी, पानी, धूप, हवा, शारीरिक व्यायाम तथा मानसिक उपचारों द्वारा—लोगोंको नीरोग रहना और नीरोग करना सिखाना हो।

अंतमें "Prevention is better than cure" अर्थात्—"स्वस्थ रहना बीमार पड़कर अच्छे होनेसे कहीं बेहतर है"—सिद्धांतको सामने रखकर अपना कथन समाप्त करता हूं । आयुर्वेदके प्रसिद्ध ग्रंथ चरकमें भी कहा गया है—

"प्राज्ञः प्रागेव तत्कुर्याद्धितं विद्यायदात्मनः"—बुद्धिमान व्यक्तिको पहलेसे ही वह कार्य करना चाहिए कि वह स्वस्थ रहे, यानी रोगी न हो।

नई दिल्ली

—बी. पी. सिंह
(जज, सुप्रीम कोर्ट)

विषय-सूची

प्राकृतिक चिकित्सा
क्या व कैसे

: १ :

रोगके कारण

प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धांतानुसार, बाहरी आघातादिके सिवा, मनुष्य प्राय: आहार-विहारमें भूलें करनेके परिणाम-स्वरूप ही बीमार पड़ता है। इन भूलोंका कारण उसका अज्ञान और इंद्रियोंके विषयोंका लोभ होता है। समझदार समझे जानेवाले मनुष्य भी प्राय: जीभके स्वादमें पड़कर गलत चीजें खाते और कष्ट उठाते पाए जाते हैं।

मनुष्य अज्ञानवश, भाने या न भानेका बहाना बनाकर, जो नहीं खाना चाहिए, वह खाता है, और जो खाना चाहिए, वह नहीं खाता। लेकिन भाना या न भाना खुराकके चुनावकी कोई खास कसौटी नहीं है। किसीका स्वाद बिगड़ा न होनेपर ही यह कसौटी काम दे सकती है। पर बहुत लोग तो अपनी जीभके स्वादको इस तरह बिगाड़ लेते हैं कि उनकी जीभ गलत खानेकी ही मांग करती रहती है।

खुराक-सम्बन्धी मुख्य गलतियां

(१) मनुष्य प्राय: अधिक खाता है। कारण, वह जानता नहीं है कि उसके द्वारा किये जानेवाले श्रमके अथवा उसके ढांचे आदिके हिसाबसे, उसे रोज कितना और क्या-क्या खाना चाहिए। दूसरे, बहुत लोग इस भ्रममें पड़े रहते हैं कि अधिक खाना अधिक शक्ति देता है, जबकि बात इससे उल्टी ही है। (२) खुराकको पूरा चबाता नहीं है। (३) पदार्थोंके मौलिक रूपमें बहुत हेर-फेर

करके—बनानेके नामपर उन्हें बिगाड़कर—खाता है। जैसे, सिर्फ गेहूं अथवा उसके मोटे आटे की रोटियोंपर संतोष न करके, उसमें घी, चीनी, वगैरह मिलाकर अथवा अनेक तरहके मसालोंका संयोग करके भोजनको मीठा, खट्टा, चटपटा करके खाता है। इसी तरह, दूधके अनेक तत्त्व खोकर, उसका खोआ बनाता और फिर उसके पेड़े, बरफी, आदि मिठाइयां बनाकर खाता है। स्वाद अथवा आंखोंको अच्छा लगनेके बहाने आटेमेंसे चोकड़ छानकर, चावलोंमेंसे कण, भातमेंसे मांड़ और तरकारियोंको उबालकर उनका पानी फेंक देता है। फलों और तरकारियोंके खाने-योग्य छिलके उतार देता है। फलोंके अचार-मुरब्बे बनाकर खाता है। (४) बिना भूखके खाता है। भूख लगे न लगे, वक्त हो जानेपर खा लेता है। भूख कम होनेपर भी खाना नहीं छोड़ता। भूख बढ़ानेको चूरन, चटनीका सहारा लेता है।

खानेके बारेमें मनुष्य इसी तरहकी अनेक भूलें करता है। एक वाक्यमें कहें तो वह **जीनेके लिए न खाकर मानों खानेके लिए ही जीता है।**

खानेकी भांति ही वह पीनेमें भी भूल करता है। चीजों-को बहुत गरम या ठंडा करके पीता है। पानी जैसा, जितना, जब, और जैसे पीना चाहिए, नहीं पीता। बहुत-सी गलत चीजें जैसे, बरफ, सोडा, चाय, काफी वगैरह पीता है।

बीड़ी, सिगरेट, शराब, अफीम, गांजा, भांग, तंबाकू, वगैरह नशोंका सेवन करता है।

सोने-जागने, पेशाब, पाखाने, नहाने-धोने, भोग-विलास, कपड़े-लत्ते आदिके नियमोंमें प्रायः गलतियां करता है। शारीरिक

श्रम नहीं करता। साफ हवा और खुले आकाशका सेवन करनेका खयाल नहीं रखता। शरीर, और मनको भी, आवश्यकतानुसार विश्राम नहीं देता।

हजारों साल पहले भी आहार-विहार उचित—युक्त—रखनेकी आवश्यकता समझी जाती थी। केवल संसार-यात्राके सुखद रूपसे निर्वाहके लिए ही नहीं, आध्यात्मिक लाभके लिए भी उसकी आवश्यकता मानी जाती थी।

गीतामें कहा गया है—

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।"

—आहार, विहार—खान-पान, सोना-जागना आदि—युक्त—उचित, मर्यादापूर्ण—रखा जाय और सब काम युक्त रूपसे—ठीक-ठीक—किये जायं तो वह योग दुःखनाशक होता है, यानी ऐसी जिंदगी बितानेवालेको कष्ट नहीं उठाना पड़ता।

उपर्युक्त श्लोकके अर्थमें शंकराचार्यजी कहते हैं—

"तस्माद् योगी नात्मसम्मितादन्नादधिकं न्यूनं वाश्नीयात्।"

इसलिए योगीको अपनी आवश्यकतासे कम या अधिक नहीं खाना चाहिए। वेदोंमें भी कहा है—

यद्रु ह वा आत्मसम्मितमन्नं तदवतितन्न हिनस्ति।
यदयो हिनस्ति तद्यत् कनीयो भू न तदवति।

—आत्मसम्मित अन्न खानेवालेकी वह अन्न रक्षा करता है, उसे नुकसान नहीं पहुंचाता।

एक जगह स्पष्ट कहा गया है—**'अतिभोजनं रोगमूलम्।'**

—अति (आवश्यकतासे अधिक) भोजन रोगकी जड़ है।

शरीर, प्रधानतः, खानपानसे ही बनता और टिका रहता है। हम जैसा खाते-पीते हैं, उसीके अनुसार हमारा शरीर बनता है। खान-पान सही रखकर शरीरको मृत्यु तक ठीक रखा जा सकता है और बीमार पड़नेपर खान-पानमें परिवर्तन करके उसको सुधारा जा सकता है। बुरे या भले खानपानका असर शरीरके सिवा, मनपर भी पड़ता है।

उपनिषद्में कहा गया है—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः

—शुद्ध आहारसे मन शुद्ध रहता है।

कई हजार साल पहले रचे गये आयुर्वेदके सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ चरकमें इस शरीररूपी इमारतके तीन खंभे कहे गये हैं—

आहार, निद्रा और **ब्रह्मचर्य—'त्रय उपस्तम्भा इत्याहारः, स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति।'**

ब्रह्मचर्यके संबंधमें गलतियां करके भी मनुष्य अनेक रोगोंका शिकार होता है। सुश्रुतमें कहा गया है—

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः
क्षयो ह्यस्य बहून् रोगान् मरणं वा नियच्छति।

—आहारके अंतिम रूप शुक्रकी (वीर्य) रक्षा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए। इसका क्षय करना बहुत रोगोंका कारण होता है, यहांतक कि मौतके पास पहुंचा देता है।

वीर्यको मनुष्यकी जीवनीशक्ति कहा है—**'शुक्रायत्तं बलं पुंसां।'**

इस शक्तिको हस्तमैथुन, अति भोगविलास अथवा भोगके स्मरण द्वारा नाश कर देनेसे मनुष्यके शरीरमें रोग-प्रतिषेधक शक्ति

कम होकर उसे भांति-भांतिकी बीमारियां सताती हैं। आज नवयुवकोंमें क्षय की (टी० बी०) वृद्धिका एक बड़ा कारण धातुक्षय माना जाता है।

आयुर्वेदमें रोगोंके तीन कारण कहे गये हैं--विषयोंका अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग। मर्यादासे अधिक सेवन 'अतियोग' है, बिल्कुल न सेवन 'अयोग' और गलतरूप से सेवन 'मिथ्यायोग' है। पांचों इंद्रियोंके, रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श, इन पांचों विषयोंके सेवनकी गलतियोंके कारण ही मनुष्य रोगी होता है।

कुछ रोग संसर्गज-- छूतसे होने वाले--भी होते हैं। पर यह छूत भी प्रायः उन्हींको लगती है, जिनके शरीरमें उसके ग्रहण करनेका माद्दा होता है, जसे, सूखा घास पानेपर ही उसे आग पकड़ सकती है। दोषरहित शरीरको छूतका डर नहीं रहता।

: २ :

रोगकी उत्पत्ति

मनुष्य जो खाता-पीता है वह उसके पेटमें और वहांसे आंतोंमें जाकर पचता है[1]। फिरउसका रस बनता है। वही रस आंतों द्वारा खिचकर उससे रक्त—खून बनता है। रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा (चरबी) और मज्जासे वीर्य बनता है—

"रसाद् रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा, मज्ज्ञः शुक्रस्य संभवः।"

इस प्रकार हमारे शरीरका अंग-प्रत्यंग भोजनसे ही बना है।

आंतोंके खुराकमेंसे रस ले चुकनेपर अनावश्यक भाग मल-मूत्रके रूपमें शरीरसे बाहर निकल जाता है। नित्य बाहर निकलनेवाले भागमें शरीरके भीतरी स्रोतोंमें—नाड़ियोंमें मौजूद अनावश्यक पदार्थ भी कुछ मात्रामें शामिल रहते हैं। आंतें रसको चूसनेके सिवा रक्तमें विद्यमान गंदगीको निकालनेका साधन भी हैं। जीवित प्राणीके अंदर यह क्रिया निरंतर—क्षणभर भी रुके बिना—होती रहती है। इसका बंद होना ही मरना है। इस क्रियामें बाधा पड़ना ही रोग की उत्पत्तिका कारण होता है।

हमारे शरीरके भीतर छोटी-छोटी अनगिनत नाड़ियां—

---

१. इस संबंध में लेखककी 'कब्ज—कारण और निवारण' पुस्तक में विस्तारपूर्वक बतलाया गया है। प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली; दाम : एक रुपया।

नालियां हैं, जिनके द्वारा रक्त सारे शरीरमें चक्कर काटता हुआ शरीरका पोषण करता रहता है और उन नाड़ियोंमें एकत्र हुए साधारण दोषोंको अपने साथ लाकर श्वास, पसीने तथा अन्य मार्गोंसे निकाल देता है। हमारे शरीरसे दोष निकलनेके चार प्रधान साधन हैं—पाखाना, पेशाब, पसीना और सांस। इन चारों क्रियाओंके ठीक चलनेतक मनुष्य प्रायः रोगी नहीं होता। पर इनमेंसे एकके भी अव्यवस्थित होनेपर हम बीमार हो जाते हैं।

अव्यवस्थाका कारण

आहार गलत होनेपर उसका रस अच्छा नहीं बनता, फिर रक्त अच्छा कैसे हो सकता है? रक्त खराब होनेपर उससे बननेवाले शरीरके दूसरे धातु भी ठीक नहीं बन सकते। रक्तमें मलिनता होनेके कारण वह स्वाभाविक गतिसे शरीरमें प्रवाहित नहीं हो पाता, इससे शरीरमें शिथिलता आती है। जैसे घड़ीका कोई पुर्जा बिगड़ जानेपर पूरी घड़ीकी चालमें फर्क पड़ जाता है, वैसे ही शरीरकी किसी एक क्रियाके अव्यवस्थित होनेपर सारे शरीरमें खराबी आना स्वाभाविक है। यों तो नाड़ियोंमें एकत्र साधारण दोषको नित्य बाहर निकालनेका कार्य अपने-आप होता रहता है, और किसी कारणसे विशेष दोष होनेपर उसे निकाल देनेका प्रयत्न भी शरीर करता है। उसके भीतर यह खूबी मौजूद है। शरीरके उसी स्वाभाविक प्रयत्नका रूप होता है, बुखार, दस्त, जुकाम, फोड़े वगैरह, जिन्हें हम रोगके नामसे पहचानते हैं। संस्कृतमें रोग शब्द 'रुज्' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'पीड़ा' है। शरीरके उस प्रयत्नमें पीड़ा होनेके कारण ही उसे रोग कहा जाता है। यदि दोष प्रबल न हुआ और शरीरकी जीवनीशक्ति—भीतरी शक्ति (Vitality) निर्बल न हुई या किसी तेज

दवासे उसे दबाया—कमजोर न कर दिया गया, तो हमारी जीवनीशक्ति अपने-आप शरीरको नीरोग कर ले जाती है। सबका नित्यका यह अनुभव है कि शरीरमें जबतब कुछ तकलीफ होनेपर वह अपने-आप ही ठीक होती रहती है।

पर आहार-विहारमें लगातार गलतियोंके फलस्वरूप मनुष्य-के शरीरमें दोष इस परिमाणमें संचित हो जाते हैं कि वे अपने-आप निकल नहीं पाते। दोषोंके बढ़नेसे शरीरकी अनेक क्रियाएं मंद हो जाती हैं; खासकर पाचनशक्ति। खाया हुआ पचता नहीं, भूख कम हो जाती है, शौच साफ नहीं होता, कब्ज हो जाता है, नींद ठीक नहीं आती, जिससे शरीर को आराम नहीं मिलता।

जीवनी-शक्ति प्रबल रहनेपर शरीरमें संचित दोष सरदी, गरमीकी तीव्रतासे या अन्य किसी आकस्मिक कारणसे प्रकुपित होकर उग्र रूपमें प्रकट होते हैं। प्राकृतिक चिकित्साके महान् आचार्य लूई कूने ने उस संचित दोषको 'विजातीय द्रव्य' (foreign matter) के नामसे अभिहित किया है और उसी-को रोगोत्पत्तिका मूल कारण माना है।

चरकमें रोगोत्पत्तिके संबंधमें कहा है—

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम्।

—सभी रोगोंका कारण कुपित (fermented) मल—दोष (foreign matter) ही है। और उनके प्रकोपका कारण विविध अहित—आहार-विहारका सेवन है।

और भी कहा है—

तत्तद्वृद्धिकराहारविहारातिनिषेवणात्
दोष-धातु-मलानां हि वृद्धिरुक्ता भिषग्वरैः।

—श्रेष्ठ चिकित्सक दोष बढ़ानेवाले आहार-विहारके अति निषेवण यानी उसमें ज्यादती करनेसे—मर्यादा छोड़ देनेसे ही दोष, धातु और मलकी वृद्धि मानते हैं।

सुश्रुतकार कहते हैं—

कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम्
यत्र सङ्गः खवैगुण्याद् व्याधिस्तत्रोपजायते।

—कुपित हुए दोष (fermented foreign matter) रक्तके मार्फत शरीरमें चक्कर लगाते समय स्रोत-वैगुण्य यानी रसवहा और रक्तवहा नाड़ियोंमें रुकावट आ जानेके कारण, जहां रुक जाते हैं, वहीं व्याधि पैदा होती है। चरकमें कहा है—

'येनाहारविहारेण रोगाणामुद्भवो भवेत्'

—आहार-विहारके कारण रोग पैदा होते हैं।

साधारण दृष्टिसे देखनेपर पाठकोंको इस वचनमें कुछ शंका हो सकती है कि जिस आहार-विहारके कारण हम जीते हैं वही हमारे दुःखों—रोगोंका कारण कैसे हो सकता है?—रोगोंका कारण तो इससे भिन्न होना चाहिए। हमको जिलानेवाली वस्तु ही मारनेवाली भी सिद्ध हो, यह कैसा न्याय है? पर क्या यह सही नहीं है कि जो ईश्वर हमें पैदा करता है वही हमें मारता भी है? बच्चेको पुचकारनेवाली माता ही शरारत—गलती करनेपर उसे पीटती भी है। सदुपयोगसे लाभ, पर दुरुपयोगसे बहुत बड़ी हानि करनेवाली संसारमें बहुत वस्तुएं हैं। कहा है, 'अन्न तारे (जिलाए) अन्न मारे,' यदि उसका उचित रूपमें—मर्यादित रूपमें सेवन किया जाय तो, वह हमें स्वस्थ रखेगा, अन्यथा हानि पहुंचायेगा।

आहारकी भांति ही विहार—यानी शरीर-संबंधी अन्य विषयोंके बारेमें भी समझना चाहिए।

: ३ :

रोगोंकी एकता

जब सब रोगोंका कारण शरीरमें संचित दोष ही है, तब उनका इलाज अलग-अलग तरीकेसे करनेकी क्या जरूरत है? रोगका कारण एक माननेपर उसका उपचार भी एक ही तरहसे होना चाहिए। प्राकृतिक चिकित्सामें रोगोंकी एकता, अतः उपचार की एकता—"**रोगाद्वैता चिकित्साद्वैता**" (Unity of disease and unity of cure) एक प्रधान सिद्धांत है। आयुर्वेदमें भी कहा है—

त एवापरिसंख्येया भिद्यमाना भवन्ति हि
निदानवेदनावर्णस्थानसंस्थाननामभिः ।

—रोगोंके अनगिनत नाम पड़ गये हैं, सिर्फ यह समझनेके लिए कि, पीड़ा शरीरके किस अंगमें, किस तरहकी है। शरीरके निदान (कारण) से—स्थान-भेदसे, संस्थान भेद से, वेदनाके प्रकारसे, रंगसे, रोगोंके नाम पड़ जाते हैं।

और कहा है—

विकारनामाकुशलो न जिह्लीयात् कदाचन
न हि सर्व विकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ।

—सब रोगोंके नाम न रख पानेमें कोई संकोचकी बात नहीं है; रोगका यही नाम होना चाहिए, ऐसी कोई शर्त नहीं है।

अगर किसी रोगका नाम न रखा जा सके तो चिकित्सकको यह समझकर कि—

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः
अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत् ।

दोषोंके बिना कोई रोग होता ही नहीं, इसलिए दोषके चिह्न देखकर चिकित्सा करनी चाहिए।

रोगोंके विभिन्न नाम तो व्यवहार प्रयोजनके लिए हैं, चिकित्साके लिए नहीं।

उदर-शूल कहनेसे पता चलता है कि दर्द पेटमें है, और कण्ठशूलसे वह गलेमें समझा जायगा।

लेकिन 'शूल' यानी तकलीफ (बे-आरामी—बेचैनी—D'sease) तो दोनों में एक ही है। आयुर्वेदमें कहा है—**"रोगत्वं एकविधं रुक् सामान्यात्"**—सब रोगोंमें वेदना (पीड़ा) एक सर्व-सामान्य लक्षण होनेसे रोग असंख्य होने पर भी रोगत्व एक है।

वाग्भटने भी कहा है—

"दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेककारणम्"—सब रोगोंका एकमेव कारण दोष है।

हमें यह समझ लेना चाहिए कि शरीरके विविध अंगोंमें, विविध रूपोंमें, विविध समयमें हुए शूलोंका—रोगोंका कारण एक ही है। दमा और एक्जिमा दोनोंका कारण एक हो सकता है, यह सुननेमें अनोखा-सा लगता है, पर इसके सत्य होनेमें कोई संदेह नहीं है। अक्सर देखा जाता है कि यदि एक व्यक्तिको दमा और बहनेवाला एक्जिमा साथ हुआ तो एक्जिमा बहते रहने पर—यानी उस स्रोतसे शरीरका दोष निकलते रहनेपर—दमा दबा रहता है, पर एक्जिमाका बहना बंद होते ही दमा उभर आता है।

डाक्टरोंने रोगोंकी अनेकताका भ्रम फैलानेमें कमाल किया

है। हर रोगका, यानी भिन्न-भिन्न रोगके भिन्न-भिन्न जीवाणु (Germs) कायम करके दवासे उन्हें मारनेका प्रयत्न किया जाता है। भ्रम यहातक फैला है कि पांवमें हुई खाजकी एक चिकित्सा होगी और हाथमें हुई खाजकी दूसरी, और सिरमें हुई खाजकी तीसरी !

सब रोगोंकी एकता समझनेके लिए सुश्रुतका निम्नलिखित वाक्य बहुत उपयोगी हो सकता है।

तत्र संचितानां खलु दोषाणां स्तब्धपूर्णकोष्ठता पीतावभासता, मन्दोष्मता चाङ्गानां गौरव-मालस्यं चयकारणविद्वेषश्चेति लिङ्गानि भवन्ति।

—शरीरमें दोष-संचय होनेसे कोठेका भरा-सा यानी आंतोंमें भारीपन लगना, पीला दिखाई देना या त्वचाके वर्णमें कुछ पीला-पन, शरीरमें हरारत, अंगोंका भारीपन, आलस्य बढ़ना और दोषों का संचय करनेवाले कारणोंकी ओर विद्वेष ये लक्षण होते हैं। भला किस रोगमें ये सब अथवा इनमेंसे कुछ लक्षण नहीं मिलते ?

आयुर्वेदकी भांति ही रोगोंकी एकताका सिद्धांत यूरोपमें भी, आजसे २५०० साल पहले हिपोक्रेटने—जिसे एलोपैथीवाले औषधिका जनक (Father of Medicine) मानते हैं—अपनी पुस्तकोंमें अनेक स्थानों पर **'प्रकृति अपने आप रोग दूर करती है'** (Nature Cures itself)—यह स्वीकार किया था। **महात्मा गांधीने** भी रोगोंकी एकताके बारेमें कहा है, "विचार करनेसे जान पड़ेगा कि व्याधिको रोकनेका मार्ग सरल है। उसकी जानकारीके लिए किसी ज्ञान-विशेषकी आवश्यकता नहीं है। अलबत्ता उसपर चलना कठिन है। **सब व्याधियोंका मूल बहुत अंशोंमें एक है, अतः उनका इलाज भी एक ही होना चाहिए।**"

रोगोंकी एकताका सबसे प्रबल प्रमाण तो विभिन्न समझे जानेवाले सब रोगोंका एक ही तरहके उपचारसे अच्छे होना है।

: ४ :

रोगोंका उपचार

मर्यादित आहार-विहार

आहार-विहारके अत्यधिक—मर्यादारहित—सेवनसे ही रोगोंकी उत्पत्ति माननेपर नीरोग रहनेके लिए उनके सेवनकी मात्राका उचित होना अनिवार्य है। और बीमार पड़ जानेपर तो, उस उचित मात्रामें भी, कमी करनेकी जरूरत होती है। इस विषयमें प्राय: सब एकमत हैं कि रोगी होनेपर शरीरको बहुत हल्का, मर्यादित—परिवर्तित आहार-विहार चाहिए। रोगके लक्षणों और अवधि तथा रोगीकी अन्य अनेक बातोंके विचारसे वह मात्रा क्या होनी चाहिए, इस विषयमें मतभेद अवश्य है।

पहले कहा जा चुका है कि प्राकृतिक चिकित्सकोंने, तथा आयुर्वेदने भी, यह माना है कि शरीरमें दोष एकत्र होनेपर ही रोग होते हैं। और, शरीर जैसे अपने भीतरसे मल, मूत्र, श्वास और पसीने द्वारा नित्य गंदगी निकालता है, वैसे ही वह अहित आहारविहारके सेवनसे भीतरी—सूक्ष्म हिस्सोंमें या बड़ी आंतोंमें जमे हुए अतिरिक्त मल—दोषको निकालनेमें भी समर्थ है।

यदि शरीरको, कुछ समयके लिए, रोजकी खुराक पचानेके कामसे, छुट्टी दे दी जाय तो, बिना किसी ऊपरी मददके, वह दोषोंको, अपने-आप निकाल देगा। कभी-कभी शरीर स्वयं ही ज्वर वगैरहके रूपमें खुराक पचानेके कामसे छुट्टी लेनेकी कोशिश करता है। जब हमारी भूख अपने-आप जाती रहती है अथवा कम हो जाती है, उस समय शरीरको खुराक पचानेके कामसे मुक्त

करना आवश्यक है।

प्राकृतिक उपचारमें रोगकी दशामें आमाशयके पाचन-कार्यके भारको बहुत हल्का कर दिया जाता है, इसलिए कि वह दोष निष्कासनका काम अधिक तेजीसे कर सके। इससे मनुष्यके रोग-मुक्त होनेमें शीघ्रता होती है।

आयुर्वेदमें भी रोगीके 'पथ्य' यानी रोगके समयके आहार-विहारपर बहुत जोर दिया गया है। कहा गया है—

न चाहारसमं किञ्चिद् भैषज्यमुपलभ्यते
शक्यतेप्यन्नमात्रेण नरः कर्तुं निरामयः
भेषजोपपन्नोपि निराहारो न शक्यते
तस्माद् भिषग्भिराहारो महाभैषज्यमुच्यते
विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते
न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि
पथ्यसेविनमारोग्यं गुणेन भजते नरम्
अपथ्यसेविनं क्षिप्रं रोगः समभिमर्दति।

अर्थात्—आहारके समान कोई दवा नहीं है। केवल आहार (food regulation) द्वारा मनुष्यको नीरोग किया जा सकता है। दवा दें और आहारकी परवा न करें तो कुछ न होगा, सिर्फ इसीलिए भिषकोंने आहारको महान् भैषज्य (औषध) कहा है। रोग दवाके बिना पथ्यमात्रसे अच्छा हो सकता है और पथ्य ठीक न रखने पर सैकड़ों दवाएं भी कुछ नहीं कर सकतीं। पथ्यपर चलनेवाले नीरोग रहते हैं और अपथ्यसेवीको रोग जल्दी पछाड़ता है।

और भी कहा है—

यद्यपथ्यं किमोषध्याः यदि पथ्यं किमौषधैः

पथ्येसति गदार्त्तस्य किमौषध निषेवणम्
पथ्ये असति गदार्त्तस्य किमौषध निषेवणम् ।

—यदि अपथ्य हो—आहार-विहार गलत हो तो दवासे क्या होना है, और पथ्य हो तो दवाकी दरकार क्या है?—तब रोग होगा ही क्यों?

ऊपरके श्लोकोंमें हल्की खुराक द्वारा पाचनशक्तिका भार हटनेपर स्वयं प्रकृति द्वारा रोगमुक्त होनेके सिद्धांतपर ध्यान रखकर ही पथ्यपर जोर दिया गया है।

आम तौरसे 'पथ्य' शब्दसे मुख्यतः 'आहार' समझा जाता है, पर उपर्युक्त श्लोकोंमें आहार-विहार दोनों लिया गया जान पड़ता है।

: ५ :

रोगोपचारमें लंघन

थोड़ी अवधिवाली और उग्र दशा प्राप्त व्याधिमें तो निरापद मार्ग लंघन ही समझा गया है। विदेशके अनेक प्राकृतिक चिकित्सकोंने तो उग्र या जीर्ण, हर रोगके लिए, लंघनका सहारा लेकर लाखों कठिनतम रोगोंके रोगियोंको रोगमुक्त कर दिखाया। लंघन भी थोड़े दिनोंके नहीं, दो-दो महीने तकके लंघन सिर्फ जलके सहारे करा दिये। उन्होंने यह सिद्ध कर बताया कि प्राणीको आराम तो उसकी जीवनी-शक्ति ही करती है, जरूरत उसे मौका देनेकी है।

आयुर्वेद भी इस सिद्धांतको कुछ अंशोंमें मानता जान पड़ता है। ज्वरमें प्रायः लंघनका विधान किया गया है। रोगीकी उग्र दशा-में शरीरके भीतर या बाहर प्रायः ज्वर रहता है। ज्वरको रोगोंका राजा और रोग शब्दका पर्याय माना गया है। व्याकरणमें 'ज्वर रोगे' कहा गया है। इस दृष्टिसे आयुर्वेद शास्त्रोंमें ज्वरमें विहित लंघनको रोगकी दूसरी दशाओंमें भी लागू किया जा सकता है। देखना सिर्फ यह होगा कि वह कहांतक उपयोगी होता है। वैसा करनेको कहीं लिखा है या नहीं, यह देखते रहनेवाले आगे नहीं बढ़ सकते।

आयुर्वेदमें ही कहा गया है—

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्।

—औषध (उपचार) वह ठीक है, जिससे आरोग्य प्राप्त हो और

चिकित्सक श्रेष्ठ वह है जो रोगोंसे मुक्त करे।

सब दृष्टियोंसे विभिन्न रोगों---रोग-लक्षणोंपर लंघनका प्रयोग करोड़ोंपर लाभकारी सिद्ध हुआ है।

ज्वरमें लंघनके संबंधमें आत्रेय ऋषिका कहना है—

ज्वरादौ लंघनं कुर्यात्---ज्वरके आदिमें लंघन करना चाहिए। 'आदिमें' इसलिए कहा गया होगा कि रोग आरंभमें प्रबल---उग्र होता है। उस दशामें लंघन करानेसे रोग बढ़ता नहीं।

चक्रदत्त कहते हैं—

तरुणं तु ज्वरं पूर्वं लङ्घनेन क्षयं नयेत्
आमदोषमलिङ्गं वा लङ्घयेत्तं यथाविधम्।

—नये ज्वरको लंघनसे दूर करना चाहिए। और आम दोष यानी पाचन-विकार-संबंधी अथवा जिसके कारणका पता न चले वैसे सब ज्वरोंमें भी बाकायदा लंघन ही कराना चाहिए।

चरकमें कहा है—

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामोमार्गान्पिधापयन्
विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लङ्घनमाचरेत्।

—आमाशयमें (छोटी और बड़ी आंतोंमें) स्थित दोष जठराग्निको---पाचन-शक्तिको मंद कर देता है, इसके कारण बिना पची खुराकका अशुद्ध (खराब) रस रसवहा और रक्तवहा नाड़ियोंमें पहुंचकर उनके मार्गमें रुकावट पैदा करके ज्वर लाता है। इसलिए जठराग्निको प्रदीप्त करने, आम[1] सहित

---

[1] **ऊष्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाचितम्**
दुष्टमामाशयगतं रस सामं प्रचक्षते।

जठराग्निके कमजोर होनेके कारण बिना पची हुई, वायु इत्यादि दोषोंके मिलनेसे बिगड़ी हुई, आमाशयमें विद्यमान रसकी पहली धातुको 'आम' कहते हैं।

दोषोंको पचाने और स्रोतोंकी रुकावटको दूर करनेके लिए लंघन करना जरूरी है।

दूसरोंने भी ज्वरका कारण बतलाते हुए कहा है—

मिथ्याऽहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः।

—अयोग्य आहारविहारके कारण दोष आमाशयमें आश्रय लेकर कोठेकी अग्निकी उष्णताको बाहर निकालकर ज्वर पैदा करते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सामें तो सभी रोगोंका यही कारण माना जाता है।

ऊपर चरकके 'आमाशयस्थो', श्लोकमें आए हुए ज्वर शब्दको यदि हम 'ज्वर रोगे' के हिसाबसे रोग मात्रका पर्याय मान लें तो प्राकृतिक चिकित्सा और आयुर्वेदका संपूर्ण मेल बैठता है। प्राकृतिक चिकित्साकी बुनियाद यही है। इस बुनियादको पकड़ लेनेके बाद किसी रोगको दूर करनेमें कोई कठिनाई नहीं रह जाती।

चरकने लंघनको तारीफमें और भी कहा है—

लङ्घनेन हि अग्नि मारुत वृद्ध्या, वातातप—
परीतमिवाल्पमुदकमल्प दोषः प्रशोषमापद्यते।

—लंघनसे अग्नि और वायुकी वृद्धि होकर अल्पदोष इस प्रकार सूख जाते हैं जैसे हवा और धूपवाली जगहपर पड़ा हुआ थोड़ा पानी सूख जाता है।

महर्षि वाग्भट कहते हैं—

दोषेण भस्मनेवाग्नौ छन्नेऽन्नं न विपच्यते
तस्मादादोषपचनाज्ज्वरितानुपवासयेत्।

—जैसे राखसे ढकी हुई आगसे खाना नहीं पकता, वैसे ही

आमसे ढकी हुई जठराग्नि खुराकको नहीं पचा पाती। इसलिए दोषोंके पकनेतक यानी आम खत्म होनेतक—शरीरके निराम होने तक—ज्वरवाले रोगीको उपवास कराना चाहिए।

लङ्घनैः क्षयिते दोषे दीप्तेऽग्नौ लाघवे सति
स्वास्थ्यं क्षुत्तृड् रुचिः, पक्तिर्बलमोजश्च जायते।

उपवाससे जब (कुपित) दोष दूर हो जाता है, जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है, शरीर हल्का हो जाता है—यानी स्फूर्ति आ जाती है, तब आरोग्य, भूख, प्यास, भोजनमें रुचि, 'आम' का पचन, बल और ओज पैदा होता है।

आयुर्वेदमें उपर्युक्त दोनों श्लोक ज्वरके प्रसंगमें कहे गये हैं, लेकिन इनमें उपवासद्वारा कहा गया लाभ और उसकी व्याप्ति इतनी विशद है कि वह ज्वरके सिवा रोगके दूसरे लक्षणोंमें भी प्रत्यक्ष लागू होता है।

जठराग्निकी मंदता और 'आम' की उपस्थिति तो, बहुत कम ही रोग ऐसे होंगे कि जिनमें न प ई जाय। उपवासको "दोषाणां समुदीर्णानां पाचनाय शमनाय च"—उभरे हुए दोषोंके पाचन और शमनके लिए अत्यंत लाभकारी बतलाया गया है।

इसके सिवा उपवास, या कहिए लंघनसे जठराग्निके प्रबल होनेसे जीवन-शक्ति सतेज होकर—शरीरमें उभार लाकर दबे हुए दोषोंको बाहर निकालती है। बहुतेरे रोगियोंमें देखा जाता है कि लंघन शुरू करनेपर पाखानेमें 'आंव' आने आरंभ होते हैं और ज्यों-ज्यों 'आंव' निकलते जाते हैं, उनका रोग कम होता जाता है। 'आंव' की समाप्ति पर रोगी रोगमुक्त हो जाते हैं।

आयुर्वेदमें लंबे लंघन करानेका विधान भी है—

ज्ञात्वा दोषबलं धीमान् लङ्घनानि समाचरेत्
दोषे सति न दोषाय लङ्घनानि बहून्यपि।

——बुद्धिमानको चाहिए कि शरीरमें दोषकी मात्राके अनुसार लंघन कराए। दोष रहनेपर अधिक लंघन करना भी दूषित न माना जायगा।

भिन्न-भिन्न प्राकृतिक चिकित्सकोंके, लाखों पर किये गए, अनुभवों तथा इस पुस्तक-लेखकके अपने हजारों रोगियोंके अनुभव तथा आयुर्वेद-शास्त्रसे यह सिद्ध होता है कि प्राय: सभी प्रकार-के रोग-लक्षणोंके नाशमें समझदारीसे किया, कराया गया लंघन रामबाणका काम करता है।

: ६ :

एक 'लंघन' शब्दमें पूरी प्राकृतिक चिकित्सा

ऊपर 'लंघन' शब्द उपवासके अर्थमें बरता गया है, लेकिन आयुर्वेदमें 'लंघन' शब्दकी बड़ी व्यापक परिभाषा पाई जाती है।

आयुर्वेदके सर्वमान्य ग्रंथ सुश्रुतमें लंघनकी परिभाषामें कहा गया है—

शरीरलाघवकरं यद्द्रव्यं कर्म वा पुनः तल्लङ्घनमिति ज्ञेयं।

—जिस कर्म—प्रकार—वा द्रव्यसे शरीर लघु—हल्का हो वह लंघन है।

चरकमें लंघनके दस प्रकार कहे गये हैं—

चतुष्प्रकारा संशुद्धिः पिपासा, मारुतातपौ,
पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लङ्घनम्।

चार तरहका संशोधन—(१) वमन (कै कराना) (२) विरेचन (ऊपरसे कोई चीज पिलाकर दस्त लाना) (३) बस्ति (एनिमा) (४) स्वेदन (भाप-नहान)

दूसरे छः प्रकार—(१) पिपासा (२) मारुत (वायु-सेवन), (३) आतप (धूप-स्नान), (४) पाचन द्रव्य (फल-तरकारी वगैरहका सेवन), (५) उपवास (अनशन), (६) व्यायाम (कसरत)

इन दसोंमेंसे अधिकांश उपाय प्राकृतिक चिकित्साके उपचारोंमें लिये गए हैं।

: ७ :

जलका उपचार

शुरू-शुरूमें विदेशमें प्राकृतिक चिकित्सा 'जल-चिकित्सा' के रूपमें फलने-फूलनेके कारण उसका नाम हाइड्रोपैथी या हाइड्रोथेरेपी (Hydropathy, Hydrotherapy) पड़ा था। फिर उसमें दूसरी प्राकृतिक वस्तुएं—मिट्टी, धूप, हवा आदि भी जुड़ती जानेसे वह प्राकृतिक चिकित्सा (Naturopathy) कहलाई। विदेशमें प्रिसनीज़, फादर नीप, जस्ट, लूई कूने आदि इसके अनेक महान् आचार्य हुए हैं, जिन्होंने स्वयं अपनी बीमारीके लिए हर तरफसे हार चुकनेपर अपनी आविष्कृत विधियोंसे स्वयं नीरोग होनेके बाद अपनी जिंदगीमें अन्य लाखोंको इन तरीकोंसे लाभ पहुंचाया था। वहां जिन आचार्योंको जिन विधियोंसे, खुदको या दूसरोंपर प्रयोग करके अधिक लाभ मिला था उन्होंने उन तरीकोंपर जोर दिया। किसीने धूपपर, किसीने मिट्टीपर, किसीने जलपर, किसीने उपवासपर। लेकिन जलकी महत्तापर प्रायः सब एकमत थे। कुछ विभिन्न विधियोंसे ही सही, जलका प्रयोग सब करते थे। भारतमें भी यह चिकित्सा 'जल-चिकित्सा' के नामसे ही विख्यात हुई। जल हमारे शरीरके बाहरी मल—दोषको साफ करता है, वैसे ही, विधिपूर्वक प्रयोग करनेसे,हमारे भीतर संचित एकत्र दोषको बाहर निकालनेकी भी उसमें अद्भुत शक्ति है। मनुष्य-शरीरमें ८० प्रतिशत तो जल ही है, अतः जलसे रोगोंका निवारण होना

स्वाभाविक है।

बहुतोंका खयाल है कि 'जल-चिकित्सा' नई चीज है। जर्मनी-के जल-चिकित्साके महान् आचार्य लूई कूनेने तो इसीलिए अपनी विधियोंको 'नवीन चिकित्सा विज्ञान' (New Science of Healing) नाम दिया था। यह सही है कि कूनेकी जल-चिकित्साके अत्यंत सरल तरीके, जिन्हें हरएक घर बैठे कर सकता है, और उनके समर्थनका प्रकार, अनोखा है। रोगोंकी एकता अतः उपचारकी एकताका सिद्धांत (Unity of disease and unity of cure) भी उन्होंने जितनी स्पष्टतासे दुनियाके सामने रखा, और उसे सिद्ध भी कर दिखाया, वैसा दूसरे कम कर पाए। इस दृष्टिसे उसे नई चिकित्सा कह सकते हैं। पर भारतमें भी बहुत प्राचीन समयसे जलका महत्त्व और चिकित्साके रूपमें उसका व्यवहार होता था, यह आयुर्वेदके नीचे दिये गए अवतरणोंसे सिद्ध होता है।

पित्त-ज्वरमें रोगीकी नाभिपर ठंडे पानीकी धार गिराने-का जिक्र है।—

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्र-
कांस्यादि-पात्रे निहिते च नाभौ
शीताम्बु-धारा बहुला पतन्ती
निहन्ति दाहं त्वरितं ज्वरञ्च।

—पित्त-ज्वरके रोगीको चित लिटाकर उसके पेड़ू पर तांबे या कांसेका एक गहरा बर्तन रखें और उसमें ऊपरसे ठंडे पानीकी मोटी धार गिरावें। यह क्रिया पित्त-ज्वरको तुरंत शांत करती है।

कफ दूर करनेमें 'जलक्रीड़ा' बतलाई गई है। जलक्रीड़ाका प्रकार न कहकर भी उससे कफ कैसे दूर होता है, यह कहा गया है।

जलक्रीड़ा-जनित शैत्येन अवरुद्धोऽष्मा
पङ्कलिप्तोऽभितः पाकाग्निरिवोग्रो भूत्वा कफं शोषयति ।

—जलक्रीड़ाके कारण पैदा हुई ठंडकसे, बाहर निकलती हुई शरीरकी गरमी, अंदर इस प्रकार रुक जाती है, जैसे चूल्हेको चारों ओर कीचड़से (गीली मिट्टीसे) छोप देनेसे उसकी आंच बाहर नहीं निकल पाती । वह गरमी अंदर तेज होकर कफको सोख लेती है—खींच लेती है ।

पित्तके उपशय यानी निवारणमें 'यंत्रवारि'—फुहारेके स्नानका जिक्र है ।

वायुके उपशयमें **"जलद, रविकर, बस्ति, स्वेद, संमर्दनानि"** इन उपायोंकी चर्चा है । (१) जलद यानी वर्षाका पानी, (२) रविकर (सूर्यकी किरणें), (३) वस्ति (एनिमा), (४) स्वेद (भाप-नहान), (५) संमर्दन (मालिश)।

प्राकृतिक उपचारकी एक क्रियाका, जिसे अंग्रेजीमें 'वेट-शीट-पैक' कहते है, हिंदीमें अनुवाद 'भीगी चादरका बंधन' किया जाता है, पर आयुर्वेदमें उसके लिए गढ़ा-गढ़ाया शब्द 'आर्द्रवस्त्रावगुंठन' मिलता है । यह वेट-शीट-पैकके सिवा और क्या हो सकता है ?

कहा गया है—**काञ्जिकार्द्र पटेनावगुण्ठनं दाहनाशनं** अर्थात् कांजीसे गीले किये हुए वस्त्रसे दाहनाश होता है ।

आयुर्वेदमें जलकी अगाध महिमा गाई गई है—

पानीयं, श्रमनाशनं, क्लमहरं, मूर्च्छा, पिपासापहम्
तन्द्राच्छर्दि, विबन्ध, हृद्बलकरं, निद्राहरं, तर्पणम्
हृद्यं, गुप्तरसं, ह्यजीर्णशमकं, नित्यं हितं, शीतलम्
लघ्वच्छं, रसकारणं, निगदितं, पीयूषवज्जीवनम् ।

—यानी श्रमकी थकानको दूर करनेवाला, खेदनाशक, बेहोशी

और प्यास मिटानेवाला, आलस्य, कैं, मलबंधका नाशक, असमय-की निद्राको दूर करनेवाला, तृप्तिकारक, हृदयके लिए प्रिय, (हितकर) गुप्त रसवाला, अजीर्ण शामक, सदा हितकारी, शीतल, हल्का, रसका कारण रूप और अमृतकी भांति जीवनदाता है।

चरकमें विष-चिकित्सा-प्रकरण में **'अवगाहन रक्त मोक्षणा:'** कहा गया है। इसमें रोगीको जलके अंदर बिठानेकी बात है। ऐंद्र-जालिक कामरत्नमें तो साफ कहा है—**'अत्यन्त विषरोगार्तान् जल मध्ये विनिक्षेपेत्'**—अत्यंत विषपीड़ितको पानीमें डाल दो। (नदी-में इस तरह डालना चाहिए कि नाक-मुंह पानीके ऊपर रहें।)

जलका महत्त्व चिकित्साके रूपमें आयुर्वेदसे भी अति प्राचीन अर्थात् संसारमें पाए जानेवाले सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ वेदोंमें भी पाया जाता है। जलके सिवा, सूर्य-स्नान, वायु-स्नान, मिट्टीका लाभ भी वेदोंमें—विशेषत: अथर्ववेदमें—बतलाया गया है।

वेदमें जलकी महिमा

अमूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्य: सह
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ।

—सूर्य किरणोंसे शुद्ध हुआ जल हमारा कल्याण करे।

सूर्य किरणोंसे संपर्कित बहता जल पीने, नहाने, धोने और जल-चिकित्साके लिए भी, अधिक लाभदायक समझा जाता है।

यो व: शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न:, उशतीरिव मातर:।

—जो रसोंमें सबसे अधिक कल्याणकारक रस है, उस जल-से, हमें उसी तरह उत्तम सुख मिले, जिस तरह पुत्रको माताके दूधसे पुष्टि मिलती है।

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् ।

—जलमें अमृत है, जलमें औषध है अर्थात् आरोग्यदायक गुण है ।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा सोमने ।

—सृष्टि रचयिता परमात्माने हमसे कहा है कि जलमें सब औषधियां हैं ।

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम ।

—जलसे हमारी चिकित्सा हो और रोगोंसे शरीरका बचाव होकर हम दीर्घायु बनें ।

आप इद्वा भेषजीरापो अमीवचातनीः
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ।

—जल निस्संदेह औषध है, जल रोगनाशक है, जल सब रोगोंकी दवा है । वह जल मुझे क्षेत्रिय (आनुवंशिक—पैतृक hereditary) रोगोंसे मुक्त करे ।

क्षेत्रिय शब्दसे प्रतीत होता है कि जलमें वंश-परंपरासे चले आते रोग तकको दूर करनेका सामर्थ्य माना गया है । तब साधारण रोगकी तो बात ही क्या रही !

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयोऽध्वरीयताम् ।

—जलका सही उपयोग जाननेवालेका वह (जल) माता और बहनकी भांति भला करता है ।

माता और बहनसे अधिक मनुष्यका भला करनेवाला और कौन मिलेगा ?

'अम्बय' शब्द बहते जलका बोधक है ।

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ।
प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ।

—निर्दोष जल हमारे रोग—दोषको दूर करे। निर्मल—चमकता हुआ जल हमारे शरीरके बाहरी हिस्सेपर लगे दोष—मलको दूर करके, दुष्ट स्वप्न—स्वप्न-दोषको हटा दे, भीतरी मलको—दोषोंको निकाल दे।

प्राय: प्राकृतिक चिकित्सकोंका अनुभव है कि स्वप्न-दोष तथा धातु दौर्बल्यादि विकार जल-चिकित्सासे बहुत जल्द अच्छे होते हैं।

भारतमें जलकी महिमा

भारतमें जलकी महिमा प्राचीन कालसे अवगत होनेसे ही स्नान-क्रिया धर्मके अंदर दाखिल कर दी गई थी। मनुष्यका वह नित्यका आवश्यक कर्त्तव्य माना गया। भारतमें सुबह ब्राह्ममुहूर्तमें नदीके ठंडे पानीमें, खुली हवामें स्नान करनेका रिवाज है। गांवोंमें, और गंगा-किनारेके शहरोंमें भी, लाखों नर-नारी, जाड़ा हो या गरमी, सुबह-ही-सुबह नदीमें गोते लगाते हैं, मल-मलकर नहाते हैं। स्वास्थ्य अथवा किसी दूसरे प्रकारके फायदेके खयालसे यह न करके, नित्यक्रियाके हिसाबसे ही किये जानेपर भी, उन्हें इसका पूरा लाभ तो मिलता ही है। प्रात:कालकी ठंडी हवा, सूर्य किरणोंसे संपर्कित, बहता शीतल जल, कोस-आध-कोस पैदल चलकर जाना-आना, वहां बैठकर घंटे-आध-घंटे पूजा करना, इसमें उन्हें धूप-स्नानका लाभ भी मिल जाता है। धार्मिक वृत्तिके वृद्ध लोग तीर्थोंमें माघ मासके स्नानके लिए पागल रहते हैं। प्रयागका कल्पवास—माघमें एक महीना नित्य त्रिवेणीका स्नान—एक महीनेकी प्राकृतिक चिकित्सा ही है—बिना विधिकी ही सही। बहुतेरे अस्वस्थ व्यक्तियों—खासकर स्त्रियोंको देखा जाता है कि महीने दो महीनेके नदी-स्नानके फलस्वरूप उनकी बीमारी जाती रहती है।

भारतके कई प्रांतोंमें, रोगकी कुछ अवस्थाओंमें, जलके प्रयोग सुने जाते हैं। उस दिन एक मित्रने मुझे बतलाया कि उन्होंने राजस्थानमें छोटे बच्चोंको रोग विशेषमें 'तरड़ा' देते देखा है। उसका प्रकार है--बच्चेको उल्टा लिटाकर ऊपरसे मोटी धारसे ठंडा पानी उसके गुदाद्वारके नजदीक कुछ मिनटों तक गिराना। उसमें 'तरड़ तरड़' शब्द होनेके कारण उसका नाम 'तरड़ा' पड़ा जान पड़ता है। कटकर खून निकलनेपर ठंडे पानीमें भिगोकर कपड़ा लपेटनेका तो आम रिवाज है। तलाश करनेसे हिंदुस्तानमें ऐसे अनेक प्रकारोंका पता चल सकता है।

जलके प्रयोगसे दो-चार तरहके रोग आराम होनेकी बात तो लोगोंकी समझमें आती है, लेकिन सिर्फ पानीसे सब तरहके रोग कैसे दूर हो सकते हैं, यह समझमें नहीं आता। इसीलिए पीछे रोगोंकी एकताका सिद्धांत बता आए हैं। जब रोग एक है तो चिकित्सामें अनेकताकी आवश्यकता क्या है?

जल-चिकित्साके महत्त्वके संबंधमें यहां विदेशके अनेक गण्यमान्य डाक्टरों और अन्य महानुभावोंके मत उद्धृत किये जा सकते थे, लेकिन हिंदुस्तानियोंके उनसे अपरिचित होनेके कारण उनका उल्लेख व्यर्थ समझा गया। यहां जल-चिकित्सापर संसार-विख्यात **महात्मा गांधीका** मत देना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। वह कहते हैं---

"बहुत अधिक लोगोंपर प्रयोग करके लूई कूनेने निश्चय किया कि सब तरहके रोगोंमें पानीके दो-तीन (कटिस्नान, मेहन-स्नान, वाष्प-स्नान[1]) प्रकारके स्नानोंसे लाभ पहुंचता है। उसकी पुस्तकोंके अनुवाद अनेक भाषाओंमें[2] हो चुके हैं।

[1] इन तीनों स्नानों की विस्तृत विधि इस पुस्तक के अंत में परिशिष्ट रूपमें दी गई है।

[2] संसारकी अधिकांश भाषाओंमें इसकी एक करोड़ कापियां बिकनेकी बात कही जाती है।

हिंदुस्तानकी कई भाषाओंमें भी हुए हैं। वह सारी बीमारियोंकी जड़ मेदेकी खराबीको मानता है। मेदेकी खराबीसे ही शरीरके बाहरी हिस्सोंमें फोड़े-फुंसी, सूजन तथा अन्य रोग पैदा होते हैं या वह भीतरकी गरमी बाहर आकर सारे शरीरको गरम कर देती है। जल-चिकित्सापर डा० लूई कूनेके पहलेके एक लेखक-की लिखी 'जल-चिकित्सा' नामकी एक बहुत पुरानी पुस्तक है।[1] पर लूई कूनेके पहले किसीने रोगोंकी एकतापर इतना जोर नहीं दिया था और न यही बतलाया था कि सारी बीमारियोंकी जड़ मेदा है। इस बातकी जरूरत नहीं कि हम लूई कूनेके मतको सर्वांशमें सही मान लें, पर इतना निश्चित है कि उसके विचार और उपचार अनेकानेक रोगोंमें ठीक उतरते हैं और सहस्रों उसे आजमा चुके हैं। डर्बनके स्व० मजिस्ट्रेट मि० ट्रीननधनुर्वात रोग-से अपाहिज हो गए थे। वह बहुत डाक्टरोंका इलाज कराके निराश हो चुके थे। किसीकी सलाह पाकर वह लूई कूनेके पास गए। लूई कूनेके इलाजका उनपर बहुत अच्छा असर हुआ। वह चंगे हो गए। उसके बाद बहुत वर्ष डर्बनमें रहे। लोगोंको वह लूई कूनेके उपचारोंकी सलाह दिया करते थे। यह तो जल-चिकित्साकी लोकप्रियताका एक उदाहरण है, पर ऐसे बहुत ज्यादा उदाहरण पाए जाते हैं।"

"हमारा यह शरीर पंच भूत—क्षिति, (पृथ्वी–मिट्टी), जल, पावक (अग्नि-सूर्य), गगन (आकाश), समीर (हवा) से बना है, इसलिए उसकी चिकित्सा भी इन्हीं पांचोंकी सहायतासे होनी चाहिए।"

---

[1] लिचफील्डके सर जान फ्लेयर (१६४९-१७३४) की 'The history of cold bathing, both ancient & modern' पुस्तककी ओर इशारा जान पड़ता है।

: ८ :

मिट्टीका उपयोग

प्राकृतिक उपचारोंमें मिट्टीका विशेष उपयोग किया जाता है। आयुर्वेद और वेदमेंसे हम मिट्टीकी महिमा प्रकट करनेवाले कुछ वचन पाठकों की जानकारीके लिए नीचे दे रहे हैं।

आयुर्वेदमें मिट्टी

कर्दमो दाह-पित्तार्त्ति-शोथघ्नः शीतलः सरः ।

—पानीमें सानी हुई मिट्टी (कर्दम) ठंड देनेवाली होती है, शौच साफ लाती है, जलन, पित्तकी पीड़ा और सूजनको दूर करती है।

कृष्णमृत् क्षतदाहास्त्र प्रदरश्लेष्मपित्तनुत् ।

—काली मिट्टी घाव, दाह, रक्तविकार, प्रदर (स्त्री-रोग) कफ तथा पित्तको मिटाती है।

हिता वा स्यात् कृष्णा वल्मीकमृत्तिका । (सुश्रुत)

सर्प-विषके प्रतिकारमें काली और विमौटकी मिट्टीको हितकर बताया है।

वेदमें मिट्टी

यद्वो देवा उपजीका आसिञ्चन धन्वन्युदेकम्

तेन देवसुतेनेदं दूषयता विषम् ।

—हे मनुष्यो ? मुंहसे लाई हुई मिट्टी और उसमें अपने मुंहके मिलाए जलसे दीमकें जो विमौट (वल्मीक) बनाती हैं, उस (मिट्टी) देव-रचित (प्राकृतिक) भेषजसे इस विषको —रोगरूपी विषको—नष्ट करो।

उपजीका उद्धरन्ति समुद्रादधि भेषजम् तदास्रावस्य।

—दीमकें समुद्र या जलाशयसे—उसके किनारेसे गीली मिट्टीके रूपमें औषधको ऊपर उभारती हैं। वह बहनेवाले घावकी औषध है।

मिट्टी के परम भक्त **गांधीजी** कहते हैं —

"जीवनकी सादगी बढ़नेके साथ-साथ रोगोंके लिए दवा लेनेकी जबरदस्त अरुचि, जो मुझमें पहलेसे थी, वह बढ़ती गई। किंतु भोजनके परिवर्तनोंके कारण कब्जकी शिकायत दूर न हुई। कूनेके कटि-स्नानके उपचारसे थोड़ा फायदा होनेपर भी जितना चाहिए उतना परिवर्तन नहीं हुआ। एक मित्रने जुस्ट की 'रिटर्न टु नेचर' (कुदरतकी ओर लौटो) नामक पुस्तक मुझे दी। उसमें मैंने मिट्टीके इलाजके बारेमें पढ़ा। उक्त पुस्तकके लेखकने इस बातका जोरोंसे समर्थन किया है कि मेवे और ताजे फल ही मनुष्यकी कुदरती खुराक हैं। मैंने इस समय केवल फलाहारका सहारा तो नहीं लिया, पर मिट्टीका उपचार फौरन शुरू कर दिया। उसका मुझ पर अद्भुत असर हुआ। उपचार यह था—साफ खेतकी लाल या काली मिट्टी लेकर उसमें अंदाज़से ठंडा पानी मिलाकर उसे सानकर और फिर साफ पतले भीगे कपड़ेपर रखकर पेटपर लगाकर ऊपरसे पट्टी बांध लेता। यह पुलटिस रातको सोते समय बांधता और सवेरे या रातको जब नींद खुल जाती तो हटा देता। इससे मेरा कब्ज जाता रहा। इसके बाद मैंने मिट्टीके ये उपचार अपनेपर और अपने अनेक साथियोंपर आजमाये और जैसा मुझे याद है, शायद ही किसीपर निष्फल हुए हों।

"मिट्टी और पानीके उपचारोंके विषयमें मेरी श्रद्धा बहुत

अंशोंमें जैसे आरंभमें थी वैसी ही है। आज भी मर्यादाके अंदर रहकर मिट्टीके उपचार अपने ऊपर तो मैं करता ही हूं और अपने साथियोंको भी मौका पड़नेपर सलाह देता हूं। जीवनमें दो सख्त बीमारियां मैं भोग चुका हूं, तथापि मैं मानता हूं कि मनुष्योंके लिए दवा लेनेकी शायद ही जरूरत होती है। पथ्य और पानी, मिट्टी आदि घरेलू उपचारोंसे हजारमें से ९९९ केस अच्छे हो सकते हैं।

"बिच्छू और बर्रेके डंकोंपर मैंने मिट्टीके इलाजको स्वयं आजमाकर देखा है, उसे तत्काल लाभदायक और उपयोगी पाया है। नीचे लिखे उदाहरणोंमें मैंने मिट्टीकी पुलटिसके (जिस तरह ऊपर बताई गई है) उपचारका स्वयं अनुभव किया है—

१. अतिसार (पतले दस्त)

२. सिरदर्द

३. आंखोंका दर्द

४. चोट लगनेसे कहीं सूजन आगई हो तो

५. कब्ज

६. पेटका दर्द

७. पेचिश।

८. १९०४ के पहले फ्रूट-साल्ट लेनेपर ही मेरा पेट साफ रहता था। १९०४ में मिट्टीकी उपयोगिता समझमें आ जानेसे फिर कभी मुझे फ्रूट-साल्ट आदि लेनेकी जरूरत न पड़ी।

९. पेट और सरपर मिट्टी बांधनेसे तेज बुखार घंटे दो घंटेमें हल्का हो जाता है।

१०. फोड़े-फुंसी, खुजली और दाद वगैरहपर मिट्टी

बांधनेसे प्राय: बहुत लाभ होता है। बहते फोड़ेपर कम फायदा होता है।

११. जलेपर मिट्टी बांधनेसे जलन कम हो जाती है और सूजन नहीं आती है।

१२. बवासीरपर बांधनेके लिए मिट्टी लाभदायक है।

१३. पाला पड़नेके समय जिसके हाथ पैर सुर्ख हो जाते हैं और सूख जाते हैं, उसपर मिट्टी जरूर फायदा पहुंचाती है।

१४. उस सूजनमें, जिसमें खुजली होती है, पर दर्द नहीं होता, मिट्टी गुणकारी है।

१५. जोड़ोंके दर्दपर मिट्टी लगानेसे फौरन लाभ होता है। मिट्टीके अनेकानेक प्रयोग करनेके बाद मुझे मालूम हुआ है कि घरेलू इलाजके लिए मिट्टी अनमोल वस्तु है।[१]

"इस तरहसे पानी, मिट्टी आदिसे मियादी बुखार-जैसे भयंकर ज्वरवाले रोगियोंको भी आराम हुआ है। इतना ही नहीं, किंतु बादको उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहा। कुनैन आदि दवा खानेवाले मनुष्य नीरोग हुए-से जान पड़नेपर भी दूसरी बीमारियोंके पंजेमें फंसे रहते हैं। मलेरियाके रोगी कुनैनसे आराम होते बताए जाते हैं, पर मेरा खयाल है कि उन्हें मलेरिया-से शायद ही छुटकारा मिलता हो। पर प्राकृतिक उपचारोंसे मलेरियाके रोगीको पूर्ण नीरोग होते मैंने पाया है।

"प्लेगके रोगियोंके लिए खोले गये एक शिविरमें, जिसमें हम लोग भी शुश्रूषकका कार्य करते थे, हमें बीमारोंको समय-समयसे ब्रांडी देनेको कहा गया था। स्वयं हमें भी छूतसे बचनेके लिए नर्स थोड़ी ब्रांडी लेनेकी सिफारिश करती

---

१ गांधीजी-लिखित 'आरोग्य साधन', पृष्ठ ७७-७८।

दी और खुद भी लेती थी । हममें कोई भी न था, जो ब्रांडी लेता । मुझे तो रोगियोंको भी ब्रांडी देनेमें श्रद्धा न थी। डा० गाडफ्रेकी इजाजतसे तीन बीमारोंके, जो ब्रांडी बिना काम चलानेको और मिट्टीके प्रयोग करने देनेको तैयार थे, सिर और छातीपर जहां दर्द था, मैंने मिट्टी रखनेका प्रयोग किया। इन तीनों बीमारोंमें दो बचे, बाकी अन्य सब बीमारोंका देहांत हो गया।

"कुछही दिनों बाद हमें मालूम हुआ कि उक्त नर्सका भी प्लेग-से देहांत हो गया। उक्त दो बीमारोंके बचने और हम लोगोंके मुक्त रहनेका क्या कारण था, यह कोई नहीं कह सकता; पर मिट्टीके उपचारपर मेरी श्रद्धा, और दवाकी भांति भी शराबके उपयोगके विषयमें मेरी अश्रद्धामें, वृद्धि हुई। मैं जानता हूं कि इस श्रद्धा और अश्रद्धा दोनोंके लिए कोई आधार नहीं है, तथापि मुझपर उस समय जो असर पड़ा, और जो आजतक चला आ रहा है, उसे मिटाया नहीं जा सकता।

"मेरे जो बच्चे जहाजमें हिंदुस्तान आए--उनमें तीसरा लड़का रामदास भी था। स्टीमरमें खेलते हुए उसका हाथ टूट गया। डाक्टरने हड्डी बिठाकर लकड़ीकी तख्तियां बांध दीं और हाथको रूमालसे गलेसे लटका दिया। स्टीमरके डाक्टरकी सिफारिश थी कि जख्मका किसी डाक्टरसे इलाज कराना चाहिए। पर मेरा यह जमाना तो जोर-शोरसे मिट्टीके प्रयोग-का था। मेरे जिन मुवक्किलोंको मुझमें विश्वास था, उनपर मैं मिट्टी और पानीका प्रयोग करता था। फिर रामदासके लिए दूसरा क्या होता?

कांपते-कांपते मैंने उसकी पट्टी खोली, जख्म साफ किया

और हाथमें मिट्टीकी पुलटिस लगाकर जैसे पहले बंधा था वैसे बांध दिया। इस प्रकार बराबर मैं स्वयं जख्म साफ करता और मिट्टी बांधता। किसी दिन कोई गड़बड़ न हुई और दिन-दिन जख्म भरते हुए लगभग महीने भरमें बिल्कुल भर गया। स्टीमरके डाक्टरकी रायके मुताबिक डाक्टरी मरहमसे भी इतना समय लगनेकी बात थी।

"इन घरेलू उपचारोंके विषयमें मेरा विश्वास और उनपर अमल करनेकी मेरी हिम्मत बढ़ी। इसके बाद मैंने अपने प्रयोगों-का क्षेत्र खूब बढ़ाया। जख्म, ज्वर, अजीर्ण, कामरू इत्यादि रोगों-के लिए मिट्टीके, पानीके और उपवासके प्रयोग छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुषोंपर मैंने किए और अधिकांश सफल हुए।

"एक वक्त था कि जब मैं सुबह चाय पीता, दो-तीन घंटे बाद नाश्ता करता, एक बजे भोजन करता, फिर ३ बजे चाय पीता और छः-सात बजे पूरा भोजन करता। उन दिनों मेरी दशा अत्यंत दयनीय थी। जब-तब बदन में सूजन आ जाती। दवाकी शीशी हर दम पास रहती। डटकर खा सकनेके लिए जुलाब लेता और ताकतके लिए तरह-तरहके टानिक (पुष्टिकर दवाइयां)। मेरा खयाल है, आज, तबसे मेरी उम्र बहुत ज्यादा होते हुए भी, उस समयकी अपेक्षा मुझमें काम करने की ताकत तिगुनी अधिक है।"

: ९ :

धूप-स्नान

लूई कूनेने अपने साधनोंमें सूर्य-किरणोंके सेवनकी (Sunbath) बड़ी तारीफ की है। अब तो केवल सूर्य-किरणोंसे अधिकांश रोग दूर करनेके लिए हीलियोथेरैपी (Heliotherapy) नामकी एक चिकित्सा-पद्धति ही चल गई है। डा० रोलियर-ने इसपर एक बड़ी अच्छी पुस्तक लिखी और स्वीजरलैंडमें प्रधानतः सूर्य-किरणोंसे इलाज करनेवाला एक चिकित्सालय खोलकर हजारोंको उससे लाभ पहुंचाया।

भारतीय साहित्यमें भी सूर्यकी इतनी महिमा गाई गई है कि उसे लोग 'सूर्यनारायण' और 'सूर्यभगवानके' नामसे पुकारने लगे। लेकिन आज सूर्यकी किरणोंमें मौजूद अद्भुत रोगनाशक शक्ति-को भूलकर लोग दवाकी शीशियोंपर विश्वास करने लगे हैं। बहुत लोग सूर्यके नामपर रविवारका व्रत करते हैं। एक देहाती कहावत है—"एक अत्तवार के (रविवार) भुखले (उपवास से) जनमक (जन्मका) कोढ़ नाहीं (नहीं) जात (जाता)।" इस कहावतसे पता चलता है कि कभी कोढ़-जैसे भयंकर रोगके लिए उपवास और सूर्यकी उपासना प्रचलित थी।

वेदमें भी सूर्यकी बड़ी महिमा गाई है—

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन्हन्तु निम्रोचन्हन्तु रश्मिभिः।

—सूर्य उदय होनेके बाद, अस्त होनेतक, अपनी किरणोंसे रोगोत्पादक क्रिमियोंका नाश करता रहता है।

जो चीज कम-से-कम ५००० साल पहले वेदोंमें कही गई थी

वही वर्तमान समय में विज्ञान ने बड़ी शोध–खोजके बाद प्रकट की है कि टी० बी० के कीड़े (जर्म्स) उबलते पानीमें न मरनेपर भी सूर्यकिरणोंसे बहुत शीघ्र नष्ट हो जाते हैं—फिर दूसरे कीड़ोंका नाश होनेमें तो संदेह ही क्या है।

उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा
दृष्टांश्चाघ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन्।

—अंधकारनाशक, विश्वप्रकाशक सूर्य सब दृष्ट और अदृष्ट क्रिमियोंको नष्ट करता हुआ पूर्व दिशासे उदय होता है।

अनुसूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते।

—तेरे सब हृदयरोग तथा पांडुरोग (कामला, हलीमक—Jaundice) उदयकालिक नारंगी रंगवाले सूर्यके द्वारा शरीरसे बाहर निकल जायं।

उदय कालका सूर्य (उगनेके घंटेभर बाद और दो घंटेतक) नारंगी रंगवाला होता है। वही किरणें हमारे नग्न शरीरपर, और जाड़ा हो तो एक पतला कपड़ा पहनकर पड़नी चाहिए।

प्रश्नोपनिषद्में कहा है—

प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।

—उदय कालका सूर्य सारे जगत्‌का प्राण है।

ऋग्वेदमें तो सूर्यको स्थावर जंगमका आतमा बतलाया है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।
प्राणेन विश्वतो वीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन्।

—देवता सब प्रकारके वीर्योंसे (गुणोंसे) युक्त सूर्यको अपने प्राणोंसे संबंधित करते हैं—यानी भिन्न-भिन्न प्रकारसे सूर्य-प्रकाशका सेवन करते हैं।

गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि

लाल रंगकी गायोंका दूध पीनेसे और सूर्यकी किरणोंके लाल रंगसे व्यक्ति हृष्टपुष्ट होता है, दीर्घ आयु मिलती है, सुंदरता और बल मिलता है।

सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोङ्गभेदमशीशमः।

—तेरे सिरके रोगोंको और हृदयवेधी शूलको और अंग-वेदनाको यह उदय होता हुआ सूर्य शमन करे।

स नो मृडाति तन्वे ऋजुगो रुजन्।

—वह सीधा जानेवाला (सूर्य) हमारे शरीरोंको आरोग्य देता है, दोषोंको दूर करता है।

मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास
एनं परुष्परुराविवेश यो अस्य।

—हे सूर्य ! सिरदर्दसे, खांसीसे तथा इस मनुष्यके पोर-पोर में (जोड़-जोड़ में) जो रोग घुस गया है उससे, इसे मुक्त कर।

यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो,
वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च।

—इनके सिवा दूसरे जो वात, पित्त, कफ रोग हैं, उन्हें भी वनस्पति और पर्वतके संसर्गसे यानी वन-पर्वतकी खुली हवामें रहकर सेई हुई किरणोंसे हटा।

निरर्रणि सविता साविषत्पदो निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा।

—सविता (सूर्य) वरुण (जल) मित्र (प्राणवायु) अर्यमा (आकका पौधा) हाथ और पावोंके दर्दको दूर करें।

इसमें सूर्य, हवा, पानी और आकके पौधेका दर्द दूर करनेमें उपयोग कहा गया है।

आज भी आकके पत्ते दर्दपर बांधे जाते हैं।

सूर्यकी किरणोंसे स्त्रियां लाभ उठाती थीं, यह स्त्रियों के लिए **"सूर्यरश्मीन् अनुसञ्चरन्ति। मरीचीः अनुसञ्चरन्ति"**, कहकर प्रकट किया गया है।

: १० :

वायु और प्रकाशका उपयोग

मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः। (ऋ० ८।२०२३)

—प्राकृतिक पदार्थोंमें वायु प्राणिमात्रके लिए औषधरूप है।

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयो भु नो हृदे
प्राण आयूंषि तारिषत्। (ऋ० १०।१८६।१)

—वायु हृदय-संबंधी रोगोंमें हितकर है, आयुको बढ़ाता है।

वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे
यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहस

—वायु और सूर्यके जानने योग्य गुणोंका हम मनन करते हैं। वे दोनों सम्पूर्ण जगत के तारक हैं। वे दोनों हमें पापसे (रोगोंसे) बचाएं।

मन्वे वां मित्रा वरुणावृतावृधौ सचेतसौ।

—हे मित्र (वायु) और वरुण (जल), मैं आप दोनोंका मनन करता हूं, आप दोनों सत्यको बढ़ाने और स्फूर्ति देनेवाले हैं।

ठंडे पानीसे नहाकर ठंडी हवामें घूमने जानेमें या कोई किसी प्रकार का व्यायाम करनेमें कितनी स्फूर्ति आती है!

जीवितयोपनाल् एनान् कण्वान् गिरि आवेशय।

—जीवनका नाश करनेवाले ये रोग-बीज जिनके अंदर प्रवेश कर गये हों अर्थात् जिन्हें ये रोग हो गये हों, उन्हें पहाड़पर ले जाओ।

तमांसि यत्र गच्छन्ति तत्क्रव्यादो अजीगमम्।

—अंधकारपूर्ण स्थानोंमें रक्त, मांसको खानेवाले रोग-बीज रहते हैं। मतलब हुआ, नीरोग रहनेके लिए प्रकाशयुक्त हवादार स्थानमें रहना चाहिए।

: ११ :

रोगोंमें दवाकी अनुपयोगिता

अबतकके वर्णन पढ़कर पाठक समझ गये होंगे कि रोग दूर होनेके लिए मनुष्योंको दवाकी नहीं, बल्कि जरूरत है हवाकी, प्रकाशकी, जलकी, मिट्टीकी, आवश्यक आरामकी, व्यायामकी, आहार-विहारमें मिताचारिता की---संयमकी। और उससे भी अधिक आशापूर्ण मनःस्थितिकी।

इसके समर्थनमें वेद और आयुर्वेदके अनेक प्रमाण दिये जा चुके हैं। अब आगेके प्रकरणमें हम देश और विदेशके अनेक महापुरुषों तथा दिग्गज डाक्टरोंके वचनों द्वारा यह दिखानेकी कोशिश करेंगे कि रोगोंमें दवा फायदा नहीं, बल्कि नुकसान करती है।

डाक्टर या उनकी दवाएं रोग मिटा सकती हैं, यह वहम दूर करनेको नीचे कुछ आंकड़े दिये जा रहे हैं। ये सन् १९२३ की ब्रिटेनके रजिस्ट्रार जेनरल की ७६ वीं वार्षिक रिपोर्टसे लिये गए हैं, जिसमें, उस साल वहां किस रोगसे, किस पेशेवाले कितने मरे, यह हिसाब भी दिखाया गया है। इसमें १०-१२ रोग और १४-१५ पेशे लिये गए हैं। अनेक दृष्टियोंसे यह तुलना ज्ञानवर्द्धक है। इससे पता चलता है कि कौन-सा पेशा स्वास्थ्यके लिए हितकारी है, कौन-सा हानिकारक। यह देखने और जनताको समझानेका काम डाक्टरोंका होता है, पर रिपोर्टसे मालूम होता है कि डाक्टरोंका अपना स्वास्थ्य ही तो दूसरोंके मुकाबलेमें अधिक खराब रहता है।

भिन्न-भिन्न रोगोंसे मरनेवाले खेतिहर-मजदूर और डाक्टरों के तुलनात्मक अंक—

रोगोंके नाम	खेतीके मजदूर	डाक्टर	प्रतिशत अधिक
न्यूमोनिया	४०	६७	७०
रक्तवहा-संस्थानसंबंधी (सर्क्युलरी सिस्टम)	५१	९३	८५
कैंसर	५४	७०	३०
मस्तिष्क संस्था (नर्वस सिस्टम)	४५	८०	८५
यकृत्	५	२९	४८०
मधुमेह	४	१३	२२५
वृक्कशोथ	१३	३९	२००
अन्यान्य मूत्र-विकार	१०	१६	६०
पाचन-संबंधी रोग	१९	५०	१६०

इन अंकोंसे पता चलता है कि कम-से-कम इन रोगोंकी दवा डाक्टरोंके पास नहीं है, अन्यथा ये अपनेको पहले रोगमुक्त करते।

इन अंकों से दूसरी बात यह सिद्ध होती है कि गांवोंमें सादे खानपानपर रहने वाले किसान, डाक्टरोंकी अपेक्षा इन भयंकर रोगोंसे कम संख्यामें पीड़ित होते हैं—यानी स्वस्थ रहनेके लिए जीवनमें सादगी जरूरी है, न कि दवा।

हिंदुस्तानके कुछ धनिक यह समझते हैं कि जो बीमारी हिंदुस्तान के डाक्टरोंसे अच्छी नहीं हो पाती, वह विलायतके डाक्टरोंसे अच्छी हो सकती है, ये अंक उनका भी भ्रम दूर करेंगे। जब ये डाक्टर अपनी ही बीमारी दूर नहीं कर सकते तो दूरवालों-की कैसे दूर करेंगे? अंग्रेजी में कहावत है:

'O physician heal thyself'—वैद्यजी, खुदका फिक्र कीजिए।

: १२ :

दवापर अभिमत

हिंदुस्तानमें एलोपैथ——डाक्टर प्राय: अपनी पद्धतिको सर्वश्रेष्ठ और वैज्ञानिक बताकर अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंको कोसते रहते हैं। कुछ लोग उनके वाग्जालमें फंसकर एलोपैथीको वैज्ञानिक माननेकी भूल करते हैं। आशा है कि आगेके वक्तव्योंसे इस संबंधमें उन्हें एक नई दृष्टि मिलेगी।

यूरोप और अमेरिकामें औषधवादके (Medical Science) सैंकड़ों महान् आचार्योंने डाक्टरी और औषधवादकी जो बुराइयां प्रकट की हैं उनमें कुछके मत यहां दिये जा रहे हैं। वे अपने समयके दिग्गज विद्वान थे, उन्होंने हजारोंको डाक्टरी पढ़ाई थी, बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे थे, जिनमेंसे कई आज भी मेडिकल कालेजों में पढ़ाए जाते होंगे—कम-से-कम पुस्तकालयोंकी शोभा तो जरूर बढ़ाते होंगे। वे व्यवसायमें ख़ूब धन भी कमाते थे। लेकिन दीर्घकालके अनुभवसे, यह ज्ञान होनेपर कि एलोपैथीकी निदान-पद्धति, औषधियां और चीरफाड़, रोगीके लिए अत्यंत हानिकर हैं, अपने सहवर्गियों द्वारा अपमानित होनेकी जोखिम लेकर भी, उन्होंने इनके दोष दिखलानेमें आनाकानी नहीं की। ये सत्यके उपासक धन और यशको लात मारकर भी तथ्य प्रकट करनेसे न चूके। सत्यका अन्वेषक, **'दोषा वाच्या गुरोरपि, शत्रोरपि गुणा वाच्या'**——गुरुके दोष और शत्रुके भी गुण कहनेसे मुंह नहीं मोड़ता। ये सत्यके प्रकाशको ढका हुआ न देख सकते थे।

अंग्रेज चिकित्सक डा० फर्थ---मैं कभी समझ न पाया कि डाक्टरोंमें तथा उनके चिकित्सा-विज्ञानमें (Medical Science) लोग कैसे विश्वास करते हैं?

गौरसे देखनेपर यह समझनेमें कोई कठिनाई न होनी चाहिए कि यह संपूर्ण चिकित्सा-विज्ञान---औषधोपचार-कला स्पष्ट, किंतु कलापूर्ण ठगीके सिवा और कुछ नहीं है। इसे चलाते रहनेवाले डाक्टर ठग हैं अथवा अपने-आपको धोखा देनेवाले मूर्ख।

खाने-पीने या लगानेकी हर प्रकार की दवाइयां दुखियोंके दुखको केवल बढ़ाती हैं।

प्रो० डा० बार्कर---दवाके रूपमें दी गई शराबके कारण मैंने बहुतेरी महिलाओंको शराबी बन जाते देखा है।

दूसरोंकी हजामत बनाकर सीखनेवाले अनाड़ी नाईकी भांति डाक्टर भी लोगोंपर व्यर्थ प्रयोग करते रहते हैं। चिकित्सा-शास्त्रके ग्रंथकारोंने भी स्वतंत्र रूपसे खोज करनेके बजाय अपने पूर्ववर्तियोंकी भूलोंकी नकल भर की है।

डा० इवांस (लंदन)---आजकी औषधोपचार-पद्धति (डाक्टरी) बिल्कुल अनिश्चित तथा असंतोषजनक है। इसकी जड़में इसे विश्वसनीय बना सकनेवाला कोई तत्त्व---दर्शन नहीं है, न व्यवहार-बुद्धिके साथ इसका कोई नाता-रिश्ता है।

प्रो० ग्रेगरी (एडिनबरा)---औषधसंबंधी निन्नानवे प्रतिशत बातें असत्य हैं और औषध-विज्ञानके अधिकांश सिद्धांत अनर्गल प्रलाप मात्र हैं।

डा० रैमजे (लंदन)---वर्तमान चिकित्सा-पद्धति अस्पष्ट, खोखली और असंगत कल्पनाओंका संग्रहमात्र है। हमारी कोई

दवा कभी किसीको लाभ नहीं पहुंचाती। यही नहीं, उल्टे वह रोगी-की हालतको बदतर बनाती है। यह कहनेमें मुझे कोई हिचक नहीं है कि अधिकांश मौकोंपर रोगी डाक्टरकी सहायतासे बचा रहकर अधिक निरापद रह सकता है। अपने व्यवसाय-बंधुओंके (डाक्टरोंके) देखे हुए हथकंडे मुझे ये कठोर शब्द कहनेको मजबूर करते हैं।

प्रो० रश (फिलेडेल्फिया)—शवच्छेदोंसे (dissections) हमें रोज मालूम होता है कि हम निदान-विज्ञानसे (pathology) बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। उसके आधारपर नुस्खे लिखते हुए हमें शर्म आनी चाहिए। हमने भ्रांत तथ्यों और गलत सिद्धांतोंके मोहमें पड़कर न जाने कितनी बुराइयां की हैं। हमने सिर्फ रोगोंकी संख्या ही नहीं बढ़ाई, उन्हें अधिकाधिक भयंकर बना दिया है।

डबलिन मेडिकल जर्नल—आज चिकित्सा-विज्ञान (Medical Science) कहलानेवाली इस बिल्कुल अनिश्चित और सर्वथा असंतोषजनक पद्धतिके साथ 'विज्ञान' शब्दका संयोग करना एक भयंकर भूल कहलायेगी। यह बेमेल तर्कों और जल्दबाजीमें गलत तरीकोंसे निकाले हुए नतीजों, तोड़े-मरोड़े हुए तथ्यों, असंतुलित तुलनाओं, अर्थरहित अनुमानों और केवल निरुपयोगी ही नहीं, बल्कि खतरनाक सिद्धांतोंका गोरखधंधा मात्र है।

डा० फ्रैंक—हर साल हजारों रोगी, इस खतरनाक औषधोपचारका पेशा करनेवालों या कहिए 'अधिकार प्राप्त हत्यारों' द्वारा मौतके मुंहमें पहुंचा दिये जाते हैं।

फ्रांसके सुप्रसिद्ध शरीरशास्त्री और **विकृतिविज्ञान-वेत्ता डा० मेजेंदी**—हमारे पास शायद ही शरीर-विज्ञान संबंधी कोई ठोस सिद्धांत हो। ऐसी दशामें उपचारमें हमारा

सर्वथा विफल होना असंभव नहीं है ।

हमारा रोग-संबंधी अज्ञान इतना अधिक है कि रोगीका वह उपचार करनेकी अपेक्षा कि जिसके प्रयोगका प्रयोजन और हेतु दोनों हम नहीं समझते, और जो प्रायः रोगीको मौतके समीप पहुंचा देता है, यह कहीं अच्छा होगा कि हम कुछ भी न करके रोगको प्रकृतिके भरोसे छोड़ दें ।

सुप्रसिद्ध शरीरशास्त्री डा० हाल—मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि बच्चोंकी अधिकतर मृत्युएं शक्ति क्षीण करने-वाली (Exhausting Remedies) दवाओंके गलत और अनुचित प्रयोगके कारण हुआ करती हैं ।

डा० बास्टक—रोगीको हमारे द्वारा दी जानेवाली दवाकी हर खुराक उसकी भीतरी शक्ति (जो स्वयं शरीरको नीरोग करने-में समर्थ होती है) के साथ खिलवाड़ करनेकी कोशिश है ।

डा० हनिमैन—(एलोपैथी—ए वर्ड ऑव वार्निंग टू पेशेंट्स) देशके हजारों नौनिहाल अपनी भरी जवानीमें क्षय और प्लूरसी आदि रोगोंसे मरते हैं । यदि डाक्टरोंमें सत्यताका लेश भी हो तो उन्हें स्वीकार करना पड़ेगा कि इनकी मृत्युके कारण वे ही हैं । इनमेंसे एक भी केस ऐसा नहीं होता, जिसमें डाक्टरकी सुंदर उपचार-कला, मूर्खतापूर्ण रक्तक्षरण और फुफ्फुसावरण प्रदाह-में प्रयुक्त ऐंटीफ्लोजस्टीनने भविष्यमें क्षयका रूप लेनेवाली हालतकी नींव न डाली हो ।

वर्तमान एलोपैथीके जन्मदाता **हिपोक्रेट**—प्रकृति रोग मिटाती है, डाक्टर नहीं ।

डा० काउल्स—प्रायः डाक्टर रोगोंकी बात जानते हैं, स्वास्थ्यकी नहीं ।

सर फ्रेडरिक टीब्ज, एम० डी०, एफ० आर० सी० एस०, के सी० बी० ओ०, सी० बी०, सप्तम एडवर्ड के और लंदनके अस्पतालके कन्सल्टिंग सर्जन और सर्जरीके प्रोफेसर——मैं एक ऐसे युगकी बाट देख रहा हूं कि जब लोग बीमार पड़नेपर दवा लेनेकी बेढंगी आदत छोड़ देंगे।

एस्टली कूपर——एलोपैथी अटकलपच्चू शास्त्र है।

सर जान फारब्ज——सयाने-सयाने डाक्टरोंके होते हुए भी बहुतेरे मनुष्योंका रोग प्रकृतिने ही दूर किया है।

डाक्टर बेकर——ज्वरसे मरनेवालोंकी अपेक्षा ज्वरकी दवासे मरनेवालोंकी तादाद कहीं ज्यादा होगी।

डाक्टर रामसे वाटसन——हम लोगोंका व्यवसाय बहुत प्रश्नोंके संबंधमें शक-सुबहोंसे भरा हुआ है।

डाक्टर फाजवेले——डाक्टरी दुनियासे उठ जाय तो मनुष्य-जातिका अकथनीय लाभ होगा।

डाक्टर मेसनगुड——लड़ाई, महामारी और अकालसे मरनेवालोंकी अपेक्षा कहीं अधिक दवाइयोंकी भेंट चढ़ते हैं।

स्वर्गीय सिविल सर्जन लक्ष्मीनारायण चौधरी–(जबलपुर)– "प्रकृतिद्वारा मिट्टीसे पैदाकी जानेवाली दवाओंका (खाद्य पदार्थोंका) मुकाबला संसारकी बड़ी-से-बड़ी प्रयोग-शालाओंमें तैयार की जानेवाली दवाएं नहीं कर सकतीं। प्रकृति-की इन दवाओंमें उचित परिमाणमें शरीरको चंगा रखनेवाले सब तत्त्व मौजूद हैं। ये सैकड़ों पेटेंट तथा दूसरी दवाएं, जिनके बारेमें बहुत जोरोंसे कहा जाता है कि उनके बनानेमें क्लोराइड कैल्सियम——एक तरहका चूना और लोहा ठीक-ठीक मिकदारों-में मिलाए गए हैं, बिल्कुल बेकार ही नहीं; बहुत हानिकर हैं।

डाक्टरोंके इन बड़े-बड़े ऐलानों और दवाओंके बड़े-बड़े नामोंपर ध्यान देना गलत है। ये डाक्टर एक तरहके सौदागर हैं, जो पैसोंके लिए, न कि रोगीके फायदेके लिए, सौदागरी करते हैं।

इसी तरहकी सौदागरीकी मामूली मिसाल मैदा और सफेद चीनीकी तिजारत है। ये दोनों गैर-कुदरती चीजें हैं और इनसे तंदुरुस्तीको बहुत धक्का पहुंचता है। शरीरकी बाढ़ और उसको चंगा रखनेके लिए जिन विटामिनों और खनिज लवणोंकी जरूरत है वे सब, देखनेमें आंखोंको अच्छा लगनेके तथा बिक्री बढ़ानेके खयालसे, आटे और गुड़से निकाल दिए जाते हैं। लोग यह नहीं समझते कि लवणों और विटामिनोंके निकल जानेसे इन दोनों चीजोंने करोड़ोंको भारी नुकसान पहुंचाया है।

अपनी शुरू जिंदगीमें मैंने दवाओंसे बहुत फायदा समझा था पर लंबे तजरबेके बाद मैं इसी नतीजेपर पहुंचा हूं कि दवाओं से बड़ा नुकसान पहुंचता है। दवाओंसे रोग दब जाता है, अच्छा नहीं होता। डाक्टरका असली काम लोगोंको बीमार पड़नेसे बचाना होना चाहिए, न कि उसे अच्छा करनेके लिए दवाका इस्तेमाल करानेका। दवाओंसे बीमारी कभी अच्छी नहीं होती।"

दवा और डाक्टरोंके बारेमें चिकित्सकोंके अतिरिक्त संसारके कुछ अन्य महापुरुषोंके मत पढ़िए।

डाक्टर वैद्य न होते हुए भी **गांधीजीने** स्वास्थ्यके संबंधमें खूब विचार किया था, पढ़ा था, और अपनेपर ही नहीं, अन्य सैकड़ोंपर भी प्रयोग करनेके बाद उन्होंने अनेक लेख और दो बहुमूल्य पुस्तकें स्वास्थ्यके संबंधमें लिखी थीं। उनकी सबसे बड़ी बात यह थी कि अंतिम समय तक उन्होंने अपना स्वास्थ्य ठीक रखा था।

महात्मा गांधी—"डाक्टर, वैद्य, हकीम—ये कमाईके लिए चिकित्सा-कार्य चलाते हैं। दूसरोंके भलेकी खातिर ये नहीं सीखते। यह दूसरी बात है कि इनमें कोई-कोई परोपकारी भी होते हैं। सिर्फ कुदरती इलाजका ही जन्म परोपकारमें-से हुआ है।

"रोगका उपचार करना तो ठीक है, लेकिन उसके लिए दवा लेना व्यर्थ है, उल्टे उससे बहुत बार हानि होती है।"

भूदान-आंदोलनके प्राण, महान् विचारक **संत विनोबा**—

"अभी दुनियाके विद्वान डाक्टरोंने इकट्ठे होकर और चर्चा करके जाहिर किया था कि इधर तो हम नई-नई दवाइयां तैयार कर रहे हैं और उधर नये-नये रोग पैदा हो रहे हैं।

"डाक्टर पैसा लेकर सेवा करते हैं। कोई छोटा रोग हो तो उसको बड़ा रूप देते हैं और साल-सालभर औषध खिलाते रहते हैं। बड़े लोग बेचारे डरपोक होते हैं, जरा छातीमें दर्द हुआ, तो डाक्टर उनसे कहते हैं कि क्षय रोग हुआ है। फिर उनको औषध खिलाकर काफी पैसे कमाते हैं। यहां मैं डाक्टरोंकी निंदा नहीं कर रहा हूं। यह बात डाक्टरोंने ही खुद पत्र लिखकर कही है। उन्होंने लिखा है कि हम ऐसे हथकंडे करते हैं कि जिससे पैसा मिलता है। आज जो पैसेकी रचना हुई है, उसमें डाक्टर और रोगी, दोनोंके हित अलग-अलग माने जाते हैं। जब लोग बीमार नहीं पड़ते हैं, तब डाक्टरोंका धंधा अच्छा नहीं चलता, इसलिए उन्हें दुःख होता है। जब लोग खूब बीमार पड़ते हैं, तो डाक्टरोंको खुशी होती है।

"रोग-निवारणकी दृष्टिसे पहला नंबर हम उस चीजको देंगे, जिसे चिकित्सा-शास्त्रमें 'पंचकर्म' कहा है और आधुनिक भाषामें जिसे 'प्राकृतिक चिकित्सा' कहते हैं।

"देहातियोंको स्वाभाविक तथा संयमशील जीवन और नैसर्गिक उपचार सिखाने चाहिए। रोगकी दवाइयां देनेकी अपेक्षा हमें ऐसा जतन करना चाहिए कि रोग होने ही न पावें।"

लार्ड फ्रैंसिस जेफरी (१७७३-१८५०)—दवा एक ऐसी कला—या कहिए विज्ञान—है, जो रोगीको उसकी बीमारीमें, कुदरतके उसे अच्छा करने या खत्म करनेतक, भुलावेमें रखकर तसल्ली दिलाती रहती है।

बीमारी और दवा किसी गांवके दो गुंडोंकी तरह हैं, जो एक-दूसरेको मारते-काटते रहते हैं, लेकिन अपने सामान्य शत्रु प्रकृति-के मुकाबलेके लिए दोनों एक हो जाते हैं!

नेपोलियन बोनापार्ट (डाक्टरको संबोधित करके)—डाक्टर! जीवनके सिद्धांतोंपर आक्रमण मत करो—उन्हें अपने आप अपनी रक्षा करने दो, तुम्हारी दवाओंकी अपेक्षा स्वयं वे अपना काम कहीं अच्छा करेंगे।

इंगलैंडके नामी पादरी सी० काल्टन (१७८०-१८३२)—दवा लेनेका अर्थ है कि एक और नई बीमारी पल्ले बांधना या पुरानीको दबाना।

फ्रैंकलिन—आराम भगवान् करता है, डाक्टर अपनी जेब भरता है।

पोप—व्यायाम, मिताचारिता, शुद्ध वायु, आवश्यक आराम, ये बड़े-से-बड़े डाक्टर हैं।

थोरो—मनुष्य की विश्वास करनेकी प्रवृत्तिके साथ अधिक विश्वासघात करनेवाली वस्तु दवाके सिवा दूसरी नहीं है।

हैजलिट—दवाकी टोटकेबाजियोंके विश्वासियोंका हम मूर्ख कहकर मजाक उड़ाते हैं और वक्तपर हम स्वयं उनमें फंस जाते हैं कि शायद इनसे कुछ फायद हो ही जाय!

: १३ :

क्या दवा बिल्कुल बेकार है ?

इतने महानुभावोंके मत पढ़नेके बाद भी कुछ लोग कह सकते हैं—

"दुनियामें लाखों ही दवासे अच्छे होते देखे जाते हैं, उस दशामें दवाको व्यर्थ कैसे माना जा सकता है ?"

बदलेमें इन दोस्तोंसे पूछा जा सकता है कि अगर दवासे आराम होना माना जाय तो दवा बदलनी क्यों पड़ती है ? एक ही डाक्टर पांच-पांच, सात-सात बार दवा बदलता है और कई-कई डाक्टर बदले जाते हैं, इस दशामें किस दवाको रोग मिटानेका श्रेय दिया जायगा ?

वही दवा, उसी प्रकारके अन्य रोगियोंको देनेपर यदि वे अच्छे नहीं होते तो अनिवार्यतः यह माना जायगा कि वह दवा काम नहीं करती। एक ही तरहकी दवा कितनी ही बार कितने ही रोगियों-पर व्यर्थ होती है। इससे जान पड़ता है कि किसी रोगपर किसी दवाका परिणाम निश्चित नहीं है, अंधेरेमें ढेला फेंकने-जैसा काम है, सौ-पचास फेंकनेपर संयोगसे एक ढेला निशानेपर लग सकता है।

विदेश, और इस देशमें, लाखों आदमी डाक्टर-वैद्योंसे थक-थकाकर प्राकृतिक चिकित्साकी शरण में आए और अच्छे हुए। ये दवासे अच्छे क्यों नहीं हुए ? अन्य लाखोंकी गवाहियां मिल जायंगी, जो दवासे अच्छे न होनेपर दवा छोड़ बैठे और फिर अपने

आप चंगे हुए। और करोड़ोंकी कहानियां मिलेंगी, जो दवा खाते-खाते कालके गालमें चले गए।

किसीने कहा है—**जड़्यां बूट्यां जन बचे तो बैद क्यूं मर जाय ?** अगर दवासे लोग, अच्छे हो सकते हैं तो डाक्टर-वैद्य क्यों मरते हैं ?

कोई डाक्टर कह सकता है कि डाक्टर, वैद्य बीमारी अच्छी कर सकते हैं, मौतको नहीं रोक सकते।

मनुष्यकी मौत किसी-न-किसी बीमारीमें ही तो होती है ? बिना किसी रोगके बैठे-बिठाए मरनेवाले तो हजारमें पांच भी नहीं होते। रोगी रहकर मरनेवाले सब दवाकी व्यर्थता सिद्ध करके ही तो मरते हैं।

यों लाखों ही क्यों, करोड़ों दवासे आराम होते दिखाई देते हैं—दवा फिर वह एलोपैथी हो, आयुर्वेदिक हो, होमियोपैथी हो, हकीमी हो अथवा गांव में इधर-उधर पाई जानेवाली जड़ी-बूटी या घास-पात हो। भारत की ८० प्रतिशत जनता, जो देहातमें बसनेवाली है, दवाके नामपर वही घास-पात इस्तेमाल करके अच्छी होती है। यदि दवासे रोग दूर होना स्वीकार किया जाय, तो मानना पड़ेगा कि हर तरह की दवासे ही रोग जाता है। और दवासे ही क्यों, लाखों झाड़फूंक, गंडा-ताबीज, डोरायंत्र, मंत्र, पूजापाठ, जप आदि अनेक औषध-रहित साधनोंसे आराम होते पाए जाते हैं। बहुत पहले तो रोग-निवृत्तिके यही साधन अधिक चलते थे—गांवोंमें आज भी चलते हैं। लेकिन, यहां हमें सिर्फ औषधवादपर विचार करना है।

बिना दवाके आराम होनेवालोंपर भी विचार करें तो उनकी गिनती ही नहीं की जा सकती। सब मनुष्य, सब समय,

सब रोगोंमें कहां कोई दवा लेते हैं ? मनुष्यके सिवा संसारके अन्य असंख्य प्राणी भी रुग्ण होनेपर क्या दवा लेते हैं ? अच्छे तो अपने-आप होते ही हैं। अन्यथा दुनियासे उनकी नस्लें कबकी खत्म हो गई होतीं। सर्दी, जुकामके लिए कितने आदमी दवा लेते हैं ? डाक्टर लोग जुकामको एक बड़ा रोग मानते हैं। अनेक बीमारियां बिगड़े हुए जुकामके परिणामस्वरूप मानी जाने लगी हैं। देहातमें साधारण ज्वरमें दवा लेनेका रिवाज नहीं है। मामूली दस्त और आंवोंमें भी कोई दवा नहीं दी जाती। दो-चार दिन तो लोग योंही देखते हैं कि रोग अपने-आप ठीक हो जायगा। इस प्रकार करोड़ों स्वतः अच्छे होते हैं। जरा अस्वस्थ होते ही तुरत कोई-न-कोई दवा लेनेकी भावना तो नये जमाने-की देन है।

कुछ लोग तो अच्छे रहनेके लिए भी दवा खाने लगे हैं। रोग-से मुक्त होनेके लिए ही नहीं, मुक्त रहनेके लिए भी इंजेक्शन दिए जाते हैं। अनेक रोगोंकी रोकथामके लिए टीके दिये जाते हैं। स्वस्थ रहनेके लिए स्वास्थ्यके नियम पालने चाहिए या दवा खानी चाहिए ? डाक्टरोंकी बाढ़के साथ यह भावना बढ़ी है या बढ़ाई गई है; क्योंकि डाक्टरोंको आमदनीके नये-नये जरिए चाहिए। यहांतक कि शहरकी नकलमें देहातोंमें कहीं-कहीं अस्पताल बनानेकी मांग की जा रही है। विनोवाजी कहते हैं—"यदि गांवोंमें अस्पताल हुए तो यह देहातियोंका दुर्भाग्य ही होगा।"

: १४ :

आराम प्रकृति करती है

सच तो यह है कि दवाके प्रभावसे अच्छे होते माने जाने-वाले भी, दवासे नहीं, बल्कि प्रकृतिके प्रभावसे ही अच्छे होते हैं। दवाका केवल नाम होता है। यदि हमारे शरीरमें अपने-आप आराम करनेकी शक्ति मौजूद न होती यानी प्रकृति आराम न करती होती, तब—और तभी सब औषधवादियोंकी, और उनकी औषधोंकी, सही परीक्षा हो सकती। "बैद करे बैदाई, चंगा करे खुदाई"—आराम तो प्रकृति करती है (Nature cures) और उसका यश लेनेको डाक्टर-वैद्य दौड़ते हैं। किसी नम्र चिकित्सक-का कथन है—मैं उपचार करता हूं, अच्छा भगवान (भगवानकी बनाई हुई प्रकृति) करता है। "I treat, He cures."

सब प्राणियोंके शरीरमें रोगोंको अपने-आप अच्छा करनेकी शक्ति रहती है। उसे प्रकृति अथवा जीवनी-शक्ति कह सकते हैं।

इन दिनों कई जगह सरकारकी तरफसे आयुर्वेद और होमियोपैथी आदि पद्धतियोंकी दवाओंकी तुलनात्मक जांचके लिए अस्पताल खोले गए हैं, जहां कुछ खास रोगोंपर दवाओंकी जांच की जाती है। घर बैठे ही इतना तो कहा जा सकता है कि हर पद्धतिमें सौमें पचहत्तर आराम होंगे ही। कोई दवा न दीजिए तब भी होंगे; दीजिए तब भी होंगे। अधिकांशको कुदरत आराम करती ही है। सरकारको इन सबके साथ ही एक प्राकृतिक चिकित्सालय भी खुलवाना चाहिए, जहां किसी औषधपद्धतिसे,

फिर चाहे वह एलोपैथी हो, होमियोपैथी हो या आयुर्वेदीय हो, आराम न होनेवालोंका इलाज किया जाय। एलोपैथीको स्वयं-सिद्ध मानकर दूसरी पद्धतियोंकी परीक्षा, जांचका सही तरीका नहीं कहा जा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्साका सिद्धांत है कि मनुष्यकी अंतर्शक्ति—जीवनीशक्ति उसे नीरोग करनेके लिए शरीरमें किसी प्रकारसे किसी रूपमें एकत्र हुए दोषको बाहर निकालनेकी कोशिश करती है। उस कोशिशमें—कूड़ा बाहर निकालनेमें—कष्ट होना स्वाभाविक है। कष्टदायक भावका नाम ही रोग है। शरीरकी सफाईके लिए प्रकृतिकी ओरसे मिलनेवाले कष्टसे—रोगसे हमें घबड़ाना नहीं चाहिए। उससे तो हम आगे होनेवाले बडे कष्टसे बचते हैं। घरमें सफाई करने आनेवाले मेहतरका तो हमें स्वागत ही करना चाहिए।

इस प्रकार एकत्र मलिनताको यानी शरीरके दोषको दूर करनेकी प्रकृतिद्वारा होनेवाली कोशिशका नाम ही तो रोग है। यदि हम इस अवसरका सही तरहसे उपयोग करना जान जायं तो तंदुरुस्ती हमारी मुट्ठीमें रहेगी। जैसे ज्वरमें, यदि हम उसे दबाने या जल्दी उतारनेकी कोशिश न करके ज्वरके आनेके कारणोंको समझकर उन्हें शीघ्रतासे दूर कर दें, तो ज्वर स्वयं चला जायगा। यही नहीं, हमें पहलेकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ कर जायगा। यही बात जुकाम, खांसी और आंव आदि अन्य उग्र रोगोंमें होती है।

सही उपचारका परिणाम यह होना चाहिए कि हम रोगसे पहलेकी अपेक्षा, अधिक स्वस्थताका अनुभव करें। तभी यह सिद्ध होगा कि रोग दोष-मुक्तिके लिए था। औषधवादी तो इतने-

से ही संतोष कर लेता है कि उसने तात्कालिक पीड़ाको नष्ट कर दिया। गांधीजीके कथनानुसार—'इसीको वह अपनी बड़ी विजय मानता है।' लोग भी एक बार रोगके लक्षण मिट जाने मात्रसे काम पूरा हुआ मान लेते हैं। ज्वर १०४° से ९७॥° पर आ जानेसे ही सफलता समझ ली जाती है। इतनेसे कामके लिए जमीन-आसमान एक किया जाता है। पर थर्मामेटरमें या हाथ-से गरमी न लगनेपर क्या यह मानना उचित होगा कि रोगी दोष-मुक्त हो गया? दवाके प्रभावसे शरीर गरम न लगनेपर भी ज्वरके साथ रहनेवाली सिरकी पीड़ा, शरीरका टूटना, कब्ज, भूखकी कमी, नींदका अभाव आदि लक्षण तो रहते ही हैं—गरमी जानेके साथ वे लक्षण नहीं जाते। बिना दवाके ज्वर जाने-पर ये लक्षण भी साथ ही जाते हैं। ज्वर गया माना तभी जाता है कि जब सब लक्षण ठीक हो जायं। केवल थर्मामेटरमें गरमी न आने मात्रसे ज्वर—रोग दूर हुआ नहीं समझा जासकता। ज्वरकी भांति ही अतिसार, आंव वगैरहका हाल होता है। दवासे आंव, दस्त बंद हो जाते हैं, लेकिन पेट फूल जाता है, शरीरमें शोथ आ जाता है—जिसे आमवात कहते हैं। शरीरमें दर्द रहने लगता है। दस्त जारी रहनेके समय होनेवाली तकलीफसे यदि दस्त बंद करनेपर कष्ट और बढ़ गया तो दस्त रोकने मात्रसे क्या फायदा?

ऐसी भूलें करनेवाले ही यह कहते पाये जाते हैं कि **"मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की"**।

अथवा एक उर्दू कविके इस कथनको दोहराते हैं—

इक न इक आरजा रहा हमको,
थमे दस्त तो बुखार आया।

कविने यह मज़ाक में कहा होगा पर वास्तविकता यह है कि

शरीरसे दस्तोंके रूपमें निकलते विकारको दवा देकर रोक दिये जानेपर कुदरतका उसे शरीरसे निकालनेको बुखार लाना स्वाभाविक है।

आयुर्वेदमें कहा है—

या ह्यु दीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च
सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत्

—उपचार वह चाहिए, जो उठे हुए रोगको मिटावे और नया न उठावे, न कि वह कि जो एक व्याधिको हरे और दूसरी पैदा कर दे। प्राकृतिक उपचारमें रोग आसानीसे दूर होनेके साथ ही दवाके कारण प्रायः नये पैदा होनेवाले रोगोंका (Drug Disease) डर बिल्कुल नहीं रहता।

: १५ :

प्राकृतिक चिकित्साकी विशेषता

डाक्टरकी जरूरत तो किसीके बीमार पड़नेपर होती है और बीमारके अच्छा हो जानेपर फिर न उसे रोगीसे कोई ताल्लुक रहता है, न रोगीको उससे। पर प्राकृतिक उपचारकका काम-लोगोंको ऐसी जीवन-पद्धति—आहारविहार रखना सिखाना है कि वे बीमार न पड़ें क्योंकि बीमार न पड़ना बहुत आसान है। कहा है—**"प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्"**—कीचड़में पड़कर उसे धोनेकी परेशानीकी अपेक्षा अच्छा है कि हम उससे दूर ही रहें। चरकमें कहा है—

प्राज्ञः प्रागेव तत्कुर्याद्धितं विद्याद्यदात्मनः

अर्थात्—बुद्धिमानको रोगी होनेसे पहले ही इस तरह रहना चाहिए कि रोगी न हो।

अंग्रेजीमें कहावत है—बीमारी न होने देना इलाजकी अपेक्षा बेहतर है (Prevention is better than cure)। बीमारको कितना शारीरिक और मानसिक कष्ट उठाना पड़ता है, कितनी पैसेकी बरबादी होती है और कितना दूसरोंको उसके लिए परेशान होना पड़ता है?

बीमारको ऐसा उपचार बतलाना जिसे वह आसानीसे समझ सके और बिना किसी बाहरी मददके स्वयं कर सके।

आगे तन्दुरुस्त रहनेके लिए प्राकृतिक चिकित्सकको कोई नया नुस्खा लिखनेकी जरूरत नहीं है। तन्दुरुस्त रहने—बीमार न पड़नेका जो तरीका है वही तरीका दुबारा बीमार न पड़ने के लिए भी बताया जाना चाहिए।

नीरोग होनेके संक्षिप्त उपाय

१. रोगको दुश्मन न मानें। वह हमारे आहार-विहारकी भूलोंके कारण शरीरमें एकत्र हुए दोषको निकालनेका—हमें पहलेसे अच्छी हालतमें करनेका प्रकृतिका प्रयत्न है।

२. हमेशा मनको खुश रखें। आशावादी रहें।

३. जब कभी शरीर भारी जान पड़े, आराम करें। शारीरिक और मानसिक, दोनों तरहके कामका भार घटा दें।

४. खाना छोड़ दें या बहुत हल्का कर दें। ५. पेशाब पाखाने की हाजत कभी न रोकें पेट साफ न होता हो तो पेड़ू पर मिट्टीकी पट्टी रखें या एनिमा[1] लेकर पेट साफ कर लें। तीन चार दिन खाना बंद कर देने और उस समय रोज एनिमा लेकर पेट साफ कर लेनेसे उन अनेक साधारण रोगोंसे छुटकारा पाया जा सकता है, जो आगे चलकर असाधारण बन जाते हैं।

६. पानी नित्य अढ़ाई-तीन सेर पीना ही चाहिए। न पीते हों तो बीमारीके दिनोंमें तो इतनी मात्रा जरूर कर लें।

७. नींद कम-से-कम सात घंटे लेनी चाहिए। शरीरमें कोई खराबी हो तब तो जरूर इतनी देर सोना चाहिए।

८. नित्य ही, खासकर बीमारीमें शरीरके अंग-प्रत्यंगको रगड़कर नहाना आवश्यक है। इससे शरीरमें स्फूर्ति रहती है।

९. सांस लेनेके लिए हमेशा स्वच्छ हवा काफी मात्रामें मिलनी चाहिए। सबेरे दूरतक तेजीसे टहलने जानेसे फेफड़ोंको साफ हवा मिल सकती है।

१०. मानसिक चिंता बढ़ानेवाले कामोंसे बचना चाहिए, खासकर बीमारीकी दशामें।

---

१. एनिमा लेने की विधि परिशिष्टमें दी गई है।

प्राकृतिक चिकित्सा
के
चमत्कार

: १ :

बवासीर

जानकीदेवी बजाज



अनेक वर्ष पहले मुझे बवासीर हुई थी। उसमें बड़ी तकलीफ रहती थी। अजमेरके एक डाक्टरको, जो बवासीर – नश्तरके विशेषज्ञ माने जाते थे, मैंने दिखाया। उन्होंने शायद काम ज्यादा अच्छा होनेके खयालसे बंबईके अपने एक दोस्त जर्मन डाक्टरको दिखानेकी सिफारिश की।

आज मुझे याद नहीं कि उस जर्मनने देखनेकी कितनी फीस ली थी, पर उसकी दिखाई-दिखाईमें हुए कष्टसे मैं घबड़ा गई। लेकिन उसके इलाजसे बिल्कुल चंगी हो जानेके दिलासेसे मैंने अपने दिलको कड़ा करके सोचा, चलो, एक बार कष्ट-आराम, जो होना है हो ले, हमेशाके लिए इस बला से छुटकारा होता है तो करा ही डालना चाहिए। बिजलीसे मेरे बवासीरके मस्से जलाये गये। उसमें हुई पीड़ाको याद करनेसे आज भी मेरे रोंगटे खड़े होते हैं। महीने-भर उसके अस्पतालमें पड़ी चुपचाप मैं दुःख भोगती रही। रुपये तो पानीकी तरह ही बहे थे। महीनेभरमें

डाक्टर और नर्सोंके—सब मिलाकर—१५०००) से कम न लगे होंगे। पर इससे क्या मेरी तकलीफ जाती रही? नहीं, मस्से जाकर भी, आज वह घाव, बरसों बाद भी, मुझे काफी दुःख दे रहा है। इतने ज्यादा रुपये इस खयालसे खर्च किये थे कि मनमें विदेशी डाक्टरके अधिक कुशल और सच्चे होनेका विश्वास था कि जब वह बिल्कुल चंगी होनेकी गारंटी देता है तो जरूर रोग जड़से चला जायगा। लेकिन यह विदेशी तो स्वदेशी डाक्टरोंसे भी नाकारा निकला। लेकिन उसे क्यों दोष दूं? क्यों गई मैं उसके पास? वह मुझे बुलाने नहीं आया था। मैंने अपनी भूलका फल पाया। पर मैं आज दूसरोंको सावधान करना चाहती हूं कि बवासीर या किसी भी रोग के लिए कटाने-चिराने या दवा खानेके पहले हमें प्रकृतिके मार्गपर चलकर, यानी अपना आहार-विहार सुधारकर देखना चाहिए। उससे निश्चित लाभ होता है—हानि तो कुछ नहीं होती।

× × ×

विनोबाजी बिहारसे बंगालकी सीमामें प्रवेश कर रहे थे। मैं भी विनोबाजीके साथ चलनेके इरादेसे झरिया पहुंची। विनोबाजीका चलना तो दौड़ना होता है। मैं कुछ पीछे छूट गई। साथ लेनेको दौड़ी तो घुटनों और बायें हाथके अंगूठेके बल जमीन पर गिरी। बायें घुटने और हाथके अंगूठेमें कड़ी चोट आई। सारा बोझ बायें हाथके अंगूठेपर पड़नेसे मुझे लगा कि मेरे अंगूठेकी हड्डी सरक गई है। मेरा चलना तो खत्म हुआ।

मैं बांकुड़ा (प० बंगाल) पहुंचा दी गई। मेरी चोटमें दर्द तो काफी था, पर भूमि-दानके सिलसिलेमें कूप-दानकी तथा मारवाड़ी स्त्रियोंसे पर्दा और ओढ़ना छुड़ानेकी लगन मुझे उससे

भी ज्यादा थी। पांच दिन चोटको लिये-लिये ही मैं काम करती रही। चोटकी वजहसे शायद वहांके काम में सफलता कुछ अधिक मिली। लोगोंको मेरे हाथ-पैरोंमें पट्टियां बंधी देखकर दया आई होगी। लेकिन बांकुड़ामें जिनके यहां मैं ठहरी थी, उन्होंने इसी बीच कई डाक्टरोंको मेरी चोटें दिखाईं। किसीने इंजेक्शन देनेकी बात की, किसीने कुछ लगानेकी दवा बतलाई, किसीने कुछ खानेकी। उन्हींमेंसे एकने मेरे बायें हाथके अंगूठेको कपड़ेकी पट्टीसे कसकर बांध दिया। मैंने न इंजेक्शन लिये, न कोई दवा ही खाई। अलबत्ता, आग्रह करनेपर बादामका हलुआ खानेकी हामी मैंने अवश्य भरी, क्योंकि, लोगोंका खयाल है कि चोटमें हलुआ खानेसे लाभ होता है। मेरे मनमें भय हो रहा था कि यह दर्द कहीं बढ़ न जाय, या हमेशाके लिए रह न जाय।

इस डरसे मैंने अपनी चोटकी प्राकृतिक चिकित्सा करानेकी सोची। क्योंकि दवापरसे तो मेरा विश्वास कभीका उठ चुका है। मैं जसीडीह पहुंची। स्टेशन केंद्र-कार्यालयके नजदीक ही है। मैं पैदल चली। पैदल आते और मेरी बाईं हथेलीपर पट्टी बंधी देखकर पोद्दारजी बोले, "बस, इसी छोटी-सी चोटके लिए मुझे बांकुड़ा आनेको तार दिया था क्या ? जानकीबहन, लगता है, आप खामखा जरा-सी चोटको बड़ी मान बैठी हैं।"

मैंने मनमें कहा, "देखो तो, क्या तमाशा है ! चोटके लिए कोई सहानुभूति दरसाना दूर रहा, उल्टे मुझीको उलाहना दे रहे हैं ! पर जब आ ही गई हूं तो सभी तमाशे देखने ठहरे।"

कमरेमें घुसते ही एक तख्तपर मेरा बिस्तर लगा दिया गया और हाथकी पट्टी खोल दी गई। मेरी यह पट्टी खुली सो खुली ही, फिर बांधनेकी नौबत ही न आई। पट्टी खोलकर चोटके

तीनों स्थानोंपर सक दिया गया। यहां इतना कह दूं कि सेंक बिजलीके लैंपसे दिया गया। मैंने पोद्दारजीसे पूछा कि क्या उनके निसर्गोपचारमें बिजली चलती है ?

"बिजली चलने न चलनेकी कोई बात नहीं हैं, चोटके स्थानोंको इस वक्त गर्मी देनेकी जरूरत है—वह चाहे जिस तरहसे दी जा सकती है। एक भाईके पास यह लैंप बेकार पड़ा था, उनसे लेकर इसका प्रयोग किया जा रहा है। गर्मी पहुंचानेके सिवा इससे कोई ज्यादा फायदा होता हैं, यह नहीं समझना चाहिए।"

सेंक वह खुद अपने हाथ से देते रहे और मेरी इधर कई महीनेकी कथा सुनते रहे। मैं सोच रही थी कि कुछ खानेको पूछेंगे। डर भी रही थी कि हलुएकी बात सुनकर मेरा मजाक भी उड़ायेंगे। उन्होंने पूछा, "इस वक्त कुछ खाना है ?" मैंने कहा, "पेट तो भरा है, कई दिन बादामका हलुआ खूब खाया है।"

"ठीक है, तो इसे पूरा पच जाने दीजिए, तब फिर खानेकी बात की जायगी।"

"मैं तो आपसे इसीकी उम्मीद कर रही थी।"

"तो लीजिए, आपकी मनचाही हो गई।"

दूसरे दिन मेरे सारे शरीरको भाप देकर पसीना लाया गया। फिर ठंडे पानीसे तुरंत स्नान कराकर दस मिनटका कटिस्नान दिया गया। बादको आध मील चलकर मैं प्राकृतिक चिकित्सा-केंद्रका चिकित्सालय देखने गई। मैंने समझा था कि वहां अस्पतालकी तरह रोगी बड़े-बड़े कमरों में लेटे होंगे—कोई कराहता-चिल्लाता होगा, किसीके पट्टियां बंधी होंगी; पर यहां कुछ वैसा न देखा। अलग-अलग कोठियोंमें रोगी थे—मानों यहां वे हवा खाने आये हों! बीस-बाईस रोगी होंगे और सब भिन्न-भिन्न रोगोंके।

लकवा, गठिया, दमा, खांसी, मोटापा, कमजोरी, मासिककी खराबी आदिसे पीड़ित अनेक भाई-बहनोंको मैंने देखा। पाठकों-को सुनकर आश्चर्य होगा कि इतने विभिन्न रोगियोंका इलाज प्रायः एक ही तरह का चलता है, जिसे यह 'शरीरका शोधन' कहते हैं। चिकित्सक रोज दस-दस पांच-पांच मिनट सब रोगियों-से बात करते हैं। मुझे तो यहां कुछ 'बात की करामात' ही जान पड़ी। रोगी खूब खुश थे और नीरोगिताकी ओर अग्रसर होते जान पड़ते थे। मुझे अपना दर्द भी आज बहुत हल्का जान पड़ा। मैंने पूछा, आज कुछ खाना है?

"आज तो दिनभर पीना है। सादा पानी, या जी चाहे तो पानीमें थोड़ा टमाटरका रस मिलाकर।"

इसपर मैंने कहा, "मुझे तो जल्दी ही यहांसे बलरामपुर विनोबाजीके पास जाना है, तबतक आप चाहे उपवास ही करा दें।"

"आज चलने दीजिए, कल देखेंगे। अगर जरूरत हुई तो करायेंगे, नहीं तो कुछ खानेको देंगे।"

दिनमें मैं पानी पीती रही। तीसरे दिनके उपचारमें चोटों पर चार बार मिट्टीकी पट्टी चली। पंद्रह मिनट गरम पानीमें बैठकर बादको ठंडे पानीसे नहाना और चोटपर धूप देना भी चलता रहा। रातको सोते समय चोटपर रोज सेंक देते थे। यही क्रम चलता रहा।

तीसरे दिन पोद्दारजीने मुझे अपने भोजनमें शरीक किया। छः महीनेसे वह और उनके कई साथी अमृतान्नपर[1] हैं। मैं इस

१—खुराक की जिन वस्तुओं को आग पर पकाया न जाय उसे अमृतान्न कहते हैं।

खुराकके बारेमें यहां विस्तार में नहीं जाऊंगी। मुझे डर है कि मैं उसे समझा न पाऊंगी और कोई बिना पूरा समझे-बूझे उसका प्रयोग करके बादको नुकसान उठा ले तो अच्छा न होगा। मैं यह तो नहीं कह सकती कि मेरा चोटका दर्द कम होनेमें उस खुराकसे कितना फायदा हुआ, पर इतना कहे बिना मैं नहीं रह सकती कि मेरे कोठेकी सफाईपर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। मैं वहां सदा इसी खुराकपर रहनेकी बात सोचने लगी। मेरे बवासीर-के घावको उससे बहुत फायदा हुआ।

दूसरे दिन मुझे एनिमा देनेकी तैयारी होनेपर मैंने इन्कार किया क्यों कि पहले ही दिन एनिमासे मेरे कोठेकी सफाई हो गई थी।

इस प्राकृतिक उपचारकी बदौलत मेरा दर्द करीब-करीब अच्छा हो गया। मैं दो-चार दिन और ठहर सकती तो यह जड़से चला जाता। चलते समय मुझसे कहा गया कि पांच दिनमें प्रकृतिसे ——स्वभावतः——अपने आप–जितना हो सकता था, हुआ, इसके पूरा आराम होने में कई दिन और लगेंगे। दर्दके स्थानपर मिट्टी-की पट्टी लगाने, खुराक ठीक रखने और साथ ही आराम करना भूल न जानेकी हिदायत की गई।

× × ×

मैं इस इलाजकी बदौलत डाक्टरोंके संकट से बची। छः दिनों-में यहां मुझे मालूम ही न हुआ कि मैं इलाजके लिए आई हूं। पोद्दारजी ने तो कहा ही कि जानकी बहन, इलाजका तो निमित्त हो गया, वास्तव में तो आपको मिलने ही आना था या यह चिकित्सा-केंद्र देखने। कुछ तो बात ऐसी थी भी।

: २ :

टांसिल, हृदय की धड़कन, प्रदर

सौदामिनीदेवी



तीन साल पहले मैं अनेकानेक रोगोंकी शिकार हुई, या कहिए, कर दी गई। शुरुआत तो जरासे टांसिलसे हुई थी। फिर बढ़ते-बढ़ते हृदयमें धड़कन और भयंकर दर्द, प्रदर सारे शरीरमें ऐंठन और दर्द, सिरमें दर्द और पेटमें दर्द रहने लगा, भूख जाती रही। वजन १ मन ५ सेरसे घटकर कुल ३० सेर रह गया। ओठ, आंख तथा शरीरके कई हिस्सोंमें काले दाग हो गये। आंखोंमें घाव और टांसिलमें सेप्टिक हो गया। हालत खराब देखकर डाक्टरोंने जवाब दे दिया। और यह दशा औषधि-सेवन करते-करते हुई थी! आज तो मैं समझती हूं कि यह सब औषधि-सेवनका ही परिणाम था। डाक्टरने भी यह कबूल किया था।

इलाजके लिए मैं दो साल पटनामें डेरा डालकर रही। कोई बड़ा डाक्टर नहीं बचा, जिससे मैंने इलाज न कराया हो। किसीको मैंने यह कहनेका मौका नहीं दिया कि मैंने बीचमें उसका इलाज छोड़ दिया। न मैंने दिनोंकी परवाह की, न अपने शरीरकी। मेरे शरीरका कोना-कोना इंजेक्शनकी सूइयोंसे बींधा गया। आज कह भी नहीं सकती कि मैंने कितने इंजेक्शन लिये थे। अनगिनत थे।

रुपयोंकी तो कोई बात ही नहीं थी। दो सालमें डाक्टरोंने मुझसे कम-से-कम दस हजार रुपये ले लिये होंगे। मैं बेउज्र रुपये देती रही। वक्तका भी कोई खयाल न रखा। जितने-जितने दिन जिस डाक्टरने कहा, उसे उतने-उतने दिन दवा आजमाने दी—जल्दी-का नाम न लिया, लेकिन किसीसे कुछ न हुआ।

डाक्टरोंके इलाजमें ही पटना बुलाकर मैंने अपनी मांको भी खोया।

पटनामें मैंने सैकड़ोंको डाक्टरोंके यहां टकराते पाया, पर फायदा होते बहुत कमको ही देखा। डाक्टरोंके यहां बातें चिकनी-चुपड़ी सुननेको मिलती बाकी तो ठगी-ही-ठगी है।

पटनामें डाक्टरोंसे निराश होकर मैं अपने घर गुआगाछी (जिला पूर्णिया) चली गई। वहा मेरे एक रिश्तेके भाईने प्राकृतिक चिकित्सासे मेरा परिचय कराया। उसकी बदौलत बिना किसी व्ययके मैं सिर्फ तीन महीनेमें अपने सारे रोगोंसे छुटकारा पा गई। मैंने एनिमा, कटिस्नान, धूपनहान, मिट्टीकी पट्टी और रसाहार के सहारे अपनेको रोगमुक्त किया।

अब मेरे मनमें प्राकृतिक चिकित्साके विशेष अध्ययन और अनुशीलनकी इच्छा जागी। संयोगोंने शिक्षाके लिए मुझे प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र जसीडीह पहुंचा दिया।

: ३ :

मलावरोध

सौदामिनीदेवी



मुझे जसीडीह रहते दो ही महीने हुए थे कि गुआगाछी से जरूरी तार आया—

"तुम्हारे पति रोगकी संकट अवस्था में हैं, जल्द आओ।"

इतनेसे मुझे कोई अंदाज न हो सका कि उन्हें क्या रोग हुआ है। श्री सामर्थी सिंह पहले पेट-दर्दसे एकबार भयंकर रूपसे पीड़ित हो चुके थे। आपरेशन भी करा चुके थे। मैं जसीडीहसे रवाना हुई। भागलपुर स्टेशनपर मेरी श्री सामर्थीसिंहसे भेंट हो गई। मेरे जेठ वगैरह उन्हें पटना इलाजके लिए ले जा रहे थे। उनके पेटमें भयंकर पीड़ा उठी थी। आसपासके डाक्टर-वैद्योंने जवाब दे दिया था और कह दिया था कि यह दर्द बिना आपरेशनके न जायगा। आपरेशन-के लिए तो पटनासे बढ़कर दूसरी जगह बिहारमें और कहां? हिंदुस्तानमें पटना चीर-फाड़के लिए नामी है। मैं चुपचाप उस छोटी टोलीके साथ हो ली।

पटना अस्पताल के बड़े डाक्टर ने देख-दिखाकर आपरेशनकी राय दी। उसी समय आपरशन फीस आदिके दो सौ रुपये जमा करा

देने पड़े।

पर मेरे मनको यह सब जंच नहीं रहा था, क्योंकि एक बार इसी तरहकी पीड़ामें आपरेशन हो चुका था। पर जब फिर वैसी ही पीड़ा हुई तो आपरेशनसे क्या फायदा है? मैं मन में घुट रही थी, पर जेठ वगैरहके सामने बोल न पाती थी। रुपये तो पानीकी तरह बह ही रहे थे।

आपरेशन अगले दिन होना तय पाया था। मैंने पहले दिन शामको तीन बजे जसीडीह, ताऊजीको (श्री महाबीरप्रसाद पोद्दार) फोनपर सब बातें बतलाईं और उनकी सलाह मांगी। उन्होंने पूछा, डाक्टर बीमारी क्या बतलाते हैं? मैंने कहा, 'इंटेस्टाइनल आब्सट्रक्शन' नाम कहते हैं और कहते हैं कि अंदर दो आंतें एकमें सट गई हैं, इसीके कारण यह सारा दर्द है। इन्हें काटकर अलग किये बिना दर्द न जायगा।

ताऊजीने कहा, "तुम डाक्टरोंकी धोखा-धड़ीमें मत फँसो, पहली ट्रेनसे सामर्थीबाबूको यहां ले आओ।"

दूसरे दिन शामको मैं श्री सामर्थीबाबूको लेकर जसीडीह पहुंच गई। पटनेमें इन कई दिनोंमें खुराकमें उन्हें फलोंका रस ही दिया गया था। यहां रातको सिर्फ पानी पीकर सो जानेकी सलाह मिली।

दूसरे दिन सुबह एनिमा दिया गया। इससे काफी मल निकला। एनिमा तो इन्हें पहले भी पांच-सात दिये जा चुके थे, पर मल पूरा निकल न पाया था और दर्द बढ़ता ही जा रहा था, इसलिए एनिमापरसे इनकी श्रद्धा उठ गई थी। यहां मल निकलते देखकर वह श्रद्धा फिर लौट आई। अन्य उपचार भी चले। मिट्टीकी पट्टी, कटिस्नान, भाप-नहान, धुलाई एनिमा आदि। खुराकमें मौसंबीका

रस, डाभका पानी, और सादा पानी पीनेको। दूसरे दिन ही बहुत-कुछ आराम आ गया। ताऊजीने कहा, "इनकी आंतें कहीं सटी-सटाई नहीं हैं। डाक्टरने भरमाकर पैसा ऐंठनेके लिए अंग्रेजीका एक बड़ा-सा शब्द कह दिया—हिंदीमें कहें तो इसका सीधा-सा नाम 'मलावरोध' होगा।"

ग्यारह दिन तक एनिमा द्वारा आंतोंका मल निकलता रहा। ग्यारहवें दिन ताऊजी घूमकर लौटे तो सामर्थीबाबू बैठे अमरूद खा रहे थे। उन्होंने पूछा, यह क्या? बोले, बड़ी भूख लग रही थी, आज अमरूद सामने देखकर मन चल गया।

ताऊजीके मनमें भी न जाने क्या आई, बोले, अच्छा तो आज अमरूदपर ही रहिए।'

पीछे उन्हें मालूम हुआ कि फलोंमें अमरूद इन्हें अत्यधिक प्रिय है।

बारहवें दिन जो पाखाना हुआ उसमें सिर्फ अमरूदका खुज्झा था। उसी दिनसे उन्हें दूध देना शुरू किया गया। तीन-चार दिनमें दूध बढ़ाकर अढ़ाई सेर कर दिया गया।

कई दिन बाद कुछ जरूरी काम आ पड़नेसे वह घर चले गये। वहां और कुछ दिनों दूधपर रहकर अपना सारा कामकाज करते रहे।

फिर कुछ दिनों पक्का खाना खानेके बाद अमृतान्नपर आ गये और पूरे एक साल तक हम सब—श्री सामर्थीबाबू, मैं और मेरे दोनों लड़के (उम्र ९ और १४ साल) अमृतान्नपर रहे। और सब इतने स्वस्थ रहे कि जितना कोई भी रह सकता है। आज सादी रोटी, तरकारी और दूधपर रहकर भी सबके-सब काफी स्वस्थ हैं।

: ४ :

पेट दर्द, बवासीर

हनमानमल ऐड़ीवाल



मैं जिस रोगी दशामें प्राकृतिक चिकित्सा कराने आया था और जिस स्वस्थ दशामें घर जा रहा हूं, उन दोनोंमें महान् अंतर हो गया है। सच कहूं तो मुझे इस चिकित्सासे नव-जीवन ही मिला है।

दो सालसे मैं पेटके दर्द, मंदाग्नि और बवासीर आदि अनेक रोगोंसे बहुत बेचैन था। अब वे सब रोग चले गये हैं।

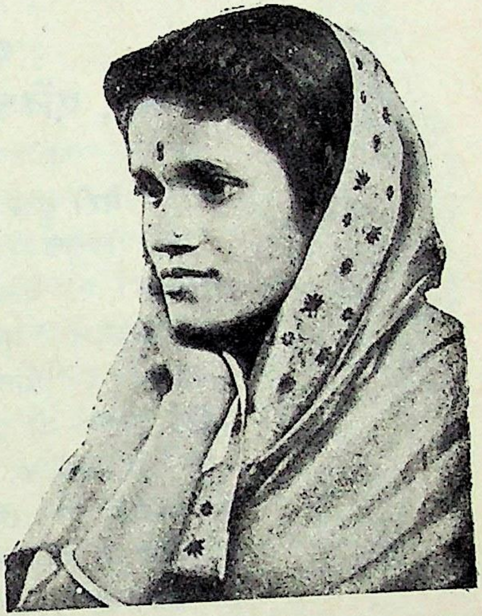
मुझे दूध कभी पसंद न था—न मैंने कभी पीया ही था। जिस चायको मैं अमृत समझता था, वह मुझे आज जहर मालूम होती है, और दूध अमृत। अब मैं दूध पीने लगा हूं।

मैंने न दवा खाई, न इंजेक्शन लिये, न कोई चीरफाड़ ही हुई। फिर मैं कैसे अच्छा हुआ ? प्रकृतिकी देन मिट्टी, पानी, धूप, हवा, भोजनमें सुधार और चिकित्सकके आशाप्रद प्रेरक वचनोंसे। मेरी भगवान से प्रार्थना है कि वह किसी को डाक्टर के फंदे में न फँसावे।

: ५ :

मासिकका कष्ट

दुर्गादेवी पेड़ीवाल



मैं यहां बिल्कुल सुस्त। अनेक रोगोंसे ग्रसित और निराश आई थी। इलाजके लिए मुझे अनेक स्थानोंके डाक्टरोंके चक्करमें पड़े रहकर भी कोई विशेष लाभ न हुआ था। कुछ समयके लिए इंजेक्शनके नशेसे एक बीमारी दब जाती तो दो नई खड़ी हो जातीं। रुपये तो हम दोनों की (दंपति) बीमारीमें एक लाख से कम न खर्च हुए होंगे।

यहां आने पर मेरा कब्ज, पेटदर्द, मंदाग्नि, प्रदर इत्यादि अधिकांश रोग चले गये। मुझे शारीरिकके साथ मानसिक लाभ भी काफी हुआ है। मुझे यहांसे ईश्वर भक्तिकी प्रेरणा मिली।

इस इलाजसे मासिक पीड़ा जैसा रोग चला जानेपर मुझे आश्चर्य होता है। इस एक रोगके लिए ही न मालूम मैंने कितना जहर खाया था।

: ६ :

उन्निद्र, एक्जिमा, मोटापा

मोतीलाल लाठ



मेरी कुल तकलीफें

१. पेट कुछ बढ़ा हुआ। २. शरीरमें भारीपन। ३. आलस्य। ४. रातको नींद अच्छी न आना ५. हल्का-सा एक्जिमा। ६. दांतोंका हिलना, ७. दाहिने हाथकी दो अंगुलियोंका सूनापन (एक बार हैजेके प्रकोपके बाद। कलकत्ते के बड़े-बड़े डाक्टरोंके इंजेक्शन और गोलियोंसे भी उनमें कुछ सुधार न हुआ था) ८. वजन दो मन (जो मेरी लंबाई के हिसाब से १५ सेर अधिक था) ९. कब्ज। आज मुझे आश्चर्य यह देखकर होता है कि मेरा कब्ज जानेके साथ-साथ बाकीके अपने आठ साथियोंको भी लेता गया।

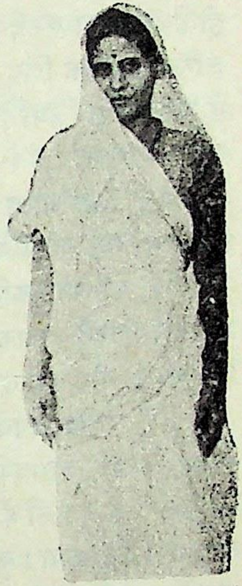
२१ दिन रसाहार, दिनभरमें आधा सेर रस मौसंबीका, फिर बीस दिन दूध और फल। नित्य उपचारमें एनिमा, मिट्टीकी पट्टी, दोनों वक्त कटिस्नान, मालिश। घूमना बराबर जारी रहा। पेटसे एक महीनेतक बराबर पुराना मल निकलता रहा।

वजन दस सेर कम हो गया। शरीरमें स्फूर्ति आई। पेटका घेरा ६ इंच कम हो गया। नींद काफी आने लगी। अब दोनों अंगुलियां बिल्कुल ठीक हैं। एक्जिमा चला गया। दांत मजबूत हो गए, उनके निकलवानेकी जरूरत न रह गई।

: ७ :

गठिया

विमला



ससुराल आकर अच्छा-अच्छा खाना और पराई चर्चा करना, यही मेरी दिनचर्या थी। इसी समय सर्वप्रथम मेरा मासिक बिगड़ा। मैंने उसपर कोई ध्यान न दिया और न किसीसे कहा ही। पर पता चलनेपर मेरे देवर चिकित्सकोंके यहां दौड़धूप करने लगे। कोई ठीक नहीं कि कितनी दवा मेरे पेटमें गई, पर मैं दिन-दिन दुर्बल और क्षीण होती जा रही थी। आयुर्वेदकी औषधियोंसे मेरे ऊब जानेपर डाक्टरोंकी बारी आई। जनाना अस्पतालमें महीनों मेरा इलाज चला। दोनों हाथोंमें कोई ऐसा स्थान न बचा जहां सूईयां न चुभाई गई हों। पीनेकी पेटेंट दवाओं और गोलियोंकी भी भरमार रही। मेरे शरीरमें हड्डियोंका ढांचा-ही-ढांचा था। अब डाक्टर मुझे यमदूत-सा लगता। मैं यमराजसे अपनेको उठा लेनेकी प्रार्थना करती। वास्तवमें मैंने जीनेकी आशा छोड़ रखी थी। लोग मुझे टी० बी० का मरीज मानने लगे। तब डाक्टरोंने खून, खंखार, पैखाना और पेशाबकी जांच की। एक्सरे भी लिवाया। टी०बी० न निकलनेपर भी डाक्टरोंने सैकड़ों रुपयोंकी दवाइयां खरिदवाईं।

मेरे परिवारवाले दवाओंकी तड़क-भड़कपर मोहित थे। हां,

साथ-साथ देवी-देवता भी मनाए जाते थे। पर दवाओंकी भांति ही देवी-देवता भी बेकार सिद्ध हुए। मैंने पिताजीको एक बार अन्तिम दर्शनके लिए बुलाया। शय्यापर पड़ी देखकर मुझे उन्होंने घर बुलवा लिया। मायकेमें भी समझा जाता था कि मैं टी० बी० की शिकार हूं। जो देखने आते पहला सवाल करते खंखारमें खून तो नहीं आता ? मायकेमें मेरे चचेरे भाई रवींद्रने मेरी चिकित्सा एक जीर्ण रोग मानकर आरंभ की। लगातार दो मास रसाहार, एनिमा, कटिस्नान और मिट्टीकी पट्टीके प्रयोगसे मैं चलने-फिरने लायक होगई और छः महीनेके उपचारमें मुझे जीनेकी उम्मीद बंध गई।

भाई रवींद्र अपने आत्म-विश्वासकी कमीके कारण, या कहिए हमारे संतोषके लिए, कलकत्ताके प्राकृतिक-चिकित्सक श्री कुलरंजन मुखर्जी के पास ले गये। उन्होंने मुझे जीर्ण गठिया का मरीज कायम किया। कुछ दिनों उनकी सलाहपर चल कर और अंतमें प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र जसीडीह आई। यहांके स्वस्थ, सुंदर और स्वच्छ वातावरण, व्यवस्थित जीवन, अनुभवपूर्ण उपचार और खासकर चिकित्सक महोदयके मातृतुल्य व्यवहारने मेरे लिए एक चमत्कारका काम किया। गठिया बड़ा हठी रोग है, और सो भी पांच-पांच सालका पुराना, इसलिए मुझे रसाहार, फलाहार, दुग्धाहार और अमृतान्नतक पहुंचते-पहुंचते चार महीने लगे।

यहां एक दिनके उभारका हाल कहूं। पिताजी मुझे देखने आये थे। उस दिन गठिया अपने पूरे वेगसे उभर आया था। शरीरके सारे जोड़ जकड़ गए थे और मैं हिल-डुल भी न सकती थी। पिताजी देखकर घबड़ाए। चिकित्सकने कहा कि यह उभार आगे

कल्याणकारी सिद्ध होगा। परंतु मैंने देखा कि पिताजी उस रात-को आरामसे सो न सके। आश्चर्य की बात है कि सवेरा होते-होते सारा उभार अपने-आप चला गया।

मुझे रोग मुक्त होते देखकर मेरे पति (श्री अखिलेश्वरशर्मा) मेरे पुत्र अशोककी तथा अपनी चिकित्साके लिए जसीडीह आये। पतिको पुराना कब्ज तथा कमर में दर्द था। वे दोनों भी स्वस्थ होकर लौटे। प्रकृति माताको मेरा कोटि कोटि नमस्कार।

: ८ :

पेट का दर्द

सांवलराम गोयनका



मेरा स्वास्थ्य ५-६ सालसे—२३ साल की उम्रसे ही खराब चल रहा था। खास शिकायत पेटके दर्दकी थी। पेट बाहर भी निकल आया था। दूसरे अंगोंमें भी काफी चरबी थी। पैरकी पिंडलियों में भयंकर दर्दके कारण चलना-फिरना दुश्वार था।

मैंने बहुत जगह, बहुत रुपये खर्च करके, बहुत तरहके इलाज कराए, लेकिन कोई फायदा न हुआ।

अंतमें मैं जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रमें पहुंचा। मेरे पिता जी यहांसे अच्छे होकर गये थे। इस चिकित्साकी बदौलत सब रोगोंसे छुटकारा पाकर मैं अब बिल्कुल स्वस्थ हो गया हूं। मेरा मोटापा भी जाता रहा। शरीर में अब काफी स्फूर्ति आ गई है, कहूं, मुझे यहां नई जिंदगी मिली है।



: ९ :

रक्त-प्रदर

शांतिदेवी गोयनका

मुझे ६ साल पहले श्वेत प्रदर हुआ। सारे शरीरमें दर्द रहने लगा। हाथ, पांव और कमर-में अधिक रहता। अढ़ाई साल पहले मेरे एक लड़की होनेपर खून ज्यादा आया। मैं बहुत कमजोर हो गई। उसीके बाद मुझे रक्त-प्रदर शुरू हो गया। मासिक होने पर १५ दिन तक खून चलता रहता। पर इधर चार महीनोंसे तो महीनेके तीसों दिन खून आता रहता। बहुत जगह बहुत बड़े-बड़े डाक्टरोंका इलाज करवाया। फायदा न होकर नुकसान ही हुआ। खूनकी मात्रा बढ़ती गई, साथ-साथ कमजोरी भी।

मैं अपने पतिके साथ प्राकृतिक चिकित्सामें आई। यहां दस दिन फलोंपर रहनेसे ही मुझे काफी फायदा मालूम होने लगा। खून बंद होगया, धीरे-धीरे कमजोरी जाने लगी। पहले मासि-कमें दिन कम-ज्यादा रह जाते थे, अब मासिक पूरे ३० दिनपर हुई। खूनकी मात्रा भी ठीक थी। अब तो मैं रोज ५ मील घूम लेती हूं, तब भी थकान नहीं मालूम होती। भूख भी खूब लगती है। रूखा-सूखा जैसा खाती हूं स्वाद लगता है।

मैं आई तब मेरा वजन १ मन ३ सेर था। अब १ मन ६ सेर है। मैं यहांसे नया जीवन, नया उल्लास लेकर घर जा रही हूं। मैं जीवनभर इस चिकित्साकी कृतज्ञ रहूंगी।

: १० :

कब्ज

पुष्पादेवी पाटोदिया



मूल रोग मेरा कब्ज था। इसीके कारण पेटमें दर्द, सिरमें भारीपन और हाथपैरमें 'फूटनी' रहती। मासिकके समय पेड़ूमें भयंकर पीड़ा होती। खून बिल्कुल काले रंगका आता और मात्रा बहुत कम रहती। छोटे-मोटे और भी कई रोग थे। डाक्टर-वैद्योंकी दवासे मैं निराश हो चुकी थी।

अपने भाई श्री सांवलराम गोयनकाके साथ मैंने प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रमें अपना उपचार करवाया।

मैंने यहां २१ दिनके रसाहार और ११ दिनके दूध कल्पमें सारे रोगोंसे मुक्ति पा ली।

मुझे आलस्य भी बहुत रहता था, किसी काममें मन न लगता था। पर अब शरीर तथा मनमें पूरी स्फूर्ति है और मैं बहुत खुश घर जा रही हूं।

: ११ :

हृदय की कमजोरी

इंद्रचंद्र दूगड़



पिछले दो सालोंसे मुझे वायुकी शिकायत थी। एक डाक्टरने लक्षण देखकर बताया कि मेरा हृदय कमजोर हो गया है। उसकी बात मेरे मनमें घर कर गई। फिर तो मैं डाक्टरी इलाजों और दवाओंके पीछे काफी परेशान हुआ। पर कोई लाभ न हुआ। साधारण रूप-से चलते हुए भी डर लगता था कि गिर पड़ूंगा।

जसीडीह केंद्र में मैं डेढ़ महीने रहा। यहां मेरी सारी परेशानी जाती रही। मैं स्वस्थ हो गया और खान-पानके संबंधमें मैंने यहां जो शिक्षा पाई वह मेरे लिए हमेशा लाभदायक रहेगी।

: १२ :

मन्दाग्नि

राधारानी



मैं चार सालों से उदरशूल तथा मंदाग्नि-से कष्ट पा रही थी। खाया हुआ हजम न होता था। भूख बिल्कुल न लगती थी। सिर भारी रहता, जलता रहता। शरीरमें जहां खुजलाती, घाव-सा हो जाता। कब्ज भयंकर था, ऐसा कि ७-८ दिनपर पाखाना होता था। मैंने डाक्टरों और कविराजोंकी काफी दवाइयां लीं, लेकिन किसीसे कोई लाभ न हुआ।

मेरे भाईके जसीडीह से यह लिखनेपर कि यहां मेरी बारह सालकी पेटकी बीमारी अच्छी हो गई है, तुम भी यहां आकर अपना उपचार करा लो, मैं यहां आई।

यहां मेरी सारी तकलीफें दूर हो गई हैं। मैं प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रकी बहुत कृतज्ञ हूं। स्वास्थ्यके संबंधमें यहां मैंने जो सीखा है उसे मैं अपने जीवनमें काममें लाऊंगी।

(बंग भाषासे अनुवादित)

: १३ :

अम्लता

नंदकुमार दत्त



मैं आज १२ सालसे पेटकी अम्लता और पीड़ासे परेशान था। एलोपैथी, होमियोपैथी, कविराजी सब करा हारा, पर कोई लाभ न हुआ,। उल्टे रोग दिन-दिन बढ़ता ही गया। शक्ति भर इलाज करानेमें मैंने कुछ उठा न रखा।

मैं अपने पिताके पास मधुपुर आया था, वहां एक सज्जनसे मुझे जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्रके बारेमें मालूम हुआ। यहां तीन मासके उपचारमें मेरी अम्लता, हृदयकी धड़कन, पेशाबका दोष, सिरदर्द, अग्निमंदता इत्यादि कुल बीमारियां जड़से अच्छी हो गईं। यहां मैंने स्वास्थ्य-संबंधी विशेष ज्ञान प्राप्त किया है। उसका मैं अपने जीवनमें यथा-शक्ति उपयोग करूंगा। (बंग भाषासे अनुवादित)

: १४ :

दमा

दशरथ मिस्तरी



संयोगवश स्त्री जो मुझे मिली, बचपनसे दमेकी शिकार। उसे एक संतान हुई। शादीके बाद कुछ समय तो वह देहातमें अपनी मांके पास रही। मैं झरियामें खानमें मिस्त्रीका काम करता। स्त्रीको देहातमें सात-आठ महीनेमें एक बार दौरा आता था। मैंने सोचा, देहातमें कोई इलाज नहीं है, इसे अपने साथ ले आऊं और यहांके दमेके बड़े स्पेशलिस्टको दिखाऊं।

स्त्रीको झरिया लाकर एक्सरे कराया, खून, पाखाना पेशाब सब जंचवाया। खानेकी दवा दी, सूइयां दीं। नतीजा क्या हुआ? जो दौरा सात-आठ महीनेपर आता था वह सात-आठ रोजपर आने लगा। डाक्टरोंसे कहा तो बोले, "तुमने कभी कोई दमेका मरीज अच्छा हुआ सुना भी है? दमा अच्छा हो सकता तो इतने बड़े-बड़े आदमी दमेसे क्यों पीड़ित रहते।"

मैंने प्रार्थना की कि डाक्टरसाहब ऐसा तो कर दीजिए कि कम-से-कम एक साल तक दौरा न आए। क्योंकि मैं दिनमें कोयलेकी खानपर काम करता और रात स्त्रीके पास बैठे-बैठे काटता। मैं मनाता कि यह स्त्री मर जाय तो मेरा संकट टले। स्त्री भी दौरा

आने पर भगवानसे यही मनाती । पर न डाक्टरने हमारी बात सुनी, न भगवानने । डाक्टर तो लाचार था, उससे कुछ हो नहीं सकता था, भगवानकी कृपा में कुछ देर थी ।

इसी बीच मेरे दो सालके बच्चेको भी दमा आने लगा । हर महीने मेरे दो सौ रुपये डाक्टरोंकी जेबमें जाने लगे ।

किसीसे मैंने जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रका जिक्र सुना । अपने एक साथी वैद्यजीसे मैंने साथ आकर मेरी स्त्रीको यहां भरती करानेके लिए कहा । उन्होंने ऊपरी मनसे तो हामी भर ली, पर टालते रहे । इसी बीच मेरी स्त्रीको जोरका दौरा आया । वैद्यजी वहां मौजूद थे, वह अपनी सब दवाइयां दे हारे । कुछ लाभ न हुआ तो मैंने कहा, अब देखिए, मैं अपना प्रयोग करता हूं । स्त्रीको एक गिलास गरम पानी पिलाकर केवल ओढ़ाकर बिठा दिया और पैर गरम पानीकी बाल्टीमें लटका दिये । कंबलसे शरीर और बाल्टी दोनों घेर दिये गये । थोड़ी देरमें उसे खूब पसीना आया और दौरा बहुत हल्का पड़ गया । सवेरे बिल्कुल ठीक थी । यह देखकर पंडितजी दंग रह गये और मेरे कहनेपर उसी दिन शामकी गाड़ीसे जसीडीह जाकर कुछ रुपये जमा कराके मेरी स्त्रीके लिए वहीं स्थान सुरक्षित करा आये ।

मेरी पत्नीने जसीडीह पहुंचकर सब नियमोंका बड़ी प्रसन्नतासे पालन किया । दो महीनेके इलाजमें उसका दमा एकदम चला गया । यहां आनेके बाद सिर्फ एक बार दौरा आया था, शुरूमें । उसका स्वास्थ्य बहुत सुंदर हो गया । मेरे लड़केका दमा भी जाता रहा । मेरी स्त्री तो यहांकी प्रशंसा करते अघाती नहीं है । उसका वजन यहां दस सेर बढ़ गया । यहां इलाजमें खाने पीनेके अलावा मेरे सिर्फ दो-सौ रुपये खर्च हुए । मेरा विश्वास है कि यहां जो सच्चे दिलसे आकर इलाज करायेगा, उसे अवश्य लाभ होगा ।

: १५ :

भगन्दर

गोपीकृष्ण छापरिया



इस समय मेरी आयु २५ सालकी है। इसी उम्रमें मैंने कई प्रकारके रोग भोग लिये। १८ सालकी उम्रमें ही मुझे एक विशेष रोगकी शिकायत हुई। डाक्टरी दवासे कुछ फायदा हुआ, लेकिन उसके बाद ही मुझे भगंदर (Fistula) हो गया। उसमें बराबर रसी आती। डाक्टरों से हारकर के बहुत इंजेक्शन दिये, पर कोई स्थायी लाभ न हुआ। कभी कम हो जाता, कभी ज्यादा। तब होमियोपैथीका इलाज कराने लगा। छः महीनेमें भी कोई फायदा न हुआ। वाईं जांघमें ऊपरके हिस्से में सख्ती आ गई। धातु पतली पड़ गई। पेशाबमें चावलके धोवन के-से रंगकी चीज आती। पेटमें वायुकी शिकायत रहती। कभी-कभी सिरमें गरमी छा जाती।



इन सब शिकायतों के लिए मैंने यहां दो महीने अपनी प्राकृतिक चिकित्सा कराई। मुझमें कुछ मोटापा भी था। वह भी चला गया है। मेरा वजन १८२ पौंडसे अब १३० पौंड

हो गया है। शरीर सुडौल हो गया है। अब मैं बिल्कुल अच्छा हूं, मेरी सब शिकायतें चली गई हैं। मैंने दो महीनेमें यहां प्राकृतिक चिकित्साके संबंध में अनेक बातें जानी हैं।

: १६ :

एक्ज़िमा

कृष्णादेवी पचीसिया



तीन साल पहले मेरी बाईं बांह-पर एक दाद सा हुआ। उस समय मैं नोहर (राजस्थान) में थी। १८ इंजेक्शन, पांच-छः डिबिया मलहम लगानेपर कुछ लाभ हुआ।

कुछ दिनों बाद कलकत्ता आने-पर वह दाद फैल गया। डाक्टरकी शरण गये। सर्वप्रथम रक्तकी जांच हुई। उसमें कई तरहके दोष बतला-कर डाक्टरने रोज एक इन्जेक्शन लगाना शुरू किया। दिनमें चार दवा पीनेको और ऊपरसे मलहम लगानेको। इससे कुछ आराम दिखाई दिया। दवाइयां तीन महीने चलती रहीं। दवा बंद करनेके दो महीने बाद फिर रोग बढ़ा। इस डाक्टरने यह कहकर पीछा छुड़ाया कि किसी चर्म-विशेषज्ञ को दिखाइए।

एक चर्म-विशेषज्ञको सोलह रुपयेकी भेंट चढ़ाई। पहली रिपोर्टसे उसकी तसल्ली न हुई। फिर खून जंचवाया दो महीने तक इंजेक्शन देता रहा। दाद गया। पर दो महीने बाद फिर लौट आया।

अब मैं एक वैद्यराजके यहां पहुंची, जो अपने को सिद्ध मानते

थे। चार महीने इलाज चला। खाने, पीने, लगाने और धोनेकी मिलाकर पांच छः दवाइयां दीं। परिणाम यथा पूर्व रहा।

इसके बाद जिसने जो बताया वह किया। अब जो दाद थोड़ी-सी जगहमें था, वह दोनों पूरे हाथोंमें फैल गया।

एक बार इसके लिए २५ जोंकें भी लगाईं। कोई लाभ न हुआ। अब रोग मुंह और छाती वगैरहपर भी पसर गया। कई वैद्य, कविराज और डाक्टरोंको दिखाया, दवाइयां खाईं, पर सब व्यर्थ। तब होमियोपैथी शुरू की। यह एक महीने चली। इससे मेरी यह हालत हो गई कि एक बार दोनों हाथ सूने हो गये। खाना दूसरेके हाथसे खाना पड़ता। चेहरा डेवढ़ा हो गया। दोनों हाथों और चेहरेसे मवाद निकलने लगा। पूरे महीने यह दशा रही।

इसी बीच एक रिश्तेदारकी रायसे ८-१२-५५ को प्राकृतिक उपचारके लिए मैं जसीडीह पहुंची। वहां पूरे पांच महीने रही। मैं कह सकती हूं कि अब मैं पूर्ण स्वस्थ हूं। शरीरमें कहीं भी दाग नहीं रह गया है। रोगका कोई लक्षण मौजूद नहीं है। दूसरे इलाजोंसे कभी ऐसा नहीं हुआ था।

सुबह, शाम कटिस्नान उपचार १५-१५ मिनट का। रोज ६-७ मील घूमना। दोनों समय आध-आध घंटे मिट्टीकी पट्टी। आठ दिनमें एक बार भाप-नहान। पहले पांच दिन फलाहार, फिर ४५ दिन रसाहार और तब ४५ दिन दुग्ध-कल्प। दूधके साथ में कुछ संतरे लेती थी। इसके बाद १० दिन केवल डाभ-का पानी लिया, तब ११ दिन रसाहार। फिर अमृतान्न और सब तरहके फल।

इस समय मुझे पूरा आराम है। दूसरे इलाजोंमें सात-आठ हजार रुपयोंसे कम खर्च न हुए होंगे, प्राकृतिक उपचारमें पांच

महीनोंमें खाना-पीना छोड़कर सिर्फ पांच सौ रुपये लगे। यदि हमें पहले इस उपचारका पता होता तो हम कितने खर्च और परेशानी-से बचे होते ?

मैं चाहती हूं, इस चिकित्साको फैलानेकी कोशिश करूं।

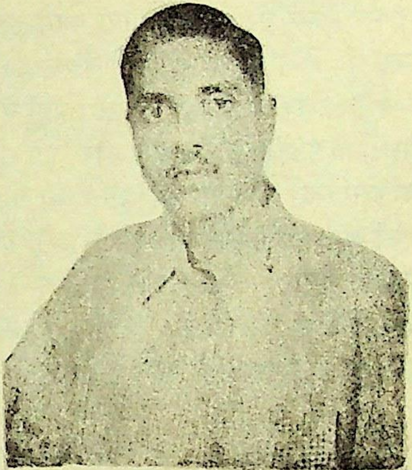
हाथ में गड़ा हुआ कांच तीन महीने बाद निकला

होलीके दिन मेरे आंगनमें रंगका पानी फैला हुआ था। उसीमें मेरा पैर फिसला, मैं गिरी तो हाथकी कांचकी चूड़ियां चूर हो गईं। दोनों हाथोंमेंसे खून बहने लगा। एक पड़ोसिनने पानीकी पट्टी बांधी। खून बंद हुआ तो एक सींकसे हाथमें घुसे हुए चूड़ियोंके टुकड़े निकाले। पर दाहिने हाथका एक टुकड़ा न निकल सका। अंदर चला गया, बाहरसे दिखाई नहीं देता था। उससे मुझे पीड़ा होती थी, लोगोंने कहा, डाक्टरको दिखाओ, नहीं तो तुम्हारे शरीरमें सेप्टिक हो जायगा---विष फैल जायगा। पर मेरी तो "दूधका जला मट्ठा फूंक फूंक कर पीता है" वाली कहावत हुई। मैं डाक्टरोंसे डरी हुई थी, कौन फिर उनके जालमें फँसे। मैं अपने आप ही कुछ मिट्टी पानी करती रही। तीन महीने बाद उसी हाथमें, कांच गड़े स्थानसे लगभग ६ इंचकी दूरीपर, एक बड़ा फोड़ा निकला। उसपर मैंने कितनी मिट्टी लगानी शुरू की। हफ्ते भरमें फोड़ा फूटा और मवादके साथ वह कांचका टुकड़ा भी निकला, जो मेरे पास अब तक रखा है। यह कुदरतकी करामात ही है।

: १७ :

दमा, छाजन, सूखा

घासीराम केडिया



उम्र मेरी पचास साल है। पच्चीस सालसे मुझे दमा सता रहा था। इतने दिनों-में न मालूम कितने हजार रुपये मैंने डाक्टर, वैद्योंकी भेंट चढ़ा दिये। और दवाइयोंका भी कोई हिसाब नहीं कि क्या कितनी खाई। भगवान झूठ न बुलाए, चार-पांच सौ इंजेक्शन तो जरूर लिये होंगे। लेकिन दमेने पीछे मुड़कर न देखा।

काशी के एक मित्रकी सलाहसे उनके साथ ही मैं जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रमें अपने इलाजके लिए भरती हुआ। साथ मेरी स्त्री और दो बच्चे भी आये। स्त्री एक्जिमासे हैरान थी, बच्चे भी। बच्चोंके सिर फोड़ोंसे भरे थे। एक बच्चा तो सूखा रोगसे पीड़ित था। पूरा खाते-पीते हुए भी वह सूखा जाता था। बच्चोंकी उम्र तीन और पांच सालकी है।

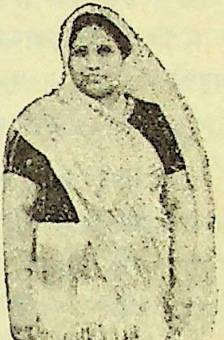
यहां हम चारोंकी चिकित्सा हुई। मेरा दमा चला गया। स्त्रीका एक्जिमा। बच्चोंका सिर बिल्कुल अच्छा हो गया। सिरमें

फोड़ोंके निशान तो अभी जरूर बाकी हैं। सूखनेवाला बच्चा पनपने लगा। लोग कहते हैं, बच्चे यह इलाज नहीं करा सकते। पर मेरे बच्चे तो यहाँका सारा कार्यक्रम निहायत खुशीसे पूरा करते थे। मैं समझता हूँ, कोई बच्चा दवा पसंद नहीं करता, सब बच्चे दवा जबरदस्ती ही लेते हैं। यहाँ मेरे बच्चोंने जिस शौकसे मिट्टीकी पट्टी, कटि-स्नान और धूप नहान लिया वह देखकर चिकित्सकको भी आश्चर्य होता था। मेरे गलेकी आवाज एक वर्षसे खराब थी और यहां पूरी तरह ठीक नहीं हो पाई था। लेकिन घरपर खान-पान बिल्कुल ठीक रखनेसे गला अब बिल्कुल ठीक होगया है। आवाज दुरुस्त होगई है। प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिका ही यह चमत्कार है।

: १८ :

पेटका दर्द

केसरदेवी सोमाणी



शादीके दो वर्ष बाद मेरे पेटमें कुछ दर्द रहने लगा। वैद्यकी दवा हुई, पर दर्द बढ़ावकी ओर ही रहा। बीचमें एक बार जोरका ज्वर आया। दवासे वह गया, पर हल्का ज्वर बराबर रहने लगा। काम करती रहती, मनचाहा खाती-पीती रहती और वैद्यकी दवा भी खाती। इसी समय मैं अपने पीहर (सिरसा—पंजाब) गई। दिखानेपर वहांके डाक्टरों ने टी० बी० बता दी। पर वहां एक्सरे वगैरहका कोई साधन न होनेसे पूरा पता न चला। डाक्टरोंने अंदाजसे दवा दी, ज्वर उतर गया। जुलाब दिया, पेटसे केंचुए निकले, इससे पेटका दर्द भी दूर हो गया। इतना करने-कराने में लगभग पंद्रह सौ रुपये खर्च हो गये।

कुछ दिनों ठीक रही। फिर १९४७ में कलकत्ता आनेपर प्रदर-का रोग शुरू हुआ। सिंघा डाक्टरनीका इलाज हुआ, पर लाभ न हुआ। अम्लपित्तका रोग और लग गया। पेटका दर्द भी हमेशा रहने लगा। कुछ सुधार न होते देखकर दवा-से मेरी तबीयत ऊब गई। १९४९ में मैं राजस्थान गई। वहांके हवा-पानीसे शरीर कुछ सुधरनेपर कलकत्ता आ गई। डेढ़-दो

महीने ही डाक्टरके बिना बीते होंगे, पेट दर्द फिर महीनेमें तीन-चार बार आने लगा। पैरोंमें भी दर्द रहने लगा। कमरमें भी हो गया। मासिक अव्यवस्थित हो गया। बीमारियोंकी तादाद बढ़ती गई और साथ-साथ दवाओंकी भी। फायदा न होनेपर डाक्टरोंने हवा-पानी बदलनेकी सलाह दी।

मैं देवघर आई। सब दवा छोड़कर मैं डेढ़ महीने रही। कुछ आराम मालूम हुआ। फिर कलकत्ता जाते ही पेटका दर्द शुरू होगया। इतने दिनोंमें डाक्टरोंने मुझे खानपानके बारेमें कोई खास हिदायत नहीं दी। मैं आलू खानेकी शौकीन थी, सेर-डेढ़ सेर आलू रोज खाती और मिर्चमसाले, अचार तथा रोज पांच-छः पापड़। फुल्कोंसे पूड़ी मुझे अधिक पसंद थी।

धीरे-धीरे मोटापा आता गया और काममें आलस्य, सिरमें दर्द। डाक्टरकी रायसे चश्मा लिया। पर दर्द बना ही रहा।

अब १०-१५ रोजमें पेटके दर्दमें एक बार जोरका दौरा होने लगा। डाक्टर इंजेक्शन लगा जाता। रोज खाना खानेके बाद ऐसी खट्टी डकारें आतीं कि दांत खट्टे हो जाते।

वजन बढ़ते-बढ़ते एक मन पैंतीस सेर हो गया। पेट निकल आया। देखनेमें मैं बड़ी उम्रकी लगने लगी---३१ की उम्रमें ५१ की-सी। बीमारियों, डाक्टरों और दवाओंसे मैं हैरान-परेशान हो गई। अखबारमें कभी-कभी प्राकृतिक चिकित्सा पर लेख पढ़ती, किंतु उसके बारेमें कोई सही खयाल न जमता था।

संयोगसे मेरे पतिके मित्र श्री बजरंगलालजी जाजू अपने इलाजके लिए जसीडीह आ रहे थे। मैं भी उनके साथ आ गई।

यहां आते ही मुझे दिनमें दो बार चाय पीनेकी आदत छोड़ देनी पड़ी। एक हफ्ते फल-दूध लेनेके बाद मेरा रसाहार शुरू हुआ जो पूरे ७५ दिन चला। रसाहारमें मैं नित्य चार-पांच मील कसकर घूमती। कलकत्तामें घूमना तो दूर, तीन तल्लेसे नीचेके तल्लेमें आना भी मुश्किल था। रस मैं मौसंबी, अनानास, कंधारी अनार और शंतरोंका लेती, जो एक सेरसे अधिक न होता था। शहद मैं अवश्य दिनभरमें तीन चार-बार करके एक पावके लगभग लेती, नींबूका रस मिलाकर। मेरा कुल वजन तेइस सेर घटा।

रसाहारके बाद मैंने दूध-पानी लिया। उसके बाद दहीसे घी निकालकर मट्ठा। १५ दिन बाद रोटी खाने लगी। पर कुछ भारीपन आनेकी वजहसे एक बार फिर १५ दिनका रसाहार कर गई। अब रोटी-तरकारी खाती हूं। प्राय: सब रोग चले गये हैं।



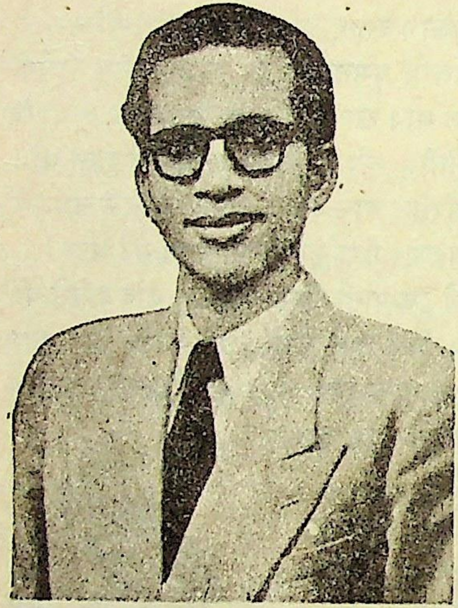
रसाहारके बीचमें मेरे एक बहुत जोर का उभार आया था, जिसमें टांसिल सूज गये, पक गये और फूटकर बह भी गये। अगर ऐसे समय मैं कलकत्ता रही होती तो मालूम नहीं डाक्टरोंने मुझे क्या-क्या नाच नचाये होते और कितने रुपये ठगे होते।

मेरे साथ जब-तब मेरे कई बच्चे भी रहे और उन सभीने प्राकृतिक चिकित्सासे यथेष्ट फायदा उठाया।

: १९ :

जिगर

बजरंगलाल जाजू



जून १९५५ में मुझे 'लीवर'की तकलीफ होगई, जैसाकि डाक्टरोंकी ज़बानी मालूम हुआ। हां, कब्ज मुझे पहले से ही बहुत रहता था। दिन भर निमटनेकी इच्छा होती, पर पाखाना साफ न आता। सब इलाजोंसे थक चुकनेके बाद मेरे लिए एक प्राकृतिक चिकित्सा ही आजमानी बाकी रह गई थी। लेकिन उससे मैं थोड़ा डरता था। मेरे घरवाले तो यही समझते थे कि प्राकृतिक चिकित्सा करानेके मानी हैं दुबले होकर मरना। सबके मनमें यह गलत खयाल घुसा हुआ था कि प्राकृतिक चिकित्सामें भूखों मारते हैं और आदमी कमजोर हो जाता है। एक-दो दोस्तोंने मेरे भाईसाहबसे मुझे प्राकृतिक चिकित्साके लिए जसीडीह भेजनेका आग्रह किया तो उसी गलतफहमीकी वजह से उन्होंने साहस न किया।

मेरे दोस्त श्री लेखरामजी पेड़ीवालने तो बहुतेरा आग्रह किया

कि तुम वहां जाकर दो-तीन महीने रहो, तुम्हारी सब तकलीफें निश्चय दूर हो जायंगी। वह खुद इस चिकित्सासे काफी फायदा उठा चुके थे और उनके घरके और लोग भी बीमार पड़नेपर उसी चिकित्साका अनुसरण करते हैं।

इसी बीच एक दिन प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रके चिकित्सकके कलकत्ता आनेपर उनकी बातोंको सुनकर मेरी गलतफहमी बहुत-कुछ दूर हुई। मुझे विश्वास हो गया कि प्राकृतिक चिकित्सापर लगाई जानेवाली यह तोहमत कि लोग उससे दुबले हो जाते हैं गलत है, और उसकी असलियत यह मालूम हुई कि लोग प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धांतोंसे अनभिज्ञ होते हैं। एलोपैथी के सिद्धान्तोंसे भी नावाकिफ होते हैं। कहां कोई जानता है कि दवा शरीरमें किस प्रकार काम करती है? पर प्राकृतिक चिकित्सा एक नई पद्धति होनेके कारण लोग अभी उसके संबंधमें बहुत-से भ्रम भरे संस्कार पाल रहे हैं। चिकित्सकने मेरी सुनी-सुनाई बातोंके आधारपर बनी हुई गलत धारणाको आध घंटेमें ही मिटा दिया। मेरे इतनी जल्दी पट जानेकी एक वजह और थी, मेरा हृदय भीतरसे इस चीजके पक्षमें था।

मैं अपनी स्त्री और बच्चेके साथ वहां गया। जाते ही हम सबने रसाहार शुरू कर दिया, जो मैंने २८ दिन चलाया, मेरी स्त्रीने १२ दिन और अधिक। क्योंकि वह शरीरसे कुछ स्थूल हो गई थी और उसे कुछ दुबली होनेका शौक भी था। ज्यों-ज्यों वह घटती गई त्यों-त्यों उसका शरीर सुंदर लगने लगा। उसका उत्साह बढ़ता गया। बीचमें एक बार उसकी बहनने देखकर कहा, "बाई, तू तो छोरी-सी लाग लागी।" बच्चेको भी हमने ७ दिनका रसाहार करा दिया। हम तीनोंके शरीरकी खूब सफाई हुई। गंदे

भोजन, खासकर इस नई सभ्यताकी देन—चाय काफी और होटली भोजनके कारण हम तीनोंके स्वास्थ्यका जो बुरा हाल हुआ था उसका कायापलट हो गया। स्त्री और बच्चेको तो बीचमें काफी उभार आया, जिसने बादको उनके शरीरको निर्मल करके उज्ज्वल कर दिया। हम लोग उभारमें कुछ घबराए, लेकिन चिकित्सकके धीरज देनेसे आसानीसे सहन कर गये।

इसके बाद मेरा ४० दिनका दूधकल्प चला और इसी तरह स्त्रीका भी। हम दोनोंका शरीर एकदम नया-सा हो गया। बच्चे-का शरीर भी, जो फोड़े-फुंसियोंसे ढका रहता था, बिल्कुल साफ हो गया। सबकी त्वचापर आभा आ गई।

मैं जसीडीह ४ महीने ठहरा। इतने दिनोंमें अपने कारबारके भार और चिन्ताओंके कारण जो मेरी नाड़ियां थक गई थीं, फिर-से ताजी हो गईं। जैसे किसीने खाली हुई बैटरीको चार्ज कर दिया हो।

अब कठिनाई मुझे एक ही लगती है कि हमारी शहरी जिंदगी-के साथ प्राकृतिक जीवनका मेल कैसे सध सकता है। क्योंकि इन दोनोंका तो ३६ का-सा संबंध है। लेकिन, चाहे जो हो, यदि हम शारीरिक और मानसिक सुख-शांति चाहते हैं तो, वह तो प्रकृति-के पथपर चलकर ही पाई जा सकती है। सुख तो सादे जीवन और उच्च विचारमें ही है, ठाट-बाटकी जिंदगी और मलिन विचार तो हमारे दुःखोंकी ही वृद्धि कर सकते हैं।

: २० :

मासिक और प्रदर

पुष्पादेवी सोमानी



सात साल पहले, तब मैं अलीपुरद्वार में (बंगाल) रहती थी, मेरे पेटमें दर्द रहने लगा। इसके लिए डाक्टरोंकी दवा इंजेक्शन लिये फायदा होना दूर रहा, उल्टे मेरा मासिक गड़बड़ हो गया और साथ प्रदर। कलकत्ता आकर भी जब दवाओं-से कोई नतीजा न निकला तो डाक्टरोंने पेटका आपरेशन किया। पर दर्द तो बना ही रहा। खूनकी कमी होनेसे शरीर काफी कमजोर हो गया। माथेमें बराबर दर्द रहने लगा। बढ़ जानेपर इंजेक्शन लेती।

अब दांतोंमें भी तकलीफ रहने लगी। इसी समय अपनी जेठानी को प्राकृतिक चिकित्सासे विशेष फायदा हुआ देखकर मैं भी जसीडीह आई।

पहले मैं इस इलाजके बारेमें सुनती तो मुझे लगता कि मिट्टी, धूप, हवासे रोगी कैसे अच्छा होता होगा ? पर जब यहां लोगोंको इस इलाजसे बड़े-बड़े रोगोंसे छुटकारा पाते देखा, तो विश्वास करनेको विवश होना पड़ा।

उपचार

आठ दिन फलोंपर रह कर ग्यारह दिन रसपर रही। तीन

दिन दूध-पानी लेकर ४१ दिनका दुग्धकल्प किया। वजन एक मन चार सेरसे रसाहारमें एक मन डेढ़ सेर हो कर दुग्धकल्पके अंतमें एक मन दस सेर हो गया। मैं एक महीनेतक एक वक्त तरकारी और एक वक्त दूध-फल लेती रही। अब डेढ़ महीनेसे दोनों समय खाना खाती हूं। भूख खुलकर लगती है। खाना ठीक हजम होता है। मैं रोज ४-५ मील घूमती हूं। सेर-डेढ़-सेर आटा पीसती हूं, घर का सारा काम करती हूं, तब भी थकान नहीं आती। मन प्रसन्न रहता है।

मेरे बच्चे प्रदीपको भी बड़ा लाभ हुआ। वह सिर्फ चार पौंड वजन लेकर पैदा हुआ था। उसकी हालत ऐसी थी कि तीन दिन गैसपर रखना पड़ा था। दो महीनेका होते-होते उसका पेट खराब रहने लगा। रोज आठ-आठ दस-दस पाखाने होते थे। लगातार छः महीने एक होमियोपैथिक डाक्टर का उपचार होता रहा। उससे दो दिन अच्छा रहता तो दो दिन खराब। इसके बाद दूसरे डाक्टरोंका इलाज चला, पर कोई फायदा न हुआ। इसी समय मैं अपने मायके उज्जैन गई। वहां बिना किसी इलाजके ही उसके पेटकी ऐंठन और दस्त तो बंद हो गये लेकिन सर्दी हो-होकर निमोनियाकी शिकायत होती रहती। इसके लिए बराबर डाक्टरों का उपचार होता रहता। सवा साल तक यही हाल रहा। यहां उसकी खुराकमें फलोंका रस शामिल किया गया। १५-२० दिनके लिए दूध बंद कर दिया गया। एक दिन फिर पुरानी बीमारीका दौरा होनेपर पांच दिन रसाहार कराकर पांच दिन सिर्फ दूधपर रख दिया गया। बादमें उसको बदस्तूर खाना दिया जाने लगा। अब वह पूर्ण स्वस्थ है।

: २१ :

संग्रहणी

हिम्मतलाल राठौर



मुझे चार-पांच सालसे संग्रहणीके साथ और भी कई रोग लग गये थे। मैंने सब प्रकारकी दवाइयां आजमाईं, पर रोग घटनेके बदले बढ़ता ही गया। बड़े-बड़े डाक्टर, वैद्य भी मेरी संग्रहणी दूर करनेमें बिल्कुल असफल रहे। निराश होकर मैंने दवाएं छोड़ दीं।



प्राकृतिक चिकित्साकी बदौलत आश्चर्यजनक रूपसे मेरी संग्रहणी गई। वजन बढ़ गया। साथ ही मैंने यहां स्वास्थ्यके संबंधमें अपूर्व ज्ञान प्राप्त किया, जो आजतक किसी डाक्टर-वैद्यके मुंहसे सुना तक न था।

मैं यहां डेढ़ महीने रहा। मुझे एक हफ्ते फल, दो हफ्ते रसाहार और तीन हफ्ते दूधपर रखा गया।

यह स्थान इतना प्राकृतिक और मनोहर है कि रोगीके शरीर के साथ-साथ उसके मस्तिष्क-पर भी इसका बड़ा प्रभाव होता है।



: २२ :

अपच

सत्यभामा खेमका

यकायक मेरा मासिक रुका, ७-८ दिन निकल जानेपर जी मिचलाने लगा, चक्कर आने लगे, पेटके निचले हिस्सेमें पीड़ा रहने लगी। ज्वर भी आने लगा। अपने-आप ठीक हो जानेकी उम्मीदमें हफ्तेभर देखते रहे। डाक्टर आये । बोले, मासिकका समय चढ़ जाने का फसाद है, सब। मासिक खुलनेके लिए इंजेक्शन और खानेकी दवा दी। इससे तकलीफ बढ़ी। तब लेडी डाक्टर बुलाई गईं। वह बोली, संभव है, गर्भ रह गया हो। दो महीने इसी तरह बीते। तब स्त्री रोगोंके एक विशेषज्ञ आये। उनका निर्णय रहा, गर्भ नहीं है, माथेमें मासिककी गरमी चढ़ गई है। उस समय मुझे कई-कई दिन पाखाना नहीं होता था। एक दिन एनिमा दिया गया, पर उससे दस्त न हुआ। समय बढ़ता ही गया तो डाक्टरने कहा, बिजलीका सेंक दिलवाइये, उससे मासिक जरूर आ जायगा पर घर-वालोंको गर्भ रह जानेका खयाल था, इसलिए बिजलीका सेंक नहीं दिलवाया गया। फिर डाक्टरनी पधारीं। इस बार उसने पेटमें बच्चा बतलाया और सलाह दी कि रोगिणीको बिस्तरपर एकदम लिटा कर रखिए। बच्चा बहुत नीचा है, गिरनेका डर है।

उन दिनों मैं तीन-तीन चार-चार घंटेतक लगातार रोती रहती और जब-तब बहुत जोरसे रोने लगती। बेहोशी आ जाती, हाथ-पांव ठंडे हो जाते, दांत लगने लगते, जीभ सख्त हो जाती। डकारें इस जोरसे आतीं कि पड़ोसके मकानतक आवाज पहुंचती। दिनमें डकारोंका पचासका ठिकाना था न सौका। डकारें लेते-लेते पसलियां दुखने-लगतीं। मैं मनमें कहती इस जीनेसे तो मेरा मरना भला है। बीमारीके लक्षणोंको देखकर किसीने तो हिस्टीरिया बतलाया था, किसीने वायुका दौरा।

मेरी रातकी नींद बिल्कुल उड़ गई थी। सुबह घंटे-दो घंटे सो पाती थी। इन सब रोगोंके लिए कोई इलाज उठा नहीं रखा गया। एलोपैथी तो प्रधान थी ही, होमियोपैथी और आयुर्वेद भी बाकी न रहे। इसी प्रकार नौ महीने निकले। अब डाक्टर कहने लगे, बच्चा होनेपर अपने-आप सब तकलीफें दूर हो जायंगी।

बच्चा होनेके एक सप्ताह पहले मुझे बहुत कष्ट रहा। जीने-की उम्मीद जाती रही। उन दिनों रोज ७-८ दस्त आते। ग्लूकोज-के इंजेक्शन-पर-इंजेक्शन चलते। डाक्टरोंकी राय हुई कि बच्चा अपने-आप होना मुश्किल है। आपरेशनसे निकालना होगा। घर-वालोंने यह सलाह स्वीकार न की। बच्चा अपने-आप हो गया।

उन दिनों मेरी हालत और खराब हो गई थी। मैं अपने-आप कपड़े भी न पहन सकती थी। मेरे सब काम मेरी सास करती थी। मेरे मनमें ग्लानि बनी रहती कि कर्तव्य तो मेरा है इनकी सेवा करनेका, और कहां मैं इनसे सेवा लेती हूं। रात को मेरा रोग बढ़ता था। डाक्टर रोज नींदके इंजेक्शन देता था।

बच्चा होनेके बाद डाक्टरी इलाजसे निराश होकर अपच और आंवके लिए वैद्यका उपचार आरंभ हुआ। उन्होंने मुझे

दवा दी और सिर्फ सौंफके पानी और अनारके रसपर रखा। बादमें दूध और फिर धीरे-धीरे खाना दिलवाया। सब बीमारी ठीक हो गई, लेकिन बहुत थोड़े समयके लिए। फिर न मालूम कहांसे शरीरमें ऐसी गर्मी फुंकी कि तबीयत फिर पहलेकी भांति ही खराब रहने लगी। मासिकमें बीस-बीस दिनतक खून चलता रहता। बहुत खून आता। तीन महीने ज्वर भी आया। फिर डाक्टरों के फंदेमें पड़ी। योनिमें घाव हो गए। धोनेकी अनेक दवाइयां इस्तेमाल कीं, लेकिन किसीसे कोई लाभ न होनेपर डाक्टरोंने आपरेशनकी राय दी। आपरेशन तो मामूली-सा ही हुआ, पर उसी दिन शामको मेरी हालत बहुत खराब हो गई। पेथिडाइन के (Pethidine) इंजेक्शन दिये गये। माथेमें उसकी गर्मी चढ़ जानेसे मैं पागल-सी हो गई। सात दिन बराबर बकती रही। महीनेभर बाद कुछ राहत मालूम हुई। बीच-बीच में मैं दवा बंद कर देती, क्योंकि दवा लेते-लेते मैं तंग आ गई थी। दवा बंद करती तब भी हालत वही रहती, यानी दवा लेना और न लेना दोनों मेरे लिए बराबर था। कुछ महीनोंमें खून गिरना कम हुआ, घाव भी ठीक हो गया। खानेमें कई बार तो उपवास हो जाता, पर आम तौरसे मैं दो बार चाय पीती थी और दो बार रूखे फुलके दाल, सागके साथ खाती थी। कभी-कभी फल या मिठाई भी खा लेती। दूध मुझे हजम नहीं होता था, दस्त हो जाते थे।

घरवालोंको लगा इसे कुछ प्रेत-बाधा हो गई। मामूली डोरे जंतर भी करवाए गए। लेकिन कुछ फल न हुआ। मेरी दवा-पानीमें चार-पांच हजार रुपयोंसे कम न लगे होंगे।

जसीडीहमें प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र होनेकी बात हमने सुनी।

हम लोग ४ दिसंबर ५५को इस चिकित्साद्वारा नवजीवन प्राप्तिके लिए प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र पहुंचे।

वहां मेरा-वजन लिया गया। १ मन २।। सेर उतरा।

उपचार

शुरू-शुरूमें मेरे पेटपर आध घंटेके लिए मिट्टीकी पट्टी दी गई। इस पट्टीपर मैं खूब हँसी, मिट्टी की पट्टी! यह भी खूब इलाज रहा! फिर एनिमा दिया गया, जिससे पेटसे थोड़ा मल निकला। पहले दिन तो इतना ही हुआ।

रातको नींद बिल्कुल न आई। बेचैनी-सी रही। दूसरे दिन तबीयत ज्यादा खराब हो गई। खूब डकारें आईं। दर्द भी बढ़ गया—यानी बीमारी का उग्र रूप सामने आ गया। तब मुझे शहद और नींबू का रस गर्म पानीमें मिलाकर दिया गया। सिर और गर्दनपर ठंडे पानीकी पट्‌टी दी गई। इसी तरह रात कष्टमें कटी।

वजन बढ़ानेके खयालसे मुझे मट्‌ठेपर रखा गया था, लेकिन उल्टे डेढ़सेर वजन और जाता रहा। इसके बाद जोरोंका बुखार आया। उस समय मुझे तुलसीकी चाय और संतरेका रस दिया जाता। तुलसीकी चाय मुझे बड़ी अच्छी लगती थी। मुझे ६-७ पतले दस्त रोज लग जाते थे। पेट खूब साफ हो गया। अब रसाहार-की बारी आई। दस दिनों रसपर रही। कुछ कमजोरी मालूम होने लगी। यहां लोगों को दो-दो अढ़ाई-अढ़ाई महीने केवल फलों के रसपर रहते देखा, सुना मैंने। पर वे मेरे-जैसे प्राणी नहीं थे, कोई तौलमें मुझसे दूना था, कोई अढ़ाई गुना। मुझे तो दस दिन-में ही भूख सताने लगी। वजन घटकर सिर्फ सैंतीस सेर रह गया।

रसाहार खतम होनेपर आधा कच्चा दूध और आधा पानी मिलाकर दिया जाता। कच्चे दूधका नाम सुनते ही मुझे रोना आ गया। पहले दिन सवा सेर दूध और सवा सेर पानी मिलाकर दिया गया, इस आशापर कि इससे पांच-सात दस्त हो जायंगे। पर मुझे तो एक भी दस्त न हुआ। बहुतोंको तो इससे काफी दस्त होते हैं। पहले दिन तो दूध-पानीमें कुछ आंसुओंकी बूंदें भी मिल गई होंगी! मैं इलाज छोड़नेकी बात सोचने लगी। चिकित्सकसे कहने-पर बोले, कि क्यों घबड़ाती हो, एकदो दिनकी बात है, फिर यही स्वाद लगने लगेगा। हुआ भी यही। दूसरे दिनसे ही कच्चा दूध मुझे बहुत अच्छा लगने लगा। भूख भी खूब लगने लगी थी। एक हफ्तेमें अढ़ाई सेर दूध, अढ़ाई सेर पानी तक पहुंची। इसी बीच एक दिन अमरूद खानेकी मेरी बड़ी इच्छा हुई--मुझे अमरूद बहुत प्रिय है। चिकित्सकसे अमरूदके लिए पूछनेपर बोले, दूध और अमरूदका कोई मेल तो नहीं है, पर तुमने मेरी कच्चे दूधकी बात मान ली है, इसलिए मैं तुम्हारी अमरूदकी मांग मान लेता हूं।

पहले दिन ही मैंने पांच अमरूद खाये। दूसरे दिनसे खालिस दूध चलने लगा। पानी मिलाना बंद हो गया। दूध ४ सेर तक चढ़ा। अमरूद तो साथ चलते ही थे। अब मेरा वजन १५६ होगया यानी यहां दाखिल होते समय जितना था उससे साढ़े तीन सेर बढ़ा।

बीच-बीचमें अब भी ज्वर आ जाता था। बदनमें दर्द हो जाता तो एक दिनका रसाहार कर लेती, भाप-नहान ले लेती, एनिमा ले लेती, या नींबू पानीपर रह जाती। बस सब लक्षण चले जाते।

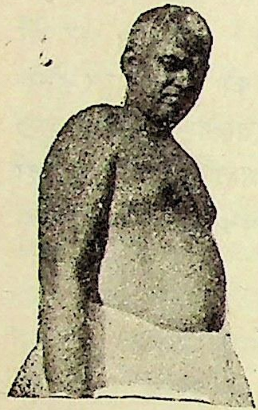
मेरा दूध-कल्प चालीस दिन चला। १ली फरवरीसे मुझे

रोटी बता दी गई। पहले पहल रोटी खाई तब तो तीन-चार दिन कुछ डकारें आईं, डर लगा कि बीमारी लौट आई क्या ? पर तीन-चार दिनों बाद फिर जाती रही। अब मेरा मन भी पहलेसे बहुत प्रसन्न रहने लगा, जो शरीर की गंदगी दूर होने-का ही परिणाम समझना चाहिए। मुझे स्वास्थ्यके संबंधमें कुछ ज्ञान भी हो गया है। मेरा वजन १८७॥ हो गया है, यानी ३६ बढ़ा है। अब मैं अपने कपड़े भी हाथसे धोने लगी हूं। मैं प्राकृतिक चिकित्सा की हृदय से कृतज्ञ हूं।

: २३ :

दमा

महावीरप्रसाद गोयल



यहां आया तब मैं दमेसे बहुत पीड़ित था। थोड़ी दूर चलना भी दूभर था। दिनभर सांस उठा रहता। पेट हर दम भारी रहता। बातचीत करने और सांस लेनेमें भी दिक्कत रहती। बढ़ा हुआ पेट मुझे पहाड़-सा भारी लगता। मेरा जीवन अपने तथा घरवालोंकेलिए संकटजनक हो रहा था।

दमेके लिए पहले मैंने डाक्टरी इलाज कराया। दो महीने दवा लेता रहा। जरा भी फायदा न हुआ। तब भागलपुरके एक वैद्यजीकी दवा शुरू की। ६००)-७००) रुपये दवा और फीस-के रूपमें उनकी भेंट चढ़ाए। खुराकमें उबला आटा, तरकारी और दूध चलता था। पैखाना बिल्कुल काला होता था। दिनभर काढ़े और दवाकी शीशियां और गोलियां चलतीं। सब बेकार गये। तकलीफ ज्यों-की-त्यों रही।

सबसे हारकर प्राकृतिक चिकित्सा कराने आया। यहां ४॥ महीने रहा। यहां मैंने ७ दिन फलाहार किया। २४ दिन रसाहार, ७ दिन केवल नींबू-पानी। फिर ४ दिन दूध। लेकिन दस्त अधिक हो जानेके कारण दूध बंद करके मुझे मट्ठा दिया गया। उससे सांस फिर शुरू हो गया। तब सिर्फ रोटी तरकारी दी गई। वह

भी मुआफिक नहीं आई तो १५ दिन सिर्फ अंगूरोंपर रखा गया। उससे अधिक लाभ रहा। १०-१२ रोज फिर छाछ दी गई और कई दिन बाद उसमें सब्जी जोड़ी गई। ५-७ रोज फिर यह चलाकर दोनों समय रोटी-सब्जी दी जाने लगी।

अब भी कभी-कभी सांस रातको तंग करता। अंतमें खुराक एक वक्त कर दी गई। इसमें सुबह कुछ-कुछ फल, ११ बजे रोटी सब्जी और २ बजे फिर फल। दो बजेके बाद कुछ खाना-पीना न दिया जाता।

इस प्रयोगके साथ-साथ सुबह-शाम मेहनस्नान और मिट्टी-की पट्टी दी जाती थी। पहले कटिस्नान दिया जाता रहा, पर बादको मेहनस्नान दिया जाने लगा। मेहनस्नानसे मुझे काफी फायदा हुआ और दिन-दिन मेरी तबीयत ठीक होती गई। अब मुझे आने-आधे आनेभर दमा रह गया है। आशा है वह घर जाकर उपचार और खुराकसे ठीक हो जायगा।



मेरा वजन यहां आया तब पूरा दो मन था। पेट निकला हुआ था। मेरी शक्ल बहुत भद्दी लगती थी। अब तो मेरा वजन १।८ है। मैं ४ मील रोज टहलता हूं। शरीरमें फुरती है, मन खुश है।

: २४ :

स्वप्नदोष

परमेश्वर गोयल



मैं अपने पिताकी (श्री महाबीर प्रसादजी गोयल) परिचर्या के लिए जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रमें आया था। मुझे भी शारीरिक कमजोरी और स्वप्नदोषकी शिकायत थी। मैंने भी इलाज कराया।

मैंने ८ दिन फलाहार, १२ दिन रसाहार और बादको ४७ दिन दुग्ध-कल्प लिया। फिर कुछ दिनों अमृतान्नपर रहकर रोटी तरकारीपर आ गया। रसाहारके समय मेरे पेटसे काफी मल निकलता रहा।

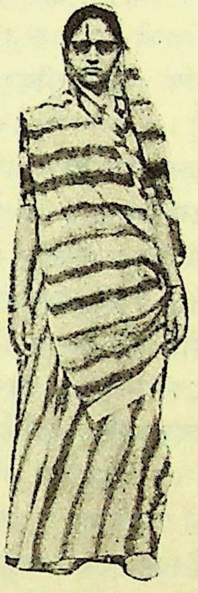
अब मैं शरीरसे, मनसे, खूब खुश हूं। घटा हुआ वजन पूरा हो गया। चेहरे और शरीरके दूसरे हिस्सोंपर रौनक आ गई। स्वप्नदोष जाता रहा।

बड़ा लाभ जो हुआ वह यह कि यहांकी चिकित्सा देखकर, पुस्तकें पढ़कर मामूली रोगोंकेलिए मैं स्वयं एक डाक्टर बन गया। इस चिकित्सासे मैंने जीवनकी पद्धति सीखी है।

: २५ :

टांसिल, पेट-दर्द

जतनदेवी भूतोड़िया



चार साल पहले डाक्टरोंने मेरे टी० बी० का संदेह कर दिया था। दुबली तो मैं हमेशासे थी। कभी-कदास ज्वर आ जाता। बस इतना काफी था डाक्टरके लिए, टी० बी० बतानेको। सब घबराए। जांचके जितने रीति-रस्म होते हैं, सब हुए। एक्सरे-में कोई निशान न आनेपर चिंता दूर हुई कि टी०बी० तो नहीं है, और चाहे जो हो।

अब डाक्टर टांसिलकी खराबी बता कर कहने लगे, बिना टांसिल कटाए यह कभी तंदुरुस्त न रहेगी। घरवालोंने मान लिया, लेकिन मैंने उनकी बात न मानी।

रोग तो मुझे और भी कई थे। मेरी आंखें भी खराब थीं। चश्मा लिया और तीन-तीन बार उसका पावर बदलवाना पड़ा। प्रदर काफी था। सिर और सारे शरीरमें दर्द बना रहता। सालमें दो-चार बार बुखार आना तो मामूली बात थी। दवा दे-देकर बुखार-को दबाया जाता। एक बार जोर का 'डिप्थेरिया' भी हुआ था। इससे मैं बहुत कमजोर हो गई। इसी दशामें पेटमें दर्द होने लगा, अपचके दस्त होने लगे, आंव आने लगे। बर्दवानके बड़े डाक्टर-की दवा ली, लेकिन दशामें कोई फर्क न पड़ा। दवा से मुझे एक

तरहकी घृणा हो गई। तब डाक्टरोंने हवा पानी बदलनेकी राय दी।

अपनी मांके पास सरदार शहर (राजस्थान) जाकर वहां वैद्यकी दवा शुरू हुई। उससे लाभ न होने पर डाक्टरको दिखाया गया। उसने 'लीवर' खराब बतलाया। कहा, इंजेक्शन लेने जरूरी हैं। इंजेक्शन ले-लेकर मैं पहले हैरान हो चुकी थी, इसलिए मैंने इन्कार किया। तब फिर एक बड़े वैद्यके यहां गये। उसने कहा इसके संग्रहणी है, पर्पटी लेनी होगी। पर्पटी बहुत गर्म दवा है, मैं उसे बर्दाश्त न कर सकूंगी इस खयालसे किसीके नहीं जंची। तब वैद्यने लवणभास्कर चूर्ण दिया। चूर्ण मैंने १०-१५ दिन ही लिया था कि फिर मुझे वर्दवान आना पड़ा। उस समय मैं इतनी कमजोर हो गई थी कि एक दिन रातको मैं, मेरी सास, देवर और पति बैठे ताश खेल रहे थे, कोई हँसीकी बात निकली, इस पर मुझे जोर की हँसी आई और मैं ५-७ मिनटके लिए बेहोश हो गई। दम घुटने लगा। सब घबरा गये। होशके बाद भी कुछ दिनों मैं दिनभर बेचैन रहती। किसी काममें मन न लगता। जबरदस्ती कुछ कर लेती तो बुरी तरह थक जाती। अब फिर डाक्टरोंके चक्करमें पड़ी। बहुत इंजेक्शन भी लिये, लेकिन हालत ज्यों-की-त्यों रही। हजारों रुपये खर्च करके स्वास्थ्य आनेभर भी न सुधरा।

तब मेरे पति के आग्रह से मैं प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र जसीडीह आई। मेरी चिकित्सा आरंभ हुई। पहले तीन दिन मुझे दूध-फल दिया गया। फिर संतरे वगैरहका रस। मुझे ५-६ रोज तो कुछ कमजोरी लगी, लेकिन फिर शक्ति मालूम होने लगी। मैंने पचीस दिन रसाहार चलाया। उसके बाद दूध कल्प चला। बीस दिन तो दूध ठीक चला, फिर एक जोरका

उभार आया। टांसिल सूज गये। ज्वर भी आया। मैं डरी कि फिर कहीं डिप्थीरिया न पकड़े। 'दूध का जला मट्ठा फूंक-फूंक कर पीता है।' इस समय दूध बन्द कर दिया गया। थोड़ा-थोड़ा रस लेती रही। ४-५ दिनोंमें सब फसाद अपने-आप चला गया। फिर मैं दूध मट्ठेपर आ गई। अब रोटी खानेकी इच्छा होने लगी। मुझे अन्न ठीक पचने लगा।

मैं घर कभी मीलभर भी पैदल न चली थी, अब ५–६ मील रोज घूम लेती हूं। सेर-सवा सेर आटा रोज पीसती हूं। कपड़े मेरे हमेशा दाई धोती थी, अब मैं अपने हाथसे धो लेती हूं। शरीरमें स्फूर्ति है, मन बहुत प्रसन्न रहता है। पहले मेरा भोजन बहुत खराब था। मिर्च, तेल, खटाई सब चीजें चलती थीं। और जब कभी दो-चार स्त्रियां साथ बैठतीं तो पेट ठंसनेतक खाती रहती। अब मैं समझ गई हूं कि जीनेके लिए खाना है, खानेकेलिए जीना नहीं है।

मैं बेतरह डरती थी, कमरेमें अकेली न रह सकती थी। किसी-न-किसीको मेरे पास रहना पड़ता था। दूसरे रोगोंके साथ यहां वह भयरूपी रोग भी भाग गया।

यहां मेरा पर्दा छूट गया। मैं घुट-घुटकर मरने से बच गई। यहांके मुक्त वातावरणमें स्त्रियोंका जीवन हरा-भरा हो जाता है। यहां अस्पतालों का-सा गला घोंटू वातावरण नहीं है। एक बार मैं अपनी सास के साथ जोधपुरके एक बड़े अस्पतालमें दो महीने रही थी। बड़ी मुश्किलसे यह समय बीता, वहां। सफेद बगलोंके-से कपड़े पहने नर्सें इधर-से-उधर आती जातीं और हरदम सुनातीं यहां मत बैठो, कमरेसे बाहर मत निकलो, रोगीको हवा मत लगने दो। पर यहां तो उससे बिल्कुल

उल्टा ही हाल है। कहते हैं, अंदर कम-से-कम रहो, खूब घूमो, खूब हवा खाओ, खूब पानी पीयो। यहां एक आश्रमका-सा पवित्र वातावरण है। दिन बातकी-बातमें खत्म हो जाता है। इच्छा होती रहती है कि कब शाम हो और कब प्रार्थनामें शामिल हों। सचमुच मेरी तो यहांसे जानेकी इच्छा ही नहीं होती।

: २६ :

खाज, बवासीर, मोटापा

नानीदेवी भूतोड़िया



मैं बचपनसे ही प्रायः बीमार रहती थी। कभी ज्वर होता, कभी पेट-में दर्द। दवासे एक बार दबता फिर कुछ दिनों बाद उभर जाता।

बारह सालकी उम्रमें मेरे बाएं पांवके घुटनेके नीचे नलीमें एक छोटा-सा घाव हुआ। बढ़ते-बढ़ते वह समूची नलीमें फैल गया। स्थानीय डाक्टरोंसे बहुत इलाज करवानेपर भी कुछ न हुआ तो जयपुर गये। वहां डाक्टरोंने कहा, **पैर काटना** पड़ेगा। सब लोग बहुत घबराए। पिताजीने डाक्टरसे बहुत अनु-नय-विनय की कि लड़कीके पैरको किसी तरह बचाना चाहिए। डाक्टर बोला कि मैं आपरेशन करता हूं, अगर घाव हड्डीके भीतर चला गया होगा तो पैर काटना ही पड़ेगा, नहीं तो बच जायगा। ईश्वरको धन्यवाद कि मेरा पांव बच गया और मैं अच्छी हो गई।

मेरे माता-पिताने मुझे एक धनी घरमें ब्याहा। पति गूंग-बहरे थे। कुछ साल बाद, तीन सालके अंतरसे मेरे दो बच्चे हुए। दूसरे बच्चेके बादसे ही मैं फिर बीमार रहने लगी। पैरमें फिर दर्द रहने लगा। और कुछ दिनोंके बाद पेटमें भी बीमारी बहुत बढ़ जानेपर जोधपुर अस्पताल गई। पांच-छः महीने इलाज करवाने

पर कुछ सुधार हुआ। लेकिन कुछ दिनोंके बाद फिर वही दशा हो गई। कभी कमरमें, कभी कंधे पर बड़े-बड़े फोड़े निकलते। कभी अपने-आप फूटते और कभी चीरे जाते। कभी जोधपुरमें चीरा लगा, कभी बीकानेरमें। इसी समय "एक्जिमा" भी फूटा। इसके लिए इंजेक्शनोंकी भरमार हुई। जब इनसे कोई लाभ न हुआ तो लाडनूंमें जाकर एक नामी वैद्यसे इलाज करवाया। उसकी दवा-से कोई लाभ तो नहीं ही हुआ, उल्टे खाज सारे शरीरमें फैल गई। फिर जोधपुरके बड़े अस्पतालमें पहुंची। इसी प्रकार कोई-न-कोई बीमारी बराबर लगी रहती और इधर-से-उधर डाक्टरोंके यहां ठोकरें खाती रहती।

इस बीच मेरा बड़ा लड़का बच्छराज कभी-कभी मुझे प्राकृतिक चिकित्सा करवानेको कहता। मुझे खट्टा, मीठा व तीता खाने को मना करता, कम खानेको कहता, पर मैं उसकी कहां सुनती, उल्टे उसे डांटती।

लाडनूंसे मैं बर्दवान आई। यहां खाज बढ़ गई और बवासीर-के दर्दसे भी मैं परेशान रहने लगी। इसी समय बच्छराज अपनी स्त्री जतनबाईको इलाजके लिए जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र ले गया। वहांसे उसका पत्र आया कि जतनबाईको १०-१५ दिनोंमें ही बहुत लाभ हुआ है। उस पत्रसे उत्साहित होकर मैं भी जसीडीह चली आई।

यहांका वातावरण देखकर मैं खुश होगई। लेकिन पहले दिन ही मेरे साथ एक जुल्म हुआ। मैं लगभग तीस वर्षसे एक रुपये रोजकी सुपारी खाती थी, मुझे उसे छोड़नेको कहा गया। यहांतक कि समझाते-समझाते चिकित्सकने मुझसे सुपारीका डिब्बा मांग लिया और मुझसे प्रतिज्ञा करवाली कि अब मैं सुपारी न खाऊंगी।

कई दिन तो सुपारीपर मन बहुत चलता रहा, पर पासमें थी ही नहीं कि खाती। अपने आप कई दिन बाद मन चलना बंद हो गया। दिनमें कई बार चाय पीती थी, वह भी छोड़ देनी पड़ी। मुझे पहले वर्द्धवानमें इन सब चीजोंको छोड़नेकेलिए मेरे लड़केने कहा था, पर मैं छोड़ न सकी थी। अपनेको छोड़ने में असमर्थ समझती थी। यहां इतनी आसानीसे दोनों चीजें छूट गई कि मेरे लड़के और पुत्र-वधूको आश्चर्य हुआ और मुझे खुद भी कम ताज्जुब नहीं हुआ। इन चीजोंको छोड़नेमें मुझे सिर्फ दो-चार दिन तकलीफ रही, फिर तो आराम-ही-आराम था।

इसके बाद मेरा रसाहार शुरू हुआ जो २६ दिन तक चला। मैं एक दिन भी भूखी न रह सकती थी। पहले, यह एक विचित्र बात थी मेरे जीवनमें। रसाहारसे मेरे शरीरमें दिन-दिन स्फूर्ति आती गई। रसाहारके बाद तीन दिन दूध-पानी चला। उसमें भी काफी पुराना मल निकला। कितना मैला भरा था मेरी आंतोंमें! शायद यह मल ही मेरे सारे रोगोंका मूल था।

मेरा वजन १॥।)९ था सो घटकर १।)९ हो गया। मैं पहले एक फर्लांग भी न चल सकती थी। मैं और मेरे घरवाले भी यही समझते थे कि पांव की नलीके आपरेशनकी वजह से मेरा दाहिना पैर निकम्मा हो गया है। पर यहां जब मैं रोज ४-५ मील घूमने लगी तो सबके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। मैं रोज तीन सेर आटा भी पीसने लगी।

इसके बाद कुछ दिनों दूध चलाकर मैं रोटी तरकारी पर आ गई। एक-दो तोला घी भी खाने लगी। अब मैं बिलकुल स्वस्थ हूं। मैं आजन्म प्राकृतिक चिकित्साकी ऋणी रहूंगी।

: २७ :

मोटापा, दाद

राधेश्याम जसरासरिया



रोग—मुख्यत: मोटापा। साथ सात आठ सालसे शरीरमें कई जगह भयंकर दाद। भीतरी गरमीकी वजहसे मेरी आंखें भी हमेशा लाल रहती थीं।

दवा बहुत ली, पर कोई लाभ न हुआ।

गोहाटी के श्री सांवलराम गोयनकाने मुझे जसीडीह जाकर प्राकृतिक चिकित्सा करानेकी सलाह दी। पर मुझे तथा मेरे घर-वालोंको इस चिकित्सासे बहुत डर लगता था। सुन रखा था, बहुत भूखा रखते हैं। किसी किसीसे यह भी सुना था कि रोज कई मील दौड़ाते हैं—कोई कुछ कहता, कोई कुछ, 'जितने मुंह उतनी बातें।'

पर मैं अपने मोटापेसे इतना परेशान था कि भूखा मारा जाकर या दौड़ाया जाकर भी इससे छुटकारा पानेको उत्सुक था। इस युवावस्थामें यह दिन-रातका मसनदोंके सहारे पड़े करवटें बदलना मुझे बहुत अखर रहा था। इस जीवनसे मैं मौतको अच्छा समझता था। अत: किसी तरह जी कड़ा करके मैं जसीडीह पहुंचा। यहां आते ही मुझे रसाहार शुरू कराया गया। भीतर से मन तो घबराया कि कहां मैं दिनमें ५-७ बार चाय पीनेवाला और कहां यह रस। शिलांगसे चला तो यह नहीं सोचा था कि चाय-जैसी

प्यारी चीजको भी छोड़ना पड़ेगा। सोचा था खाना-दाना नहीं देंगे तो महीने-आध महीने चाय पी पीकर काट लूंगा। लेकिन यहां तो चाय और अन्न दोनोंको नमस्कार करना पड़ा।

दूसरे आदमियोंको रसाहार करते देख—सुनकर मुझे भी हिम्मत हो गई, "खरबूजेको देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है।"

पहले दिन मुझे मिट्टीकी पट्टी, एनिमा और कटिस्नान दिया गया और फल खाने को कहा गया। फलाहारमें मुझे लगा कि मैं फजूल डरता था। चाय को मैं भूल ही गया। रसाहार के लाभोंका वर्णन करना मेरे लिए मुश्किल है। एनिमासे तो मुझे रोज दस्त होते ही, योंभी मुझे ४-५ दस्त रोज होते। और कभी-कभी तो दस-पंद्रहतक। फिर दूधपानी और उसके बाद खालिस दूध लेनेपर दस्तोंकी वही रफ्तार रही। तब दिनमें तीन बार दूध और तीन बार मट्ठा दिया जाने लगा। इससे दस्त बंध गये। इसके बाद मैंने अमृतान्न शुरू किया। उससे अब मुझमें इतनी शक्ति और स्फूर्ति आ गई है कि मैं नित्य ७-८ मील घूम लेता हूं, एक मील दौड़ लेता हूं और आध घंटा कसरत भी करता हूं।

मेरा मोटापा चला गया, वजन २।) से १॥।)४॥ हो गया। दाद तो एकदम चले गये। आंखोंकी लाली दो आनेभर बाकी रही है—सो, आशा है, शीघ्र ही दूर हो जायगी।

मैं आज निर्भय अंतःकरण लेकर जा रहा हूं। इस इलाजकी प्रेरणा देनेवाले दोस्तको हृदयसे धन्यवाद देता हूं।



कब्ज और बवासीर

पुष्पवती लाठ

पांच-सात साल पहलेसे मुझे कब्ज रहने लगा और परिणामस्वरूप बवासीर। यहां मुझे मालूम हुआ कि कब्जवालोंमें सैकड़े ६०-७० को बवासीर होती ही है।

मेरी दशा दयनीय थी। शरीरमें सुस्ती छाई रहती, सिर भारी रहता, भूख न लगती।

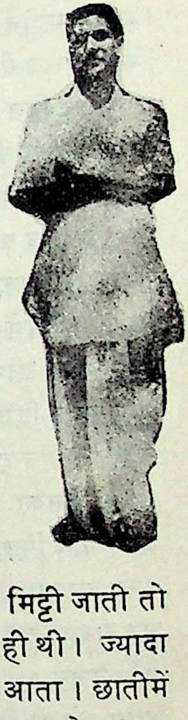
मुझे मालूम हुआ कि प्राकृतिक चिकित्सासे मेरा कब्ज और बवासीर जा सकता है, तो अपने श्वसुरकी आज्ञानुसार मैं १८-८-५५ को प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र, जसीडीह आई।

उपवास, रसाहार, एनिमा, मिट्टीकी पट्टी, कटिस्नान आदि द्वारा अढ़ाई महीने मेरा इलाज हुआ। बीचमें एक-दो बार उभार भी आया। बवासीरमें खूब पीड़ा हुई। मनमें खयाल होता कि आई तो थी मैं अपनी तकलीफ दूर कराने और यह कैसी चिकित्सा कि तकलीफ और बढ़ गई। पर चिकित्सकके यह समझाने पर कि यह उभार लाभके लिए है, धीरज रखकर वह पीड़ा मैंने सही। पर एक हफ्तेके अंदर सारा कष्ट जाता रहा। और अंतमें कब्ज और बवासीरसे मुझे एकदम छुटकारा मिल गया।

: २९ :

सरदी जुकाम, सिर-दर्द

रामदीन मोदी



मेरा ढाई सालका समय स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बहुत ही खराब बीता। पहले तो वह पास-पड़ोस वालोंके लिए ईर्ष्याका कारण था।

सर्दी, जुकाम, सिरमें दर्द, शरीरमें बराबर हल्का-हल्का ज्वर, थोड़ी देर बैठनेपर भी पीठकी रीढ़में दर्द, शरीरका हरदम टूटते रहना रोजमर्रा-की चीज हो गई थी। घोर कब्ज रहने लगा। पाखाना काला, कड़ी गांठों की शक्लमें होता। शरीरका रंग पीला पड़ने लगा। मांस सूखने लगा। वजन १।७ से घटकर १।९ पर आ गया। मेरी यह हालत थी कि नाकमें थोड़ी-सी भी धूल मिट्टी जाती तो सर्दी हो जाती। बरसाती हवासे तो मेरी दुश्मनी ही थी। ज्यादा गरम हवा और धूप भी लग जाती तो दमा उभर आता। छातीमें कफ इस तरह जमा हो जाता कि खांसते-खांसते दम घुटने लगता। चलना-फिरना मुहाल हो गया।

पहले तो मैंने जलपाईगुड़ीमें ही अपना इलाज कराया। दवा-इयां और इंजेक्शन बहुत लिये। एक बार कई दिन के लिए कुछ फायदा दिखाई देता, बादको हालत वैसी ही हो जाती; बल्कि उससे भी बदतर। पैसे तो बुरी तरह खर्च होते ही।

कलकत्ता आया। वैद्यों ने मेरे रोगका नाम मंदाग्नि रखा।

मुझे लौहपर्पटी दी गई। ग्यारह सेरतक दूध चढ़ गया। शुरू-शुरूमें तो काफी फायदा दिखाई दिया। वजन १५४ से १।।५ हो गया। अढ़ाई महीने इलाज चला। खर्चा पूरा लगा। बीस-पचीस दिन बाद हालत वैसी ही हो गई, बल्कि और बुरी। महीनेके तीस दिन में दो-चार दिन भी आरामसे न बीतते। दिन-रात घरमें ही रहने लगा। इसी बीच मुझे श्री महाबीरप्रसाद पोद्दार द्वारा लिखित 'कब्ज—कारण और निवारण' पुस्तक पढ़नेको मिली। उससे मेरा झुकाव प्राकृतिक चिकित्साकी ओर हुआ। कलकत्तासे जलपाईगुड़ी जाकर, मैं प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र जसीडीह आया।

आरंभमें एनिमा, मिट्टीकी पट्टी, और दोनों समयका कटिस्नान और दो-तीन मील रोज घूमना चला। खुराकमें मुझे मट्ठा दिया गया। इससे रोगमें तो लाभ हुआ पर वजन कुछ न बढ़ा। तब दूध और फल देने लगे। फिर भी वजन न बढ़ा। तब सत्रह दिनका रसाहार कराया गया। तीन सेर वजन और घट गया। फिर तीन दिन दूध-पानीपर रखकर ४० दिनका दुग्धकल्प कराया गया। इससे वजन १५५ से बढ़कर १।५२ हो गया। अब सुबह दूध, फल और दोपहरको रोटी-तरकारी कर दी गई। वजन १।५३ हो गया। इसी बीच दमेका एक हल्का-सा उभार आया, जो दो-दिन उपवास और तीन-चार दिनके रसाहारसे अपने आप ठीक होगया। वजन जरूर १।५ हो गया, पर इन सबका एक मीठा फल यह मिला कि मैंने यह समझ लिया कि दमेका दौरा आनेपर भी तथा अन्य कोई शारीरिक कष्ट होनेपर ४-५ दिनका रसाहार करनेपर और एनिमासे पेट साफ कर लेनेपर आदमी अपने-आप ठीक हो जाता है—किसी चिकित्सकके पास दौड़ने-भागनेकी जरूरत नहीं।

जलपाईगुड़ी से १७-११-५६ को मेरी स्त्री सीतादेवी और मेरे दो बच्चे मुझसे मिलने जसीडीह आये। उनमें छोटे मदन-गोपालकी उम्र तीन साल है। उसे अपच की शिकायत थी। लीवर काफी खराब था। वह जो खाता, बिना पचे निकल जाता। शरीरका रंग पीला पड़ गया था। वजन कुल ।)११।। था। यहां आनेके दूसरे दिन उसने एक अमरूद खाया। देखा गया कि डेढ़ घंटे बाद अमरूदके बीज पाखानेसे निकल गए। इसी तरह उसे जो खानेको दिया जाता दो-चार घंटे बाद निकल जाता।

३०-११-५५ से उसकी खुराक में दूध-फल किया गया। दिनभरमें एक बार एनिमा, कटिस्नान, और मिट्टीकी पट्टी दी जाने लगी। एक सप्ताह बाद रसाहार कराया गया, जिसमें सिर्फ संतरोंका रस दिया गया। रसाहार में वजन)१ घट गया। पानी मिला दूध और फल दिया जाने लगा।

धीरे-धीरे बच्चेकी पाचन-शक्ति बिल्कुल ठीक हो गई। अब एक समय रोटी-तरकारी खाता है, दूसरे समय दूध-फल। सब चीजें अच्छी तरह पच जाती हैं। पीलापन दूर होकर सुर्खी छा गई है। सादे भोजनमें संतुष्ट रहने लगा है। वजन तेरह सेर हो गया है। एक बड़ी बात और हुई, उसके स्वभावका चिड़चिड़ापन दूर हो गया।

मेरी स्त्री सीतादेवी मोटी थी। और भी कई रोग थे। उसका वजन यहां दस सेर घटा और सब रोग गए।

: ३० :

पेटका गोला

रतनदेवी



मेरे पेटमें गोलेके रूपमें एक मांस-पिंड था, जो सात महीनेके बच्चेकी तरह घूमता था। पेटमें दर्द भी रहता था। बीचमें दो-अढ़ाई महीने मासिक बंद रहकर फिर खून जारी होता और सेरों खून गिर जाता। एक वर्षमें तीन बार यही दशा हुई। डाक्टरोंने कहा, रक्त-विकार है, इसलिए गर्भ खराब हो जाता है। किसी डाक्टरने कहा, खून-का पानी हो गया है, किसीने रक्त-प्रदर बतलाया। एक्सरे के बाद खूनकी जांच हुई, बहुत अच्छे-अच्छे डाक्टरोंकी दवा, इंजेक्शन, कविराजी और होमियोपैथी दवाएं भी की गईं, पर किसी दवासे कोई आराम न मिला। मेरे अपच-की बीमारी भी थी—खाना हजम नहीं होता था। दिनभर थूकनी चलती थी।

दो बार गर्भपातके कारण आपरेशन हुए, यह कहकर कि गर्भाशयमें मांस-पिंड रह गया है। डाक्टरोंने आपरेशन और दवा-के नामपर मेरे पांच हजार रुपये खर्च करवा दिये। लेकिन वह मांस पिंड गया नहीं था, बराबर पेट में घूमता ही रहता था।

डाक्टरोंने फिर एक बार आपरेशनकी सलाह दी, लेकिन

मेरी कमजोरी देखकर घर वाले डरते थे कि टेबुलपर ही इसके प्राण चले जायंगे। इसी बीच हमारे बांकुड़ाके एक रिश्तेदारने मुझे जसीडीह जाकर प्राकृतिक चिकित्सा करानेकी राय दी और बतलाया कि उनके भाईकी मरणासन्न स्त्री वहांसे नई जिंदगी पाकर आई है।

जब मैं यहां आई मेरा वजन २ मन ४ सेर ४ छटांक था। यहांके इलाजसे वह १।।।) रह गया। पेटका दर्द जाता रहा और वह गोला भी बिल्कुल चला गया। अब मुझे कोई बीमारी नहीं रह गई है। मैं यहां ५-६ मील रोज घूम लेती हूं, जबकि घर दस कदम भी न चल सकती थी।

मैंने तीन दिन फलाहार किया और छिहत्तर दिन रसाहार। फिर दो दिन दूध-पानी, १० दिन फल और मट्ठा। उसके बाद दो दिन आध-आध छटांक दलिया। अब मैं दिनभरमें दो छटांक आटे-की रोटी लेती हूं और फल तथा मट्ठा।

यहां मैं यह भी सीख गई हूं कि अपना खानपान ठीक रखने-से आगे मैं बीमार नहीं पड़ूंगी।

: ३१ :

पेटका दर्द

कस्तूरीदेवी



पेटमें दर्द आनेपर मैं दिन-रात कराहती रहती। दर्द कभी छः महीनेसे आ जाता, कभी सालभरसे। महीने-महीने भर तक खाना-पीना सब हराम हो जाता।

डाक्टरोंकी दवा लेनेसे एक बार दब जाता। इस बारका दर्द पूरे एक महीने टिका। बहुत दवाइयां खाईं, पर कोई फायदा न हुआ।

प्राकृतिक उपचारके लिए मेरी दादी और बूआ जसीडीह आईं तो मुझे भी ले आईं।

यहां पहले मैंने दस दिन दूध-फल लिया। फिर २१ दिन रसाहार पर रही और बाद को ४० दिनका दुग्धकल्प किया।

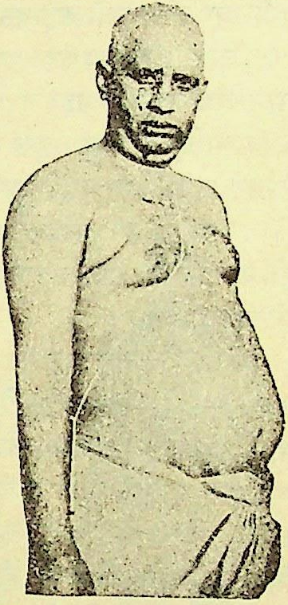
अब एक सेर दूध लेती हूं, आध पाव आटे की रोटियां, आध सेर तरकारी और आध सेर फल।

अब मुझे किसी तरहकी कोई शिकायत नहीं रह गई है। मैं पूरी तंदुरुस्त हूं। रसाहारमें मेरा जो वजन घटा था, पूरा होकर अब आध सेर अधिक हो गया है।

: ३२ :

आंव, सिर-दर्द और मोटापा

केशवप्रसाद पांडे



तीन साल पहले, मेरे सिरमें जोरोंका दर्द रहने लगा। पाखानेमें चिकने आंव आने भी शुरू हुए। उस समय कई महीने यों ही बीते, आंव बंद न हुए तो मैं पटनाके सबसे मशहूर डाक्टरके पास दौड़ा।

पेशाब, पाखाना, खून और आंखों[1] की जांच करवानेका आदेश मिला। अड़तालीस रुपयोंका नुसखा हो गया। नित्य दो ट्रैंबिन (Trambin) टेबलेट खानेको कहा गया। इनसे कोई लाभ न होनेपर 'स्टोवसेल' और उसके फेल होने पर 'टेरामाइसिन' और तब 'एरोमाइसिन', बी कंपलेक्स, 'इंटर क्लीनिक टेबलेट' इत्यादि कितनी ही तरहकी दवाइयां, एकके बाद दूसरी चलीं। इनसे हारकर मैं बिहार के आमाशयिक विशेषज्ञ (Stomach Specialist) के यहां गया। उनसे निराश होनेपर

---

[1] आंखोंकी जांच सिरदर्दके सिलसिलेमें हुई।

दूसरे डाक्टरकी शरणमें पहुंचा, पर 'मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की' वाली कहावत चरितार्थ हुई।

एलोपैथीसे ऊबकर आयुर्वेदिक के सहारेके लिए काशीके एक नामी वैद्यशास्त्रीके यहां पहुंचा। वहांसे छूटकर पटनाके वैद्यका दरवाजा खटखटाया। कुछ न हुआ तो पटनाके मशहूर हकीमके दरपर पहुंचा। पर कहीं कुछ कामयाबी न हुई।

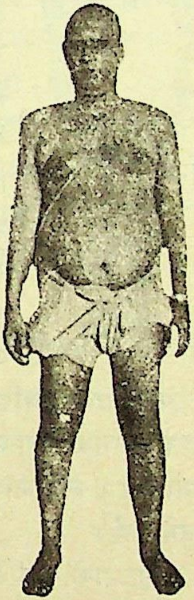
डाक्टरी, आयुर्वेदिक और हकीमीसे हारकर पटनेके मशहूर होमियोपैथ की दवा कराई। पर परिणाम वही हुआ जो दूसरे तीनका हुआ था।

इसी बीच एक दिन मेरे पूर्व परिचित श्री नवलकिशोर पाठक एम० ए० से (ग्राम चौकड़ी, डाल्टनगंज) भेंट हुई। कुछ दिनों पहले प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र जसीडीह से वह अपना इलाज कराके गये थे। उन्होंने मेरी हालत सुनकर कहा, "पांडेजी, क्यों आप डाक्टर और दवाके पीछे मिट रहे हैं। जाइए जसीडीह, वहां प्राकृतिक चिकित्सासे अच्छे हो जाइएगा। पेटकी बीमारीका इलाज तो किसी डाक्टर, वैद्यके पास है ही नहीं।"

मैं जसीडीह आया। यहां तीन दिन फलाहार और चालीस दिन रसाहार किया। मेरा ३८ पौंड वजन गया। आगे बढ़ा हुआ पेट और दूसरे सब बेडौल अंग दुरुस्त हो गए। सिरदर्द और आंव तो गया ही, बहुत बड़ा फायदा शरीर सुडौल होनेका हुआ, जिसकी मैंने कल्पना भी न की थी। यह मेरे लिए एक अनहोनी बात हो गई। मुझे यहां समझाया गया कि यह ३८ पौंड वजन कूड़ा था, मेरे शरीरमेंसे विना इस कूड़ेके निकले न आंव जा सकते थे, न सिरदर्द। दोनों इस कूड़ेकी बदौलत ही थे। जैसे कूड़ा सड़नेसे बदबू फैलती है, वैसे ही शरीरमें पड़े कूड़ेमें सड़ान पैदा होनेसे तरह-

तरहके रोग आते हैं।

पहले सुननेमें मुझे यह सिद्धांत कैसा-कैसा-सा लगता था, मेरे शरीरकी स्थूलता या उसके आकार-प्रकारसे मेरी बीमारीका क्या ताल्लुक है ? मैं कभी-कभी चिकित्सकसे इसका तत्त्व समझना चाहता। वह समझाते, पर मैं समझ न पाता तो वह कहते 'फलेन परिचीयते' जब कूड़ा चला जायगा और साथ-साथ रोग भी, तब आप स्वयं सब समझ जायंगे।



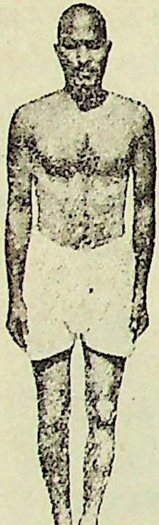
अब तो दर्पणकी तरह सब बातें मेरे सामने हैं।

प्राकृतिक चिकित्सासे हुए लाभों-का वर्णन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। एलोपैथी, आयुर्वेदिक, होमियोपैथी, और हकीमीके पीछे मेरे तीन साल बिगड़े और कम-से-कम दो हजार रुपये। तीन सालकी कीमत और हैरानीको तो छोड़ ही दें। मैं यहां केवल पौने दो महीने रहा, उपचार फीस वगैरहमें मेरे १००) लगे। फला-हार, रसाहार, दूध वगैरहमें दो सौ रुपये और लगे होंगे। इतनेमें मैं बराबरकेलिए स्वयं ही स्वस्थ नहीं हुआ, बल्कि मुझे विश्वास है कि मैं अपने घरवालोंको भी स्वस्थ रखनेकी कोशिश कर सकूंगा।

: ३३ :

भयंकर पेटदर्द

गोरखप्रसाद



सन् १९४८ की बात है। मेरी भूख कम होने लगी। पर मैंने खाना छोड़ा नहीं, न कम ही किया। मेरे मुंहमें हमेशा पानी-सा भरा रहता। अखीरमें पेट-दर्द होने लगा। सर्वप्रथम मैंने अपने जिलेके प्रसिद्ध होमियोपैथकी दवा कराई। अधिक कमजोर होता गया, चलना-फिरना मुश्किल हो गया। तब डाक्टर-वैद्योंकी शरण गया। पर किसीसे स्थायी लाभ न हुआ। पेटमें कभी मीठा, कभी तीव्र दर्द होता। दवा कराते-कराते मैं ऊब गया। उस समय दर्पणमें अपनी सूरत देखकर मन खिन्न हो जाता और आत्महत्याकी प्रवृत्ति होती। किसी परिचितके सामने जाने और बात करनेकी हिम्मत न होती। चेहरा मलिन और निस्तेज हो गया था। स्मरण-शक्ति कम होती गई और विचार अस्थिर रहने लगे।

पटनाके बड़े डाक्टरोंने मेरे पेटमें अल्सर कायम किया। इससे मेरा रहा-सहा धैर्य भी टूट गया।

इसी बीचमें एक दिन कार्यवश आसनसोल जा रहा था तो मेरी बीमारीकी चर्चा उठनेपर उसी डिब्बेमें बैठे हुए एक सज्जन ने मुझे प्राकृतिक चिकित्सा करानेकी सलाह दी।

कुछ दिनों बाद देवघरके एक व्यापारीसे जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रका पता लेकर यहां पहुंचा। उस समय मैं यहां इलाज कराने नहीं, सिर्फ देखने आया था। यहांका स्थान और जलवायु देखकर मेरा मन आकर्षित हो गया। मैं अपना सामान वगैरह लेकर २९-१-५५ को जसीडीह पहुंच गया।

३० ता० से मेरी चिकित्सा शुरू हुई। दस-बारह दिन तो मेरी हालत कुछ नहीं सुधरी। पर धीरे-धीरे मेरे पेटका दर्द घटता गया और महीनेभरमें दर्दका नाम-निशान भी न रहा।

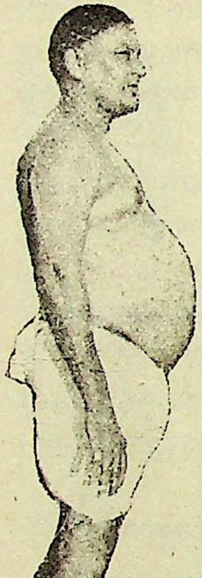
रसाहारके दिनोंमें शामको मैं अक्सर घबड़ा जाता था। पर चिकित्सकके सामने जाते ही वह घबड़ाहट दूर हो जाती थी। मैंने रसाहार इक्कीस दिन चलाया और ३५ दिन दूध। मुझे रोगसे ही छुटकारा नहीं मिला, मेरे शरीरमें एक विचित्र स्फूर्ति आ गई। चेहरे और शरीरपर चमक आगई।

यहां मैंने यह भी सीखा कि मनुष्यको क्या खाना चाहिए, कैसे खाना चाहिए, कैसे रहना चाहिए।

: ३४ :

चीनीकी बीमारी

बिहारीलाल



मैं करीब सात सालसे चीनीकी बीमारी (डाइबिटीज) से परेशान था। घुटने और पांवोंमें दर्द भी था। एक मील चलना भी मुश्किल था। आंखें कमजोर और शरीर भारी था।

पटना, दरभंगा, कलकत्ताके डाक्टरों द्वारा इलाज करानेमें और फीस और दवा में कुल मिलाकर मैंने लगभग दस हजार रुपये चुकाए होंगे। और जो सात सालका समय बिगड़ा वह अलग।

सबसे हारकर अंतमें मैं प्राकृतिक चिकित्साके लिए आया।

कुछ दिनों फलोंपर रहकर मैंने ३० दिनका रसाहार किया। कटिस्नान, मिट्टीकी पट्टी, भाप-स्नान, धूपस्नान आदि उपचार हुए। घूमता रोज ५-६ मील था।

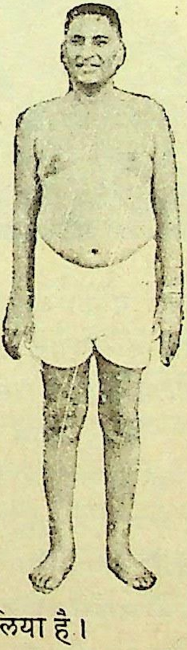
चीनीकी बीमारी बिल्कुल चली गई। मेरा वजन जो २ मन ७ सेर ८ छटांक था अब १ मन २८ सेर है। शरीरमें स्फूर्ति मालूम होती है। मैं अब रोज ६ मील घूम लेता हूं। पैरोंमें दर्द नहीं रहा। शरीरसे आलस्य दूर हो गया।

मैंने पेशाबकी जांच खुद करना सीख लिया था। फिर भी

मनको पूरी तसल्ली देनेकेलिए मैं कलकत्ता गया और अपनी सब चीजें वहां फिर जंचवाईं। अब सब ठीक थीं।

मैंने अपनी यह सुधरी हुई दशा कलकत्तामें श्री नीलरंजन सेन और कैप्टेन किरन सेनको भी दिखाई। मैंने उन दोनोंसे सूइयोंके और खाने-पीने के नुस्खे लिये थे। परिचयके लिए वे नुस्खे मैं साथ ले गया था। डाक्टरोंने समझा कि यह हमारी दवा खा रहा है। देखकर बोले, अभी कुछ दिन दवा और खाते रहिए। दवाने आपको काफी फायदा पहुंचाया है। मैं मनमें हँस रहा था कि मुझे तो दवाने नहीं, फायदा प्रकृतिने पहुंचाया है।

यहां चिकित्सामें मेरी स्त्री साथ थी, उसे भी दो रोज ज्वर आया। पहले तो ज्वर आनेपर १५-२० दिन भुगतती थी और डाक्टरोंकी दवा लेती रहती थी तब ज्वर छोड़ता था। यहां दो दिन कटिस्नान, भापनहान और मिट्टी की पट्टी लेनेसे ही ज्वर विदा होगया।



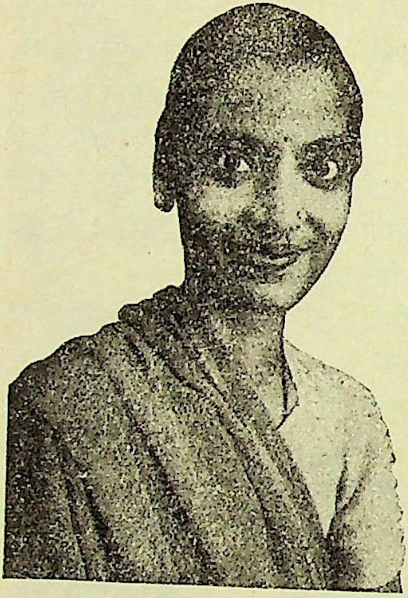
यहां मेरी एक बड़ी बीमारी और गई, जिसे मैं आदत मानता था, पर यहां तो उसे 'बीमारियोंकी नानी' कहा जाता है। वह थी सिगरेटकी बीमारी। मैं २॥-३ पैकेट सिगरेट रोज पीता था, वह बिल्कुल छूट गई।

आंखोंकी कमजोरी कुछ रह गई है और मेरा पेट अभी थोड़ा-सा बढ़ा रह गया है, सो आशा है, घर जाकर मैं अपने-आप ठीक कर सकूंगा, इतना मैंने यहां सीख लिया है।

: ३५ :

संग्रहणी

मंजुलादेवी गोयनका



मुझे संग्रहणीकी शिकायत सात साल पहले हुई थी। कुछ दिनों तो कोई परवाह न की गई। बादमें पहले डाक्टर, फिर वैद्य और तब होमियोपैथ-का सहारा लिया गया। एक एकको कई कई बार आज-माया गया। बांकुड़ामें तो कोई डाक्टर-वैद्य नहीं बचा। चूरू और कलकत्ताके डाक्टरोंका इलाज भी हुआ। रुपए भी सात सालमें सात हजारसे कम क्या लगे होंगे।

किसी दवासे कोई स्थायी लाभ न हुआ। कुछ दिन जरा अच्छी रहकर मेरी फिर वही दशा हो जाती। वह तो, मेरा खयाल है, मैं दवा न खाती, तब भी, अपने-आप कभी-कभी अच्छी रह सकती थी। लेकिन उस समय अच्छी होनेपर मुझे, और घरवालों-को भी लगता था कि दवाने ही काम किया है। पर आज मैं समझती हूं कि मैंने और कुछ न करके सिर्फ दवा ही छोड़ दी होती, तो भी

जितनी अच्छी रही, उससे ज्यादा ही अच्छी रहती। पर तब तो मनमें यह वहम 'बड़ा' हुआ था कि दवाके बिना रोग नहीं जाता। लेकिन फल उलटा ही हुआ। दवा करती गई और उसके फलस्वरूप एक-एक नया रोग मुझे पकड़ता गया। मैं अब समझती हूं कि दूसरे सब रोग, तेज दवाओंके परिणामस्वरूप पैदा हुए थे। बढ़ते-बढ़ते मेरे रोगोंकी तादाद पूरी एक दर्जन हो गई, जिनमें मुख्य थे—सिर दर्द, आंखोंमें दाह, पांवोंमें खिचावट तथा जलन, पेटमें दर्द, नाभिके पास पत्थर-सा कड़ापन और बुरी तरह धड़कन, भयंकर टांसिल, मासिककी खराबी।

मैं रोगोंसे तंग आगई,। वजन डेढ़ मनसे घटकर एक मन एक सेर चार छटांक रह गया। चलने-फिरनेकी शक्ति जाती रही। अपनी युवा अवस्थामें ही मैं बूढ़ी-सी हो गई और जहां मुझे अपने बड़े-बूढ़ोंकी सेवा करनी चाहिए थी, वहां मैं उनसे सेवा कराने लगी। खुराकमें पावभर मट्ठातक हजम न होता था। तब मेरे पीतसरा श्री मोहनलालजी गोयनका ने, मुझे प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र जसीडीह जानेकी सलाह दी।

मैं जसीडीह पहुंची। यहांके चिकित्सक मेरी दुर्बलता देखकर द्विविधामें पड़ गए। मेरे पति पहले आकर उन्हें मेरी हालत सुना गए थे और यहां आनेकी इजाजत ले गए थे। लेकिन चिकित्सक महोदयको मेरी हालत इतनी खराब होने का पता होता तो शायद वह इन्कार ही करते, जैसा कि शुरू-शुरूमें उनका रुख देखकर मुझे लगता था। कहने लगे, इसकी चिकित्सा कैसे होगी? यह तो इतनी दुबली है कि इससे अधिक दुबली करनेकी अब गुंजाइश नहीं रह गई है। रसाहार कराने पर और दुबली होगी फिर मट्ठा न पचे तो क्या होगा?

मेरे पतिने बीचमें ही पूछा कि यह कितने दिनोंमें अच्छी हो सकती है ?

"तुम अच्छी होनेकी पूछते हो, मैं सोचता हूं, यह मर तो नहीं जायगी ! तुम अगर कहो कि मरे तो मरने दीजिए, आप उपचार कीजिए, तब तो हम इसे लेंगे, वरना नहीं ।"

मेरे पति ने कहा, "यह इतने-इतने रोगोंसे परेशान है, अभी ही मरनेसे क्या कम है । अपनी ओरसे तो आप अच्छी करनेकी ही कोशिश करेंगे, फिर जो होना होगा देखा जायगा ।"

मुझसे पतिने पूछा तो मैंने कहा, "इनकी मरजी से चलना चाहिए । जब आ ही गए हैं तो अब लौटकर कहां जायंगे और यहां सबसे हारकर ही तो आये हैं। इस जीनेसे तो मेरा मरना ही भला है ।"

पहले तो एक-दो दिन रसाहार कराकर देखनेका निश्चय हुआ । उस समय जसीडीहमें तरबूज खूब आते थे। वैसे तो तरबूजका रस बादी माना जाता है, लेकिन इन दिनों यहां तरबूजके रसकी ही प्रधानता थी और उसका प्रयोग करके जांच की जा रही थी कि बादीकी बात कोरा वहम है या सचमुच इसमें कोई तथ्य है । मुझे भी अधिकतर तरबूजका ही रस दिया गया। दिनभरमें डेढ़ सेरके लगभग। कभी-कभी मौसंबीका रस भी देते थे। एनिमा तो रस शुरू होनेके बाद रोज दिया ही जाता था। मेरे पेटसे मटियाले रंगका निहायत बदबूदार मल निकलना शुरू हुआ। साथ ही आंव भी आते रहे। समझा गया था कि संग्रहणी-की दशामें पेटमें ज्यादा मल तो न होना चाहिए —क्योंकि जब पेटमें कुछ रुकता ही नहीं तो मल कहां से होगा—लेकिन यह खयाल गलत निकला। चौबीस दिन लगातार रसाहार चला और बराबर

पुराना मल निकलता रहा। मेरा वजन एक मनसे घटकर चौंतीस सेर होगया। लेकिन स्फूर्ति बढ़ती गई। मेरी स्फूर्ति देखकर चिकित्सकका उत्साह भी बढ़ता गया और वह रसाहार बढ़ाते गए। मुझे कभी-कभी दस्त आ जाते थे। लेकिन मेरे रोगके अन्य सब लक्षण खत्म हो गये थे। शरीरके दुबला दीखनेके सिवा इन दिनों और सब तरहसे मैं स्वस्थ थी।

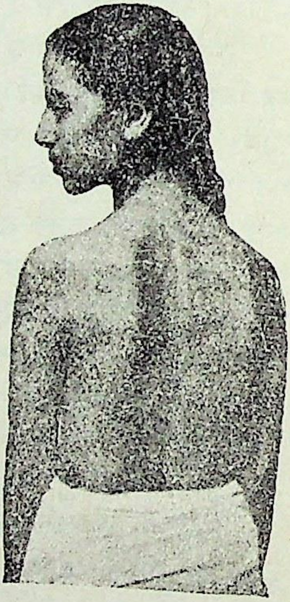
रसाहार छूटनेपर मुझे मट्ठा दिया गया। एक-दो दिन तो वह पचा नहीं, निकल गया। इसपर चिकित्सकको कुछ चिंता हुई, क्योंकि मट्ठा प्रायः रोगियोंको मल बांधनेके लिए दिया जाता है। अब मुझे दही-भात और भापसे पकाया हुआ कच्चा केला दिया गया। पहले आधी छटांकसे शुरू करके एक पाव तक चावल और इसके साथ आधा सेरसे शुरू करके दो सेरतक दही चला। केले चार-पांचतक दिये जाते। यह खुराक मुझे पची। दस्त दिनमें दो-तीन ही लगते। फिर चालीस दिनतक, बढ़ाकर, पांच सेर दही का—चार सेर दहीमें एक सेर पानी मिलाकर, दिया जाने लगा। इतना पचता गया और मेरा वजन चौंतीस सेर से एक मन पांच सेर होगया। रोज मैं छः-सात मील घूमने भी लगी।

दही शुरू करनेके पहले एक बड़ा उभार आया। उसमें मेरी बुरी गति हो गई। मालूम होता था कि अबतकका सब किया-कराया चौपट हुआ। मेरा एक ओरका टांसिल सूज गया। बोलना भारी पड़ने लगा। यहांतक कि पानी घोंटना भी मुश्किल हो गया। रस भी गलेके नीचे बड़ी कठिनाईसे उतर पाता। यह हाल सात-आठ दिन चला। लेकिन यह उभार मेरा एक तरफ-का टांसिल लेकर गया! दहीकी खुराकके बाद ऐसा ही एक उभार और आया। इस बार मैं निश्चित थी, क्योंकि पहले उभारका सुप-

रिणाम मैं देख चुकी थी। यह उभार मेरा दूसरी ओरका टांसिल खत्म कर गया। उभार आनेपर तो मैं समझती थी कि कोई महान् कष्ट आया। पर निकल जानेपर मालूम हुआ कि मेरे रोगरूपी कूड़ेको वह बुहार ले गया।



उपचारसे पहले



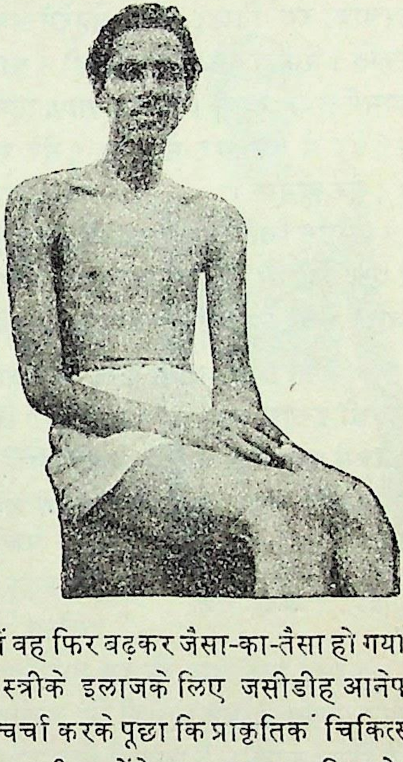
उपचारके बाद

अब मैं रोटी, तरकारी, दही-भात आदि खाने लगी हूं और यहांसे बिल्कुल नीरोग होकर जा रही हूं। मैं केंद्रमें कुल पांच महीने रही। मैंने इरादा कर लिया है कि अब मैं बीमार नहीं पड़ूंगी।

: ३६ :

नाकमें मांस
(नोज़ल पालिया)

सत्यनारायण गोयनका



अनेक वर्षोंसे मेरे नाकमें मांस बढ़ा हुआ था। उससे हमेशा नाक रुका-रुका-सा रहता। डाक्टरोंने इस रोगका नाम 'नोजल-पालिया' रखा। डाक्टरोंके कहनेसे इसका आपरेशन कराया, पर कुछ ही दिनोंमें वह फिर बढ़कर जैसा-का-तैसा हो गया।

पिछले दिनों अपनी स्त्रीके इलाजके लिए जसीडीह आनेपर मैंने चिकित्सकसे इसकी चर्चा करके पूछा कि प्राकृतिक चिकित्सा से यह मांस जा सकता है क्या? उन्होंने कहा, जाना चाहिए तो।

मैं प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रमें १२ दिन सिर्फ नींबू-पानीपर और १० दिन तरबूज आदिके रसपर रहा। एनिमा, कटिस्नान, मिट्टीकी पट्टी, भापनहान, धूपनहान वगैरह तो चलते ही रहे। फिर ४० दिन दूधकल्प चला। दूध रोज ८ सेरतक पहुंचा। इस बीच नाकका मांस बिल्कुल चला गया। दूधकल्प समाप्त

होनेपर मैं रोटी तरकारी, मक्खन और दूध-फल लेने लगा। मेरी त्वचाका रंग निखर गया, चेहरेमें चमक आ गई और शरीरमें स्फूर्ति। मैं यहां बैठ तो सकता ही न था। दिनभर किसी-न-किसी काममें लगा रहता। पेट खूब साफ रहने लगा। मेरा वजन १ मन १९ सेर से रसाहार में १ मन ९ सेर रह गया, वह फिर १ मन १९ सेर होगया।

मैं इस चिकित्साका हृदयसे कृतज्ञ हूं जिसके कारण मेरी स्त्रीने एक प्रकारसे नया जीवन पाया और मेरा वह रोग खो दिया जिसके लिए मैं डाक्टरीसे निराश हो चुका था।

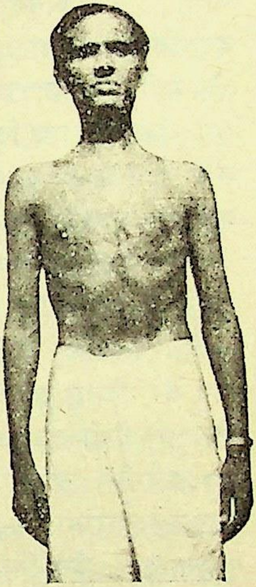
(अक्सर कहा जाता है कि जहां आपरेशन की जरूरत है वहां कुदरती इलाज क्या कर सकता है? और साधारण व्यक्ति इस दलीलसे कायल हो जाते हैं। पाठक देखेंगे कि इस केसमें आपरेशन व्यर्थ होनेके बाद कुदरती इलाजने अपना चमत्कार दिखाया।

—संपादक)

: ३७ :

दमा

प्रेमरतन डागा



मुझे दमेकी तकलीफ चार सालसे थी। इतने दिन कभी डाक्टरी औरकभी होमियोपैथी इलाज कराता रहा। कभी-कभी आयुर्वेदकी दवा भी ले लेता।

कुछ दिनों एक यंत्र भी पहना, यद्यपि उसपर मेरा विश्वास न था। लेकिन सुना कि यंत्र देनेवालेको पुरखोंका वरदान है कि जिसे दोगे उसका दमा चला जायगा। दूसरे, वह कोई कीमत भी न लेता था, इसलिए विश्वास हो गया। पर सबके साथ वह भी व्यर्थ सिद्ध हुआ।

डाक्टरोंके मुंह से सुनकर भी कि एलोपैथीमें दमेका कोई 'फारमूला' (नुस्खा) अभीतक नहीं निकला है—खोज जारी है, मैं डाक्टर बदलता रहा, दवा बदलता रहा।

एक विशेष दवाकी दो चम्मच लेनेसे ५-६ घंटे कुछ आराम-सा लगता था। लेते ही कफ निकलना शुरू होता और एक प्रकारकी शिथिलता आती।

लगातार अढ़ाई सालतक रातको मौतसे लड़ता और दिनमें दुकानके काम करता। इसी बीच एक दूसरे डाक्टरने एक मिक्श्चर

बनाकर दिया कि इसकी दो-तीन शीशी पी लो और पुरी चले जाओ, वहां रहने से आराम रहेगा। कुदरतका खेल कहना चाहिए, ४-५ दिनमें ही मालूम हुआ कि वहांकी आबहवासे ही दमा बिल्कुल जाता रहा। वहां मैं कुछ दिनों रहकर लौटा। दो-तीन महीने अच्छे रहकर फिर वही हालत हो गई।

अकस्मात् एक दिन मनमें आया कि कश्मीरका हवा-पानी लोग बहुत अच्छा बतलाते हैं, क्यों न एक बार वहां घूम आऊं? वहाँ जाकर एक महीने रहा। पर कोई विशेष लाभ न हुआ।

एक रिश्तेदारने डाक्टर विधानचंद्र रायको (मुख्यमंत्री--बंगाल) दिखलानेकी सलाह दी। मैंने कहा, इतने बड़े डाक्टरके लिए मेरे पास पैसे कहाँ हैं? वह बोले कि डाक्टर महाशय सुबह आध घंटे बिना कुछ लिये देखते हैं। उनके यहां जानेवालों-की सूची देखी तो मालूम हुआ कि मेरी बारी कहीं महीनेभर बाद आवेगी! तब मेरे रिश्तेदारने पच्चीस रुपये खर्च करके मेरा नंबर ऊपर कराया। २-३ दिन बाद ही मैं उनके यहां पहुंच गया। मालूम हुआ, जैसे विधातासे भेंट हो गई! उन्होंने दवा और इंजेक्शन लिख दिये। पूरा कोर्स पच्चीस दिनोंका था। पर कुछ ही दिनोंमें उस दवासे मेरा रोग उल्टा बढ़ गया!

अंतमें, मैं प्राकृतिक चिकित्सा कराने जसीडीह पहुंचा। वहां आते ही मेरी दवाकी शीशी आफिसमें जमा करा ली गई। मैंने कहा, मुझे तो रोज रातको दौरा आता है और इसी दवासे कुछ राहत मिलती है। मुझे विश्वास दिलाया गया कि दौरा नहीं आयेगा, घबराओ मत। मेरे पास एक दवा और थी, जिसका सिलोन रेडियोसे जबर्दस्त विज्ञापन किया जाता है। इसका मैंने यहांवालों-से जिक्र नहीं किया और वक्त-जरूरतके लिए अपने पास रख ली

थी। पर उसके लेनेकी कभी नौबत ही न आई। दो-तीन दिनमें दमेमें सुधार होकर खांसी, जुकाम, सिरदर्द वगैरहका उभार हुआ। पर एक-एक करके सब लक्षण विदा होते गये।

मैं ३८ दिन रसपर रहा और ४० दिन दूधपर। अब अमृतान्न ले रहा हूं। मेरा विश्वास है कि मेरे सब रोग करीब-करीब चले गये हैं। अगर कहीं कोई छींट बाकी है तो वह इसी भोजन-सुधारसे साफ हो जायगी।

मेरे शरीरमें काफी चुस्ती और फुर्ती आ गई है। त्वचाका काला रंग बदलकर उसमें सुर्खी आ गई है, चेहरेपर आभा, जैसी चार वर्षोंमें कभी न आई थी। आँखोंमें रहनेवाली सुर्खी चली गई। मेरा वजन रसाहारमें १ मन १८॥ सेरसे घटकर १ मन ९ सेर रह गया था, वह फिर १ मन १८ सेर हो गया है।

मैं कई सालोंसे दिनमें तीन-चार बार चाय पीता था। पान और जर्देका तो कोई हिसाब ही न था। वह सब यहां आते ही छोड़ना पड़ा। यहां मैंने जान पाया कि ये वस्तुएं रोगोत्पादक और रोग-वृद्धिकारक हैं। पहले किसी चिकित्सकने मुझे यह नहीं बताया था। डाक्टर लोग स्वयं इन चीजोंका इस्तेमाल करते हैं, इसलिए शायद उन्हें इन चीजोंकी हानिका ज्ञान नहीं होता।

: ३८ :

अफीम छूटा

गोपीकिशन पचीसिया



मेरी पत्नीकी जिंदगी बिल्कुल बेकार थी। घरका कोई काम न कर पाती। सिरमें बराबर दर्द बना रहता, पेट दुखता रहता। ऊंचा सुनने लगी। दो-दो चार-चार दिनतक पाखाना न होता। महीनेमें अट्ठाइस दिन यही दशा रहती। किसीने बता दिया कि अफीम खानेसे शरीरमें कुछ ताकत आयेगी तो अफीम खाने लगी। बड़े मूंगके दानेके बराबर छः गोलियां रोज खाती। कभी इतना न उगता तो तीन गोलियां और देनी पड़तीं।

खुराकके नाते सारे दिनमें दो रसगुल्ले, दो पापड़, दो मौसंबीका रस और दो बार चाय लेती। कभी-कभी थोड़ा छेना।

दवा जितनी की जा सकती थी की गई, पर कोई फायदा न हुआ। प्राकृतिक चिकित्सा करानेके खयालसे जसीडीहसे पूछा गया तो जवाब मिला कि अफीम खानेवालेको भरती नहीं किया जाता। लेकिन मेरी पत्नीके यह स्वीकार करनेपर कि मैं अफीम छोड़ दूंगी, लेकिन चिकित्सककी देखरेख में—अपने घर छोड़ना तो मेरे लिए कठिन ही है इस शर्तपर चिकित्सक राजी हुए।

पहले दिन तो चिकित्सा स्त्रीसे छिपाकर अफीमकी मात्रा कम करते जानेकी तजवीज की, लेकिन दूसरे दिन ही चिकित्सकने अपनी बातोंसे परमेश्वरीदेवीको यकायक अफीम छोड़नेको राजी कर लिया।

पहली खुराक बंद करते ही स्त्रीकी, जो दशा हुई वह देखकर हम सब घबरा गये। हाथ-पैर सूने हो गये, उल्टियां होने लगीं, एक घूंटभर पानी पचना भी मुश्किल होगया, दो-चार दस्त लग गये। रातको स्त्रीके हाथ-पैरोंमें जिस तरह 'बाइंटे' (ऐंठन) आने लगे वह देखकर सब हैरान-परेशान हो गये, लगा, कि वह चली। एकाध व्यक्तियोंने उस वक्त अफीम देनेकी सलाह दी। लेकिन श्री बजरंगलालजी जाजू और श्री लेखरामजी पेड़ीवालने हम सबको धीरज बंधाया और अफीम नहीं देने दी। सुबह चिकित्सक आये तो स्त्रीसे पूछा कि कहो तो थोड़ा अफीम दिया जाय। उसने इन्कार किया। फिर चिकित्सक ने चायके लिए पूछा तो उसके लिए भी उसने अनिच्छा प्रकट की। उत्तम-मध्यम यह हालत एक हफ्ते चलती रही। लेकिन हाथ-पैर में ऐंठनवाली हालत सिर्फ पहले दिन ही हुई थी। धीरे-धीरे पानी पचने लगा। फिर एनिमा दिया जाने लगा। कटिस्नान चला। दोनों वक्त मिट्टीकी पट्टी, हफ्तेमें एक भाप-नहान। खुराकमें फलोंका रस।

धीरे-धीरे स्त्रीकी हालत सुधरती गई। तीन पाव दूध, कुछ फल और दो छटांक शहद और थोड़ी तरकारी खाने लगी। वह दो-तीन मीलका चक्कर लगाने लगी। घरका भी कुछ काम करने लगी। दिनभरमें एक सेर पानी पीने लगी जो पहले बिल्कुल नहीं पीती थी।

पहले स्त्री स्वयं और हम सब, उसकी जिंदगीसे निराश थे। लेकिन अब कोई निराशा नहीं है। उस दिन कलकत्तामें आपसे मिलने स्त्री गई ही थी। उपचारके पहले जब आपके यहां दिखाने जानेपर सीढ़ियोंपर चढ़ी थी तो जान पड़ता था जान निकल जायगी और इस बार तो वह हम लोगोंके साथ खुशी-खुशी उन सीढ़ियोंपर चढ़ गई। वजन भी तीन सेर बढ़ गया है।

सिर्फ मेरी स्त्री ही अच्छी नहीं हुई। हमारे घरके सब लोगोंके स्वास्थ्यमें फर्क पड़ गया। और स्वास्थ्यमें क्यों कहूं, हम लोगों की जीवन-पद्धतिमें एक तरहका परिवर्तन आगया। मैं स्वयं और मेरे बच्चे एक दिन भूखे नहीं रह सकते थे, सो दस-पंद्रह दिन फलोंके रसपर रह जाना तो मामली बात होगई हम सबके लिए।

: ३९ :

मासिककी खराबी और कब्ज

उर्मिलादेवी



मेरे रोगोंका प्रारंभ मासिक की गड़बड़ीसे हुआ। धीरे-धीरे कब्ज रहने लगा। भूख बंद हुई, पेट और हाथ-पांवोंमें जलन, आंखोंमें कभी-कभी पानी आने लगा, शरीरमें बहुत भारीपन मालूम होता और सिरमें दर्द। शौच कई-कई दिनपर होता और सख्त। मासिकके हफ्तेभर पहले ओटी (पेड़ू) में काफी दर्द होता था।

डाक्टर-वैद्योंकी दवासे कोई फायदा न दीख पड़ा। कई आदमियोंसे प्राकृतिक चिकित्साकी प्रशंसा सुनकर मैं यहां १ जून सन् '५५ को आई और २३ जुलाईतक रही।

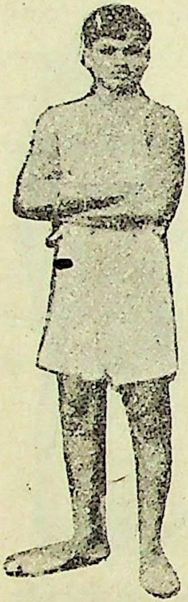
सोकर उठते ही आध सेर-तीन पाव ठंडा पानी पीकर शौच जाती। सुबह-शाम कटिस्नान, स्वच्छ हवामें दो-तीन मील घूमती। लौटकर मिट्टीकी पट्टी और एनिमा। २१ दिन रसाहार किया, फिर दुग्धकल्प और उसके बाद अमृतान्न। कब्ज, पेट, हाथ, पैरकी जलन, सिरका दर्द और आंखोंसे पानी आना खत्म हो गया। मासिक बिल्कुल ठीक हो गया।

मन प्रसन्न रहने लगा। मेरे दांत भी काफी चमकदार हो गये। त्वचामें सुरखी आ गई।

: ४० :

दो दिनमें ज्वरसे मुक्ति

रघुनाथ गुटगुटिया



२६-६-५४ की, झाझाकी बात है। उस दिन खूब जोरोंकी वर्षा हो रही थी। उसमें नहानेको मेरा जी ललचाया। देखा-देखी मेरे दो छोटे भाई-बहन भी नहाने लगे। हम लोग पूरे घंटे भर नहाए होंगे। कुछ मिनटों बाद ही मुझे खूब छींकें आईं, और ठंड-सी लगने लगी। मेरी नाक बहने लगी। पर मैंने साश्चर्य देखा कि मेरे भाई-बहनोंको न छींकें आईं, न उनकी नाक ही बही। यह क्या ? हम तीनों साथ नहाए, मुझे छींकें आ रही हैं, ठंड लग रही है और इन दोनों छोटोंको कुछ भी न हुआ ? लेकिन मुझे इसका कोई हल न मिला।

उसी दिन मैं जसीडीह आया। वहां प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र में मेरे पिताजीकी लकवेकी बीमारीका इलाज हो रहा था। वहां मेरे पिताजीने मुझे कटिस्नान, मिट्टीकी पट्टी वगैरह लेनेको बाध्य किया। रातको मैं बिना कुछ ओढ़े बाहर सोया। मांने मना भी किया था। २७ को सुबह उठनेपर शरीरमें बुखार मालूम हुआ और काफी दर्द भी, जो शाम तक बना रहा।

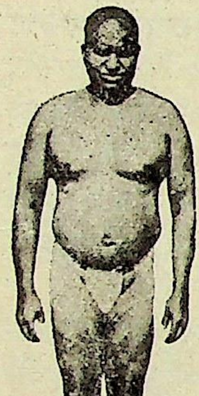
सुबह दो बार शौच होनेपर भी मुझे एनिमा दिया गया। पेटसे मल निकला। गरम पानी पिलाकर कै कराई गई। खब पित्त

गिरे। भाप-नहान दिया गया, जिससे खूब पसीना आया। पूरे दिन मैं सिर्फ पानी पर ही रहा। शाम को ज्वर १०४ डिग्री हो गया। चिकित्सकने मेरे सारे शरीरको ठंडे पानीसे पोंछवाया। रातको नींद ठीक आ गई। दूसरे दिन भी मुझे एनिमा दिया गया और समस्नान। आज दिनभर रसपर रहा। शामको एक मीलकी दौड़ लगाई। अब मैं बिल्कुल अच्छा था। पता नहीं, इतने हीके लिए एलोपैथ डाक्टर मुझे कितने दिन खाटपर सुलाता। लोग कहते हैं, प्राकृतिक चिकित्सामें देर लगती है, पर मैं तो जादूकी तरह अच्छा हुआ।

अच्छे होनेपर चिकित्सकके सामने मैंने अपनी यह शंका पेश की कि हम तीन भाई, एक ही समय, वर्षामें, घंटेभर नहाए, दो-को कुछ नहीं हुआ, मुझे ही क्यों जुकाम हुआ, और क्यों बुखार आया? उन्होंने उत्तर दिया, तुम्हारे शरीरमें कुछ विकार था और निकलने की ओर था, ठंड लगकर शरीरकी जीवनी-शक्ति जागृत होकर अपना काम कर गई। तुम्हारे भाइयोंके शरीरमें या तो विकार था नहीं, या निकलनेकी दशामें नहीं था। सर्दी और जुकाम तो अंदरके विकारको बाहर करनेके लिए ही आते हैं। और इसी तरह ज्वर भी। तुम्हारे अंदर विकार बहुत थोड़ा था, इसलिए तुम दो दिनोंमें चंगे होगए, ज्यादा होता तो कई दिन लगते। उनकी बातसे मेरी शंका दूर हो गई।

गठिया

दुखमोचनसिंह



दस साल पहले कमरके दाहिने भाग-में जोड़पर गठिया का दर्द शुरू हुआ था। चार सालमें बढ़ते-बढ़ते पूरी कमरमें फैल गया। दिन-दिन बढ़ता गया और चौबीसों घंटे रहने लगा।

तभीसे घोर कब्ज हुआ। इसके कारण पीड़ा और बढ़ी। शरीर भारस्वरूप लगने लगा। मैं कुश्ती लड़ता और खूब कसरत करता। सब बंद हो गया। भूख भी बंद हो चली। अपनी खेतीका काम करनेमें असमर्थ हो गया।

लोगोंने दवा करानेकी सलाह दी। मेरा अंग्रेजी दवापर बहुत कम विश्वास होनेके कारण मित्रों और कुटुंबियोंकी रायसे मैं बनारस जाकर वहांके नामी वैद्यशास्त्रीकी दवा कराने लगा। फंकिया और चूरन चले। पर परिणाम उल्टा ही हुआ। जो थोड़ी भूख लगती थी, वह भी गायब हो गई। बचे हुए चूरनको नालीके हवाले करके मित्रोंके बहुत अनुरोधके कारण मैं पटनेके एक बड़े डाक्टरके यहां पहुंचा। एक्सरे हुआ, थूक, खून, पेशाब और पाखानेकी जांच हुई। रिपोर्ट देखकर डाक्टरने फतवा दिया, तुम्हारा बायां अंग सूख रहा है। मुझे घबराहट तो हुई, पर उनकी

दवाके जालमें न फँसा।

तब बीहपुर थानेके एक प्रसिद्ध डाक्टरका इलाज करानेकी ठहरी। आठ इंजेक्शन लगे। लेकिन सब बेकार हुए। अब मैं निराश होकर घर बैठ गया।

उसी बीच अपने एक पड़ोसीसे प्राकृतिक चिकित्साकी प्रशंसा सुनकर मैं ४-२-५५ को जसीडीह पहुंचा। वहां दूर-दूरके कठिन-से-कठिन रोगोंसे पीड़ित लोगोंके हाल सुनकर मुझे पूरी तसल्ली हो गई कि यहां मुझे जरूर आराम हो जायगा। खासकर मेरेही थानेके श्री बद्री मिश्र को एक महीनेमें दमा, पेचिश, मलेरिया, रक्तचाप आदिमें पूरा फायदा हुआ सुनकर मुझे आराम होनेका पक्का विश्वास हो गया।

गलत आहार-विहार आदिके फलस्वरूप शरीरमें एकत्रित दोषको मेरे रोगका कारण कहा गया। प्रायः सब मरीजोंको एक ही कारण बतलाते पाया मैंने।

मेरी लंबाई साढ़े पांच फुट और वजन दो मन पांच सेर था। मुझसे कहा गया कि चालीस सालकी उम्रमें, इतनी लंबाईमें, इतना वजन, पेटका इस तरह बढ़ जाना और बेडौलपना शरीरमें विकार इकट्ठा होनेका ही परिणाम है।

पहले ८ दिन दूध-फल चला। दिनमें दो बार कटिस्नान १५-१५ मिनटका, मिट्टीकी पट्टी आध घंटे, ३०-३५ मिनटका धूपस्नान, पूरा स्नान ठंडे पानीका। ठंड लग जाने और दर्द बढ़ जानेके डरसे मैं चार महीनोंसे घरपर गरम पानीसे ही नहाता था और दो-चार मिनटमें ही नहानेका काम निपटाता कि कहीं हवाकी फटकार न लग जाय। यहां इस माघके महीनेमें ठंडे पानी-से नहाने को कहे जानेपर पहले तो मेरा जी डरा। पर असलियत

समझ लेनेपर सारा भय जाता रहा। ८ दिन उपवास और फिर १५ दिन रसाहारपर रहा। रसाहार में टमाटर और संतरेका रस दिनमें चार बार लेता। उपवासमें इच्छाभर जल, नींबूका रस मिलाकर, पीता। उपवासमें तीन दिन एनिमा लिया। मल कम निकला। लेकिन फिर रोज एनिमासे पुराना और बदबूदार मल काफी मिकदारमें निकलने लगा। अपनेआप भी कभी-कभी दस्त हो जाते। दो-चार दस्त तो प्रायः रोज ही होते। अपने पेटसे इतना मल निकलते देखकर मुझे आश्चर्य होता। उपवास और रसाहारके दिनोंमें मुंहसे बड़ी बदबू निकलती थी। बीचमें एक दिन थोड़ा ज्वर भी प्रतीत हुआ था, जिसे अच्छा लक्षण कहा गया।

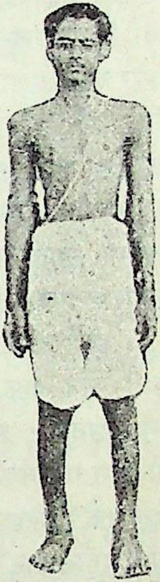
यहां मैंने समझा कि अपने पहलवानीके दिनोंमें मैं जो रोज आठ-दस सेर दूध पीता, रबड़ी, मलाई खाता और शरीर पर मांस चढ़ा देखकर खुश होता, वह मेरी कितनी बड़ी बेवकूफी थी। लेकिन अब दिनों-दिन वही मांस खोकर अच्छा और खुश हो रहा था। और सोचता, 'बीती ताहि बिसारिके आगेकी सुधि लेहु।' यह भी समझा कि रोगके बाहरसे आकर लग जाने की कल्पना बिल्कुल गलत है, रोग तो अपनी आहार-बिहार की भूलों-का ही नतीजा है। साथ ही यह भी समझ गया कि आजकी डाक्टरी निरी ठगी है।

मैं यहां के रमणीय दृश्य और स्वच्छ जल-वायुको भी भूल नहीं सकता, जिनसे अच्छा होनेमें मुझे कम मदद नहीं मिली।

: ४२ :

कब्ज, आंव, सिरदर्द

कांतिचंद्र दारूका



मुझे सात-आठ सालसे कब्ज, आंव, सिर-दर्द आदि रोग सता रहे थे। वजन १॥ऽ से गिर कर १।ऽ२ हो गया था।

रोगोंने मुझमें आलस्य ला दिया, मनकी प्रसन्नता हर ली। खेलकूदका सब शौक जाता रहा, मैं साहसहीन हो गया। स्वभावमें चिड़-चिड़ापन आ गया, मैं बात-बातमें उत्तेजित हो जाता। मन हमेशा चंचल रहने लगा। स्नायु दौर्बल्यके चंगुलमें मैं पूरी तरह फंस गया। हृदय धड़कने लगा, स्मरणशक्ति क्षीण हो गई, आंखें तो इतनी कमजोर होगई कि ४ पावर का चश्मा लगने लगा। सुबह सात बजेतक खाटसे उठनेका जी नहीं चाहता था। सारा बदन टूटता रहता, हाथ-पैरोंमें हमेशा दर्द बना रहता। खाना खाने पर पेट फूल जाता। थोड़ा खाकर भी लगता, पेट पूरा भर गया है। मैंने इन सबके लिए एलोपैथी, होमियोपैथी, कविराजी और घरेलू दवाइयां इतनी खाई होंगी कि मेरा पेट एक छोटी मोटी डिस्पेंसरी हो गया। बीचमें दो-चार बार दमा भी आया। 'स्वामीन' के काफी इंजेक्शन लेनेपर दमा दबा, लेकिन उसके उत्तराधिकारीके रूपमें आंव आ गया। फिर डाक्टरोंके पास दौड़ा। दवा दे दी गईं। पर किसी डाक्टरने कभी मुझे भोजन-

सुधारकी बात न कही। मैं पूछता तो कहते, सबकुछ खा सकते हो। मैं मनचाहा खाना खाता। दिन में ३-४ बार दवा खाता। इंजेक्शन मेरे लिए दाल-रोटीकी तरह हो गये थे। कंपाउंडर आता, दे जाता और रुपये ले जाता। आंवके लिए मैंने एमिटीनके सैंकड़ों इंजेक्शन लिये और 'एंटारोवायाफार्म' की गोलियोंकी तो गिनती ही नहीं। लेकिन आंव गये नहीं। डाक्टरोंने इसे पैतृक रोग ठहरा कर फतवा दिया कि यह जड़से नहीं जायगा! दवा लेते रहनेसे दबा रहेगा; जाता यह मौतके साथ ही है! मैं सोचता, चलो, पैतृक संपत्तिमें एक ऐसी चीज तो मिली, जो मौत तक साथ देगी!

इसी बीच सन् १९५२ में प्लूरसीका दौरा हुआ। एक्सरे हुआ, खून, कफ, पेशाब, पाखाना सबकी जांच हुई। केवल एक आपरेशनकी कसर रह गई! दो-चार डाक्टरोंने मिलकर दो-तीन महीनेके लिए मुझे शय्याशायी बना दिया और रोज कैल-शियमके इंजेक्शन और दो-तीन तरहकी खानेकी दवा देने लगे। पांच महीनेतक पूरे एक सौ-पचास इंजेक्शन लेनेके बाद प्लूरसी-से मुझे निजात मिली।

इसी समय मैंने प्राकृतिक चिकित्सा-संबंधी कई पुस्तकें मंगाकर पढ़ीं। उनके अनुसार मैंने अपने भोजनमें बहुत सुधार किया। लेकिन सफरमें जानेपर सब गुड़ गोबर हो जाता। कुछ दिन भोजन-सुधारसे अच्छा रहता, फिर वही मिर्च-मसाले खाने लगता और स्वास्थ्य खराब हो जाता।

सन् १९५५ के सितंबरमें अपनी मांके इलाज-के लिए मैं जसीडोह प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रमें आया। मैंने भी अपना इलाज शुरू कर दिया।

उपचार

पहले ४ दिन फल, दूध लिया, ४ दिन सिर्फ फल। १६ दिन रसाहार। एनिमा, कटिस्नान, मिट्टीकी पट्टी रोज चलती। रसाहारके दसवें दिन धुलाई एनिमा भी लिया। इस उपचारसे शरीर, और मनमें भी, काफी ताजगी आने लगी। एनिमासे काफी मात्रामें पुराना मल निकलता। मलमें भारी दुर्गंध रहती। पेटसे नित्य इतना मल निकलते देखकर आश्चर्य होता। दूसरेके बारेमें सुनकर विश्वास न होता था पर अपना तो नित्य आंखोंसे देखता था। मेरे पेटमें कितना मल भरा था! सवा सेर रस रोज १३ दिनतक लेता रहा। चौदहवें दिन-से भूख लगने लगी तो डेढ़ सेर रस लेने लगा। सोलहवें दिन भूख-से परेशान होनेपर सत्रहवें दिनसे दूध-पानी लेने लगा।

रसाहारमें मैं रोज तीन-साढ़े तीन मील घूम लेता था और दिनभर कुछ-न-कुछ करता ही रहता था।

यहां शुरू-शुरू कई दिनोंतक मेरे मनमें बड़ी झुंझलाहट रहती। मनके विपरीत कुछ होते ही गुस्सा आता। पर ज्यों-ज्यों अंदरूनी गंदगी कम होती गई, गुस्सा भी घटता गया। चिकित्सक मेरी बीमारियोंमें गुस्से को भी गिनते और रोज उसका हाल भी पूछते। कुछ हिदायत भी देते रहते। उनके साथ अक्सर बाहरी आदमी केंद्र देखने आते रहते। मुझे दिखाकर वह कहते, "देखिए, हमारे यहां गुस्सेका इलाज भी होता है। पहलेसे अब इनका गुस्सा बहुत घट गया है।" मैं शरमाता और नतीजा यह हुआ कि शनैः-शनैः मेरा गुस्सा अपने-आप कम होने लगा। मुझे, गुस्सेका, खुराकसे भी घना संबंध जान पड़ता है। सात्त्विक खुराक होनेसे क्रोधमें कमी होना स्वाभाविक है।

चारदिन मैं दूध-पानी मिलाकर लेता रहा। इससे एक-दो दस्त आ जाते। आंव भी आता था। फिर १६ दिनतक सिर्फ दूध लिया। कुल ५॥ सेर तक पहुंचा। लेकिन दूधमें दस्त मुझे हमेशा ८-९ आते रहे। पर जब मेरे दस्त बंद न हुए तो कुछ खुराकें दूधकी और कुछ दहीकी दी जाने लगीं। इससे सुबह एक दस्त बंध कर आने लगा और दिनमें एक-दो पतले। इसके बाद खुराकमें रोटी-तरकारी जोड़ दी गई। मैं अपनी नासमझीकी वजहसे मन-ही-मन कभी-कभी चिकित्सकपर झुंझलाता कि वह जो चीज बादको करते हैं वह पहले क्यों नहीं करते? लेकिन अब मैं सोचता हूं कि वह जो करते वह कुछ समझकर ही करते थे, परिणाम उनका सोचा तत्काल नहीं होता, तो इसमें उनका कोई कसूर न था।

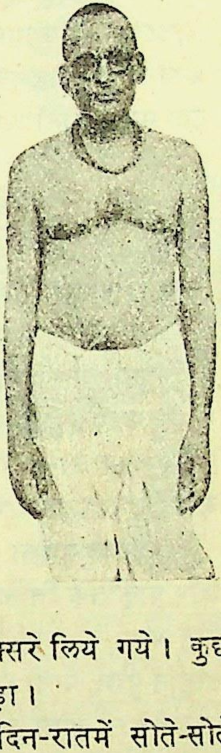
मैं यहां ५-६ मील घूमता, आध घंटा कसरत करता और आध घंटे चक्की चलाता। इससे मेरा शरीर गठित हो चला। मेरा वजन अब १५४ है।

प्राकृतिक चिकित्साकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है। डाक्टर-वैद्योंसे निराश हुए रोगियोंके त्राणका यह एक-मात्र सहारा है। यदि बीमार पड़ते ही हम इसे अपना लें तो बहुत खर्च और बड़े झंझटोंसे बच सकते हैं।

प्राकृतिक चिकित्साका सही तात्पर्य यहां मैंने यह समझा है कि हम हमेशा अपना रहन-सहन ठीक रखें। यह न रख सकें तो रोग अनिवार्य है।

: ४३ :

हड्डीका दर्द, गठिया, अंडकोष-वृद्धि



बंशीधर लड़ीवाल

मेरी उम्र ५८ सालकी हो गई है। मैं अपनी और अपने लड़कोंकी बीमारी-के डाक्टरी इलाजमें हजारों-हजार रुपये और बरसोंक बरस बरबाद करके संयोगसे अब प्राकृतिक चिकित्साका अनुयायी हुआ हूं।

सन् '५० में मेरे एक लड़केकी एक हड्डीमें पीड़ा हुई। उस जयपुर मेडिकल कालेजके मानसिंह अस्पतालमें भरती कराया। दो महीनेके इलाज में बीसियों एक्सरे लिये गये। कुछ न बना। ज्यों-का-त्यों घर वापस लाना पड़ा।

सन् ५१ में मेरे दूसरे लड़केको एक दिन-रातमें सोते-सोते जननेंद्रियमें भयंकर पीड़ा हुई। बड़े डाक्टर आये। अस्पताल ले गये। १५ दिनमें तरह-तरहकी जांचके और एक्सरेके बाद पथरी साबित हुई। एक बड़ा आपरेशन हुआ, पर कुछ न निकला। घावको भरनेमें दो महीने लग गए। जितनी बीमारी लेकर वह अस्पताल गया था, उतनी वापस लेकर लौटा।

इसी साल मुझे गठियाने सताया। यों मुझे यह रोग सन् ४७ से

था। लेकिन अब यह अपनी पूरी बाढ़पर पहुंच गया। महायोगराज गुग्गुल, तरह-तरहके अवलेह, चूर्ण, महानारायण तेल और डाक्टरोंके मिक्शचर, ऐंटी फ्लोजस्टीन, बेलेडोना और अनेक प्रकारके लेप, पहलवानोंकी मालिश, सेंक, वगैरह करा-कराकर मैं ऊब गया। दोनों लड़कोंकी चिकित्सामें भी देख चुका था कि दवा-से रोग नहीं जाते।

सन् ३० में मुझे संग्रहणी हो गई थी। सैकड़ों दस्त लगते थे। मट्ठेपर रहकर मेरी जान बची थी, लेकिन तबसे चार दस्त रोज लगते थे। बहुत दवाइयां कीं, लेकिन २०-२५ वर्ष जारी रहे।

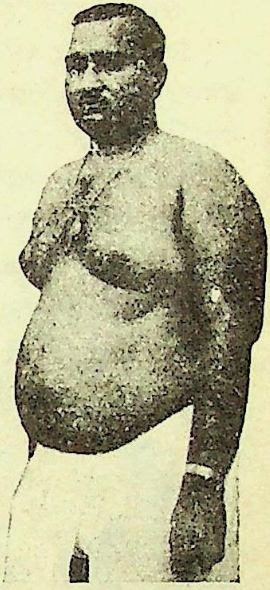
मुझे अंडकोष की शिकायत थी। सन् ५० में 'रोगोंकी अचूक चिकित्सा' पुस्तक मुझे प्राप्त हुई। उसके अनुसार भोजनादिमें सुधार करनेसे एक वर्षके अंदर मेरी गठिया, दिनमें चार-पांच पतले दस्त आना और अंडकोषकी पीड़ा वगैरह सब जाते रहे। बायें अंडकोषका भार तो उतना ही रहा, पर पीड़ा फिर नहीं हुई।

मुझे बहुमूत्रका रोग भी था। उसकी चिकित्साके खयालसे और प्राकृतिक चिकित्सा शिक्षण-शिविरमें शामिल होने मैं जसी-डीह आया था। यहां मैंने चिकित्सकसे अपनी बीमारी बतलाई तो उन्होंने पूछा, पानी तुम कितना पीते हो ? मैंने कहा, जितनी बार पेशाब करने जाता हूं एक गिलास पानी पीकर जाता हूं, क्योंकि मैंने सुन रखा है कि पेशाबके पहले पानी पीकर जाना अच्छा है। दिन भरमें मैं ७-८ सेर पानी पीता होऊंगा और १५-२० बार पेशाब करता होऊंगा। चिकित्सकने कहा, आपको बहुमूत्रका नहीं, जला-धिक्यका रोग है, और उनकी बात सच निकली। दूसरे दिनसे मैंने पानीकी मात्रा घटाई और बहुमूत्र चला गया। इस बहुमूत्र-के लिए मैं कितना परेशान था।

: ४४ :

खांसी और दमा

केसरदेव सराफ



इस चालीस सालकी उम्रमें ही मैंने आठ साल खांसी और दमेमें बिता दिए। यही नहीं, आधी दर्जन रोग और भी लगा रखे थे, जैसे (१) बवासीर (२) हाईब्लड प्रेशर, (३) हृदयकी धड़कन, (४) दिमागमें चक्कर (५) उन्निन्द्र (६) भूखकी कमी। इन सबके कारण मैं बड़े संकट झेल रहा था। घर से दस कदम बाहर जाना भी मुश्किल था। डाक्टरवैद्यों-के इलाजमें मैंने कोई कसर नहीं रखी थी। कितनी ही तरह के इंजेक्शन मैंने लिये। नाम सबके तो याद नहीं हैं, पर उनमें से (१) लीवर एक्सट्रैक्ट, (२) पेंसिलिन, (३) कैलशियम आदि याद हैं। मेरे शरीरमें इनकी तो भरमार ही कर दी गई थी। मुझे पीनेकी भी बहुत दवाइयां दी गईं। वैद्यों और हकीमोंने भी न मालूम कितने गोली-गुटके धातु-भस्में खिलाईं।

इन सबमें ४०००) से कम रुपये बरबाद न हुए होंगे। लेकिन लाभ पैसेभर भी न हुआ। अंत में मेरे एक रिश्तेदारकी सलाह-से मैं १० दिसंबर १९५५ में प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र, जसीडीह-में अपने उपचारके लिए प्रविष्ट हुआ।

आरंभमें तीन दिन एक वक्त रोटी, एक वक्त फल, फिर-३१ दिन (१५-९-५५ से १५-१०-५५) तक संतरेका रस, रोज दस-बारह छटांक दिलाया गया। इस रसाहारके बीचमें ही मेरा दमा जाता रहा। वजन मेरा २)२ था, वह ४० पौंड जाकर १॥)२ रह गया। आगे निकला हुआ पेट बहुत-कुछ ठीक हो गया।

रसाहारके दरमियान ही मेरे बाएं पैर में एक जबरदस्त फोड़ा निकला। यह नया उपद्रव देखकर मैं घबराया। पर मुझे जब यह समझाया गया कि यह नया रोग नहीं, रोगके निकलने का कुदरतने, नया रास्ता बनाया है, तो मेरी घबराहट कुछ घटी। वही हुआ भी। उस फोड़ेसे काफी गंदगी निकली और मेरे और सब रोग एक-एक करके सरकते गये।



५-१२-५५ को मुझे खूब जोरोंका, १०४-१०५ डिग्री, ज्वर आया। तीन रोज रहा और बचे-खुचे रोगोंको, या कहूं, रोग के लक्षणोंको लेकर वह चला गया।

इन दिनों मैं ६-७ मील रोज घूमता हूं, आध घंटे आसन वगैरह करता हूं। शरीरमें खूब स्फूर्ति है। अब मैं अपनेको पूर्ण स्वस्थ कह सकता हूं।

इस प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र में मुझे यह अनमोल सीख भी मिली कि मनुष्य अपना आहार-बिहार ठीक रखे तो बीमार नहीं पड़ सकता और भूलसे पड़ भी जाय तो सावधान होनेपर अच्छा हो सकता है।

: ४५ :

खूनकी खराबी

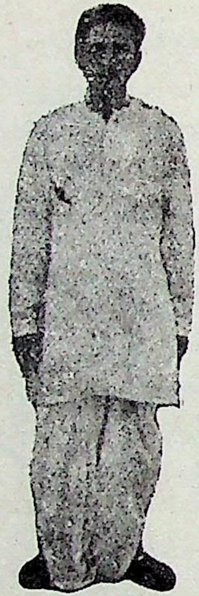
गिन्नीदेवी सराफ



तीन वर्षोंसे मेरे शरीरका रक्त दूषित हो गया। सारे शरीरमें दर्द भी रहने लगा। नाभिके निचले हिस्सेमें दूरतक सूजन हो गई। इसके सिवा छोटे-बड़े दर्जनभर और रोग भी मेरे पीछे लगे हुए थे। इन सबके लिए डाक्टर, वैद्य, हकीमोंकी मैंने खूब दवाइयां खाई, इंजेक्शन लिये और पैसे ठगाई। डाक्टरोंने मेरा चलना-फिरना, यहांतक कि हिलना-डुलना बंद कराके मुझे खाट पकड़ा दी। डाक्टरोंके नचाए सब नाच नाचे, पर लाभ तनिक भी न हुआ।

मायकेवालोंकी मार्फत मैं प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र, जसीडीह के बारेमें सुनकर अपने पतिके साथ १०-९-५५ को यहां पहुंची। तीन रोज बाद उपचार शुरू हुआ। चालीस दिन रसाहार चला। उसके बाद काफी दिनों फल पर रही। मेरा रक्त शुद्ध हो गया। छोटे मोटे और जो पांच-दस रोग थे, बिल्कुल चले गये। सूजन बिल्कुल नहीं रही। मुझे पहले छः महीनेका वक्त बतलाया गया था, लेकिन तीन महीनोंमें ही मुझे काफी लाभ हुआ।

अब मैं ४-५ मील रोज घूम लेती हूं। मुझे इसमें कोई कष्ट नहीं होता। मेरा जीवन बहुत सुधर गया है।



: ४६ :

भगंदर और बवासीर

शालिग्राम गाड़ोदिया

अनेक वर्षोंके गलत रहन-सहन और खानपानकी भूलोंके कारण मुझे भगंदर तथा बवासीर आदि अनेक रोगोंका शिकार होना पड़ा। बहुत इलाज कराके भी अच्छा न हो पाया। बिल्कुल निराश हो गया। कभी-कभी तो इस दुखी जीवनका अंत करनेकी इच्छा होती।

आजसे छः महीने पहले 'रोगोंकी सरल चिकित्सा' पुस्तक पढ़कर मनमें एक आशा जागी कि प्राकृतिक चिकित्सा मुझे लाभ पहुंचा सकती है। संयोगवश उन्हीं दिनों मेरी सास जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रमें अपनी तथा अपने छोटे लड़के श्री कालीप्रसादकी चिकित्सा करा रही थीं। इस चिकित्साके लाभोंके प्रति आकर्षित होकर उन्होंने मुझे यहां आनेको लिखा। मैं सपत्नीक जसीडीह आ गया।

यहां तीन महीनेमें मेरे रोग ही नहीं गए, एक प्रकारसे मेरी जिंदगी नई हो गई। बड़ी चीज तो मुझे यह मिली कि यहां रहन-सहनका तरीका सीख लिया।

मेरी स्त्री दुर्गादेवीका भी अनेकानेक रोगोंके कारण बुरा हाल था। उनकी चिकित्सा भी मेरे साथ ही हुई। वह भी रोग-मुक्त हुईं और इस चिकित्साकी बदौलत उनका जीवन हरा-भरा हो गया।

हम दोनों जीवन भर इस चिकित्सा-प्रणालीके कृतज्ञ रहेंगे।

त्वचाकी शून्यता

रघुनंदनसिंह



मुझे कई रोग थे। दाहिने पैरके घुटनेके नीचे पिछले भागमें त्वचाकी शून्यता, भूखकी कमी, कब्ज, जांघ और काछमें खुजली।

१९-५-५५ से ५-७-५५ तक उपचार हुआ। मिट्टीकी पट्टी और कटिस्नान दोनों समय। बीचमें धूप-स्नान, भापस्नान, एनिमा, सारे शरीरकी गीली पट्टी और मालिश। घूमना तो था ही।

त्वचाकी शून्यतामें बहुत-कुछ सुधार हुआ। खुजली तो बहुत जल्द चली गई थी। अब काफी भूख लगने लगी। मैंने सुना था कि रसाहारमें लोगोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है, लेकिन मुझे तो ऐसा अनुभव हुआ कि उल्टे इससे शरीरमें स्फूर्ति आती है और चेहरेपर भी रौनक आती है।

: ४८ :

ज्वर और पेटका दर्द

छबिनाथप्रसाद



शुरू का फोटो
दूसरा फोटो
नहीं लिया
जा सका

मेरे भतीजे जीवनकुमारको प्रायः एक सालसे ज्वर रहता था, और छः महीनेसे पेट-में दर्द। इससे उसकी शारीरिक स्थिति अत्यंत दयनीय हो रही थी। एलोपैथी और होमियो-पैथीके बहुत उपचार किये गये, पर कोई कार गर न हुआ। दशामें कोई फर्क नहीं पड़ रहा था। हम लोग इसके जीवनसे निराश ही थे।

इस निराश दशामें किसीकी सलाहसे प्राकृतिक चिकित्साको आजमा देखनेका खयाल हुआ। यहां आकर भी जीवनको कुछ दिनों तो ज्वर आता ही रहा। पेटमें दर्द भी रहा। लेकिन बहुत धीरे-धीरे पांच महीनोंमें ज्वर गया और बिल्कुल चला गया। पेटका दर्द भी गया ही समझना चाहिए। रुपयेमें एकाध पैसा कभी-कभी आता है। घर जाकर इतना सुधर जायगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

पहले जीवनकुमार खाटसे नहीं उठ सकता था, वह अब काफी दौड़-धूप करने लगा है।

: ४९ :

सांघातिक मलेरिया, रक्तचापकी न्यूनता



बद्री मिश्र

मुझे मुख्यतः दमा, सांघातिक मलेरिया, पुरानी पेचिश, रक्तचापकी न्यूनता (लो ब्लड प्रेशर) थे। रोगों के कारण मैं यहां बहुत बुरी हालतमें आया था। मेरी भूख भी बंद हो गई थी। थोड़े-से परिश्रमसे समूचे शरीरमें दर्द और थकान आ जाती थी। सिरमें तो पीड़ा बनी ही रहती थी। कोई मानसिक श्रम करना मेरे लिए कठिन हो गया था। अधिक चलने या बोलनेपर चक्कर आ जाता। भाषण देते समय आंखोंमें तीव्र वेदना होती। चेहरा पीला हो जाता। कब्जकी तो मुझे बहुत पुरानी शिकायत थी। पाखाना बड़ी कठिनाईसे और बहुत थोड़ा होता, बहुत कड़ा, गांठके रूपमें, काले रंगका।

मेरी इस दशाकी शुरूआत सन् १९४४ से हुई थी। तबसे कोई छमाही बीमारीके बिना नहीं बीती। और न कोई हफ्ता ऐसा गया कि जब मैंने कोई-न-कोई दवा न खाई हो, पिछले सालको छोड़कर। सन् ५२-५३ में लगातार ११ महीने बीमार रहने और डाक्टरी इलाज करते-करते एलोपैथिक दवाओं-परसे मेरा विश्वास एक दम जाता रहा। अन्य दवाओंमें भी

अश्रद्धा हो गई। तथापि मलेरियाका दौरा आनेपर न चाहते हुए भी कुनैनका इस्तेमाल करना ही पड़ता था।

एक बार भाषण देते हुए एक ही दिनमें मुझे दो बार चक्कर आया। उसके बाद लगातार सप्ताहभर सिर और पेटकी पीड़ा लिये पड़ा रहा। अंतमें लाचार होकर डाक्टरके पास पहुंचा तो उसने रक्तचाप बतलाया और बोला, दो-चार दिन देखभाल कर तब इसके कारणोंका पता लगानेके बाद इलाज हो सकेगा। उसकी बातोंसे मैं समझ गया कि इससे कुछ हो न सकेगा। इसी बीच एक मित्रने मुझे प्राकृतिक चिकित्सा आजमानेकी सलाह दी।

प्राकृतिक चिकित्साने तो मेरा जीवन ही नया कर दिया। मलेरियाका दौरा यहां आया और अपने-आप चला गया, जो बिना कुनैनके कभी गया ही नहीं था। पेटकी सब बीमारियां गईं। थोड़ी कमजोरी शेष रह गई है, पर वह भी बड़ी तेजीसे भाग रही है।

वहां बीमार पड़नेपर डाक्टर मुझे घी-दूध वगैरह खानेकी सलाह दिया करते, यहां उसके लिए उपवास कराया जाता है; मौसमी फल और तरकारियां खाना बतलाया जाता है। साथ, यह सिखाया जाता है कि आहार-विहार ठीक रखनेपर बीमार पड़नेकी जरूरत ही नहीं पड़ती।

चार दिनोंके अमृतान्न सेवनसे ही मेरा शौच नियमित हो गया है। मुझे लगता है मेरे-जैसे जीर्ण रोगियोंको लंबे समयतक अमृतान्नपर रहनेकी जरूरत है। मैं इस दृढ़ निश्चयके साथ यहांसे लौट रहा हूं कि फिर बीमार न पड़ूंगा।

: ५० :

मंदाग्नि

लेखराम पेड़ीवाल



सन् १९५४ में मैं जसीडीह प्राकृतिक चिकित्साके लिए गया था। उस वक्त मेरी बुरी हालत थी। शौच नहीं होता था, खानेमें रुचि नहीं रह गई थी। यहांतक कि पानी पीता तो मालूम होता कै हो जायगी। सारे शरीरमें पीड़ा रहती। एक महीनेकी चिकित्सा-में मेरे ये लक्षण बहुत-कुछ दूर हो गये, लेकिन कार्यवश मैं जल्दी कलकत्ता लौट आया। कुछ महीने ठीक रहकर फिर हालत खराब हो गई। मैंने खाना बंद करके उपवास शुरू किया। इस-लिए कि खानेकी इच्छा ही न होती थी, खाया जाता ही न था। पर घरवाले कहते कि बेमतलब खाना बंद कर दिया है। घरवालोंके आग्रहसे कभी खा लेता तो दो-चार घंटे बाद उल्टी करनी पड़ती। शरीरमें खूनकी कमी हो गई थी। मैं भयंकर मंदाग्निका शिकार हो गया। कब्ज तो था ही।

घरवालोंने डाक्टरोंको दिखानेको कहा, लेकिन मुझे तो डाक्टरोंके नामसे ही नफरत थी। अनेक साल पहले मेरे पू० चाचा-जीकी मृत्यु टाइफाइडमें डाक्टरी इलाजमें हो चुकी थी।

मेरा छोटा भाई गजानंद सन् १९५० में गोरखपुरमें प्राकृ-तिक चिकित्साका इलाज कराकर आया, तबसे हम लोग प्राकृ-

तिक चिकित्साके भक्त बन गये और घरमें डाक्टरोंका आवागमन प्रायः बंद ही हो गया। हमारे घरमें डाक्टर और दवाके लिए पहले ५००) महीनेसे कम न खर्च होते थे। अब वह खर्च प्रायः बंद हो गया है। मेरे छोटे भाईने कई टाइफाइडके रोगियोंको अच्छा किया। कई मंदाग्निवालोंको भी। कई रिश्तेदार और मित्रोंने भी उसकी सलाहसे फायदा उठाया। ऐसे घरमें मेरा बीमार पड़ना आश्चर्यजनक ही समझा जायगा।

लेकिन इसका कारण यह जान पड़ता है कि हम बीमार पड़नेपर तो प्राकृतिक चिकित्साका सहारा लेते थे, लेकिन प्राकृतिक जीवन बितानेपर पूरा ध्यान नहीं देते थे। भोजन और रहन-सहन अप्राकृतिक ही था। ऐसी दशामें बीमार पड़ना अनिवार्य था। मैं भी इससे बच न सका। अंतमें मुझे जसीडीह जाना पड़ा। मेरे चाचाजीने वहांके चिकित्सकसे कहा था कि मैं उपवास करके कमजोर हो गया हूं, कृपाकरके और उपवास न कराएं। चिकित्सकने कहा, "जो ठीक होगा वही करेंगे।" मैं कलकत्तामें १८ दिनका उपवास या कहिए रसाहार कर चुका था। फिर भी भूख बिल्कुल न जागी थी। जसीडीहमें मेरा रसाहार ३१ दिन तक जारी रहने दिया गया। मैं दिनभरमें तीन-चार कागदी नींबूओंका रस, लगभग आध पाव शहद और ८-१० मौसंबीका रस ले लेता था। ३१ दिनके बाद १० दिन सिर्फ अंगूरोंपर रहा।

रसाहारमें मैं रोज २-३ मील बिना किसी अशक्तिके घूमता रहा।

२८ दिनोंतक एनिमासे पुराना मल रोज आता रहा। और इतना बदबूदार कि गंधसे मेरा दिमाग चकरा जाता। इतना मल पेटमें रहते हुए कैसे किसीकी खानेकी ओर रूचि हो सकती है?

मुझे रसाहारके दिनोंमें एक दस्त एनिमासे और एक अपने आप भी होता था। इस बीच मुझे किसी दिन कुछ खानेकी इच्छा नहीं हुई।

कलकत्तामें रसाहारके ११वें दिन घरवालोंके बहुत दबाने-पर मैंने एक पाव दूध ले लिया था। मेरा खयाल है, उस दूधने मुझे नुकसान ही पहुंचाया। मैं समझता हूं, रसाहार या उपवासके समय कोई दूसरी चीज थोड़ी मात्रामें भी पेटमें जानेसे हानि होती है।

रसाहारमें मेरा वजन १२ पौंड घटा। इतना तो पेटसे शायद पुराना मल ही निकला हो। रसाहार और अंगूरकल्प खतम होनेके दिन मेरा वजन १।ऽ३ था।

४१ वें दिन मैंने दूध-कल्प शुरू किया। रोज एक पाव दूधसे चला। एक हफ्तेमें ऽ२॥ पर पहुंचा। धीरे-धीरे चार सेर हो गया। पर इतना दूध हज्म न कर सकता था। २-३ पतले दस्त लग जाते थे। तब ऽ२ दूध, ऽ२ मट्ठा किया और अंतमें तो दूध एक सेर ही करके मट्ठा ऽ४ करना पड़ा। इससे पाचन ठीक हो गया। पर एक महीनेके बाद दूध-मट्ठा घटाकर कुछ मक्खन लेने लगा। उससे शक्ति बढ़ी। वजन भी ऽ५ बढ़ा। चालीस दिनोंमें १।ऽ८ हो गया। फिर एक महीनेतक सुबह नाश्तेमें दूध फल, दोपहरको रोटी मक्खन और तरकारी, शामको दूध-फल। इससे मुझे बराबर ताकत मिलती गई, और मेरा वजन बढ़कर १॥ऽ३ हो गया। अब भूख अच्छी लगने लगी, पाचन ठीक होने लगा। नींद न आनेकी जो शिकायत होगई थी, वह दूर होगई। शौच बिल्कुल साफ होता था।

फलों में मैं पपीते और शरीफे अधिक खाता था, क्योंकि उस समय जसीडीहके वही स्थानीय फल थे। जसीडीह रहते समय

मैं रोज आठ-दस मील घूमता था और आध घंटा कुदालसे जमीन कोड़नेका काम करता था।



कटिस्नान, मिट्टी की पट्टी, धूप-नहान और हफ्तेमें एक भाप-नहान लेता था।

'इस बार कलकत्ता आकर भी मैंने अपना आहार-विहार दुरुस्त रखा। घूमना जारी रखा। रोज एक घंटे आसन भी करने शुरू किये। तीन महीनेमें मेरा वजन १॥।ऽ हो गया। शरीर सुडौल हो गया। छाती ३३ इंच से ३६ इंच हो गई।

मेरी स्त्रीने भी इस चिकित्सासे बहुत लाभ उठाया। मेरे बड़े लड़के विजय की जांघ में उसी बीच एक बड़ा जबरदस्त फोड़ा हो गया था, जो बिना किसी दवा-दारू के

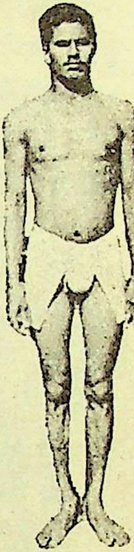


मिट्टीकी पट्टीकी बदौलत पका, फूटा और अपनेआप साफ हो गया। कलकत्तामें तो डाक्टर उस फोड़े की चीरफाड़में कई सौ रुपये ले जाता और महीनों बच्चेको खाट पर सुलाता। इसी बच्चे को जसीडीह रहते समय २१ दिन का मियादी बुखार हुआ और बिना किसी परेशानी के वह अच्छा हो गया। मेरी आठ वर्षकी लड़कीने भी बारह-चौदह दिनका रसाहार करके अपने फोड़े-फुंसियोंसे छुटकारा पाया।

: ५१ :

साइटिका

वचनेश्वर चौधरी



सन् १३६० फसली, आषाढ़ महीनेकी बात है, मेरे बाएं पैरमें कमरसे लेकर एड़ीतक अचानक भयंकर दर्द पैदा हुआ। लोगोंने डराया कि यह असाधारण रोग है, बहुत पाजी बीमारी है, इसका कोई इलाज नहीं है, इसमें तो पैर कटाकर ही पिंड छूटेगा। लोगोंकी तरह-तरहकी बातें सुनकर, मेरा मन सशंक होने लगा, दिमाग परेशान हो गया। अधिक भय इसलिए था कि इस रोग में मेरे पिता का पैर काटा जा चुका था !

मैं अपने नजदीकी डाक्टरके पास पहुंचा। डाक्टरने बीमारीका नाम 'साइटिका' रखा। पूरे तीन महीने इलाज हुआ। पर दर्दमें एक रत्ती कमी न हुई। तब भागलपुरके एक मशहूर डाक्टरको दिखाया। उन्होंने बीमारीका नाम वही दोहराया, और यह भी कहा कि इस रोगका कोई खास इलाज नहीं है। फिर भी, तीन महीने उन्होंने मुझे अपने इलाजमें रखा। जब उनसे भी कुछ न हुआ तो मैंने एक महीने तक होमियोपैथी की गोलियां लीं। थोड़ासा लाभ मालूम हुआ, लेकिन मुझे लगा कि इससे बीमारीकी जड़ न जा सकेगी।

इसी बीच मेरे एक पड़ोसीसे भेंट हुई। वह घरपर किसी-किसीका इलाज प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतिसे किया करते थे।

उनके बताये तरीकोंसे मेरी हालतमें कुछ सुधार हुआ, दर्दमें कमी हुई। इसके बाद प्राकृतिक चिकित्साकी विशेष ट्रेनिंगके लिए वह प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र जसीडीह जाने लगे तो मुझे भी उन्होंने साथ जानेकी सलाह दी। मैं उनके साथ ही जसीडीह चला आया। यहां मेरा निम्नलिखित उपचार हुआ--

१. सुबह-शाम पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी।

२. शामको दर्दके स्थानपर मिट्टीकी पट्टी।

३. सवेरे गरम ठंडा कटिस्नान और शामको ठंडा कटि-स्नान।

४. सप्ताहमें दो दिन भाप-नहान।

५. सवेरे-शाम करीब दो मील टहलना।

६. एनिमा नित्य।

७. भोजनमें केवल अमृतान्न—अंकुरित गेहूं, चना, मूंग, मोठ। सूखी चीजोंमें मूंगफली, खजूर, तिल। कुछ ताजे फल भी।

कुछदिनों दर्दमें लाभ होकर एक दिन अचानक फिर दर्द शुरू हुआ। तब मुझे तीन दिनका उपवास कराया गया और चौदह दिन रसाहार। इसमें दर्द लगभग चौदह आना चला गया। आर्थिक कठिनाईके कारण मैं यहां अधिक न ठहर सका, वरना यह दो आना दर्द भी मैं यहीं खोकर जाता। घर आकर मैं ग्यारह दिन दूधपर रहा। अब एक आना बीमारी और बाकी है। आशा है कि वह भी दस-बीस दिनमें चली जायगी। इस इलाजमें मेरे करीब एक सौ रुपये खर्च हुए, जबकि डाक्टरी इलाजमें चार सौ रुपये खर्च करके एक आना भी फायदा नहीं हुआ था।

: ५२ :

भयंकर कब्ज

पूरनसिंह



अढ़ाई-तीन महीने पहले कलकत्तेसे एक बहनने लिखा कि मेरे संगीतगुरुके एक परिचित पंजाबी भाई अनेक रोगोंसे बुरी तरह परेशान हैं, और तीन सालोंसे डाक्टरों के चक्करमें पड़े हुए हैं, क्या आप उन्हें वहां उपचारके लिए ले सकते हैं? पर वह डाक्टरों-से इतने लुट चुके हैं कि अब उनकी प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र की डेढ़ रुपये रोजकी उपचार फीस भी देनेकी ताकत नहीं रह गई है। लड़कीका अनुरोध मानकर रोगीको आनेकी इजाजत दी गई।

रोगी आये। मैंने पूछा, "कहिए, पूरनसिंहजी, क्या तकलीफ है आपको?"

"बहुत हैं।"

"उन बहुतोंके नाम कह जाइए।"

"डाक्टरोंने ब्रोंकाइटिस, नर्वसनेस, गालब्लडर, लिवर वगैरह कई बीमारियां बताई हैं, मुझे।"

"डाक्टरोंकी छोड़िए, वह तो बहुत बार बिन हुई बीमारियां भी बता देते हैं—बीमारियां बढ़ाएं न तो खाएं क्या? आपको खदको अपने शरीरमें क्या खास तकलीफ होती है, सो कहिए।"

"खास बीमारी तो मुझे कब्जकी है। चार-चार पांच-पांच दिनतक टट्टी नहीं लगती। जुलाबसे ही पाखाना होता है। भूख बिल्कुल नहीं लगती। दिन भरमें मुश्किलसे पाव आटेकी रोटी खा पाता हूं। हमेशा सिर भारी और शरीर सुस्त बना रहता है, किसी काममें मन नहीं लगता।"

इलाज शुरू हुआ। पहले दिनके एनिमामें ही सेर-सवा सेर मल निकला होगा। इसी प्रकार दूसरे, तीसरे दिन भी। कभी कम कभी ज्यादा करके इक्कीस दिनतक एनिमा लेनेपर मल निकलता ही रहा। खाना कतई बंद था। सिर्फ संतरे और मौसंबीका आध सेर, तीन पाव रस सारे दिनमें तीन सेर पानीमें मिलाकर चार-पांच बारमें दिया जाता। दो समय दस-दस मिनटका कटिस्नान, दो बार मिट्टीकी पट्टी, हफ्तेमें एक बार भापस्नान। हर कटि-स्नानके बाद दो अढ़ाई मील घूमना––इतनी ही चिकित्सा थी। पूछे जानेपर बाइसवें दिन, पूरनसिंहने कहा, अब तो थोड़ी भूख जान पड़ती है।

"थोड़ी क्यों, पूरी लगने दीजिए।"

चौबीसवें दिन पूरनसिंहको पूरी भूख लगी। अब पेटकी पूरी सफाई हो चुकी थी। वजन एक मन छब्बीस सेर से घटकर एक मन अठारह सेर रह जानेके कारण शरीर दुबला तो दिखाई देता था, पर चेहरेपर चमक थी।

अब दूध आरंभ हुआ। दो-तीन दिन आधा दूध, आधा पानी मिलाकर ढ़-दो सेर दूध चला। फिर पानी मिलाना बंद करके दूध एक पाव रोजके हिसाबसे बढ़ाते-बढ़ाते पूरनसिंह रोज सात सेर दूधपर पहुंच गए। तीस दिनके बाद दूधकी मात्रा आधी कर दी गई और एक वक्त रोटी-तरकारी दी जाने लगी। हफ्ते भरमें आध

सेर आटेकी रोटियां, तीन पाव तरकारी और एक सेर दूध पूरनसिंहको पचने लगा। रोज दो दस्त खुलासा होने लगे। वजन बढ़कर फिर एक मन छब्बीस सेर हो गया।

इसके पूर्वकी कहानी पूरनसिंहकी जबानी सुनिए——संपादक]

सन् १९५२ की जनवरीमें भयंकर कब्जका शिकार होनेपर मैंने कलकत्ता के एक मशहूर डाक्टरकी दवा शुरू की। खानेकी दवा और इंजेक्शन पूरे सालभर लेता और उन्हें मुट्ठीकी मुट्ठी रुपये देता रहा। दवा और इंजेक्शन तो बराबर बदले जाते रहे, पर मेरी हालत नहीं बदलती थी। मैंने धीरज रखनेमें कोई कसर नहीं रखी। उनसे नाउम्मीद होनेपर दूसरे नामी डाक्टरकी शरण गया। वह परीक्षा कर-कराक बोले, तुमको बलगमकी शिकायत है, 'कार्डियोग्राफ' और एक्सरे करवाओ तो काम चलेगा। चौंसठ रुपये कार्डियोग्राफके और सोलह रुपये एक्सरेके लगे। अब कैलशियम और पेंसिलिन के इंजेक्शन आरंभ हुए। मुझे दोनोंके बहत्तर-बहत्तर इंजेक्शन लगे। पर फायदा दरकिनार, उल्टे, मेरे सिरमें चक्कर-पर-चक्कर आने लगे। हाथ-पावोंमें बहुत जलन रहने लगी। तब डाक्टरने हवा-पानी बदलनेका हुक्म दिया। मरीजको डाक्टर जो नाच नचाए,नाचना ठहरा। डाक्टरके हाथमें पड़कर मरीज मदारीका बंदर ही बन जाता है।

मैं पंजाबके लिए रवाना हुआ, पर रास्तेमें तकलीफ बढ़ जानेसे दिल्ली उतर गया। वहां एक दोस्त मुझे हमदर्द दवाखानेके डा० संतोषकुमारके पास ले गये। उन्होंने नाड़ी देखकर वायुविकार बतलाया। दिनमें दो बार खानेकी सात-सात खुराक दवा दी। याद नहीं, दाम कितने लिये। चार दिन वहां रहकर, महीने भरके लिए यही दवाइयां लेकर पंजाब चला गया। जबतक दवा

खाता रहा, अच्छा रहा, बंद करते ही हालत बदतर हो गई। फिर दिल्ली आकर डाक्टरको अपना दुःख सुनाया तो बोले, बीमारी पुरानी है, एक महीने दवा और खाओ, ठीक हो जाओगे। तब महीनेभरकी दवा लेकर मैं कलकत्ता आ गया। दवा महीनेभर खाई, पर फायदा जो पहले दिन रहा वही रहा।

अब मैं फिर कलकत्ताके एक बहुत प्रसिद्ध डाक्टरके यहां पहुंचा। उन्होंने गालब्लडर (पित्ताशयकी बीमारी) बतलाया और आपरेशन करनेको कहा। आपरेशनसे मेरे भय प्रकट करने पर उन्होंने एमीटीन और लीवरएक्सट्रैक्टके इंजेक्शन लेनेको कहा। महीनेभरके लगभग दोनों इंजेक्शन लिये। पर लाभ कुछ न हुआ। लोगोंने डाक्टरी छोड़कर आयुर्वेदिक या होमियोपैथिक इलाज करानेकी सलाह दी। इन दोनोंका नतीजा भी वही हुआ।

इसी बीच एक दोस्तने कहा, पूरनसिंह, तुम्हारे पेटमें तिल्ली बढ़ गई है, लुधियानेमें एक मशहूर वैद्य है, वह तिल्लीका शर्तिया इलाज करता है। लुधियाने पहुंचकर मैंने उस वैद्यका दरवाजा खटखटाया। उसने तिल्ली बतलाई और एक महीनेमें दो बोतल एक अर्क पिलाया। वह अर्क पीनेसे मुझे रोज चार-पांच दस्त आ जाते थे। पर इससे कोई स्थायी फायदा न होनेपर मैं दिल्ली गया और मरहूम हकीम अजमलखां के हिंदी दवाखानेमें पहुंचा। वहां एक बूढ़ा हकीम बैठा था। मुझे देखकर बोला, बाय-पेचिश हैं तुम्हें, दवा खाओ, लेकिन आराम होनेमें वक्त ज्यादा लगेगा। दवा लेकर मैं कलकत्ता चला आया। चार-पांच दिन ही दवा खाई थी कि मेरा कष्ट बढ़ गया, जो जुलाब लेनेपर किसी तरह दूर हुआ।

इन तीन सालोंमें मैं दवा और डाक्टरोंसे तंग आ गया था। हाथ भी तंग हो गया था। मेरे अबतक करीब पांच हजार रुपये

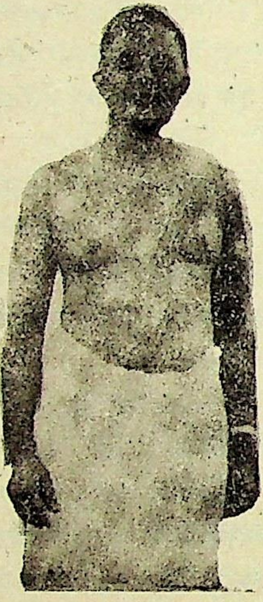
डाक्टर-वैद्योंकी भेंट चढ़ चुके या कहूं, बरबाद हो चुके थे। इसी समय कलकत्तामें श्री भागीरथीबाई जालानसे सौभाग्यवश मेरी भेंट हुई। उन्हें मैंने अपनी विपत्ति सुनाई। रोगी तो हरेकको अपनी विपत्ति सुनाता ही फिरता है। उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र जसीडीह जानेकी सलाह दी और मुझे एक खत लिखकर देनेका वादा भी किया।

मैंने उनसे कहा, अब मेरे पास वहांके खर्चके लिए पैसे कहां हैं ? वह बोलीं, जाओ, मैं वहांके संचालकको लिख देती हूं, तुम्हारा कुछ लगेगा नहीं। मैं १२-९-५५को जसीडीह पहुंचा था और अब २-१२-५५ को यहांसे बिल्कुल अच्छा होकर कलकत्ता जा रहा हूं।

यहां मैं सिर्फ अच्छा ही नहीं हुआ, यह भी सीखा कि हमारे शरीरके लिए दवा गैर-जरूरी ही नहीं हानिकर भी है। उचित खानपान और सही रहन-सहनसे हमारा शरीर खुद-ब-खुद दुरुस्त रहता है और हो सकता है। मुझे विश्वास है कि अब मैं कभी बीमार नहीं पड़ूंगा और न पड़ूंगा डाक्टर-वैद्योंके चक्करमें। प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीका मैं हृदयसे कृतज्ञ हूं, जिसपर चल-कर मैंने अपना खोया हुआ स्वास्थ्य पाया और साथ ही स्वस्थ रहनेकी अनमोल सीख भी।

एक्जिमा और आंव

गौरीशंकर दारूका



बचपनमें मेरा स्वास्थ्य साधारणतः अच्छा था। बड़े भाईकी प्रेरणासे मुझे व्यायामका भी शौक हो गया था। पर सन् १९३२ के अंतमें जब बी० ए० की परीक्षाकी तैयारी कर रहा था, यकायक मुझे खूनी आंवकी शिकायत पैदा हुई। डाक्टरोंने 'बेसिलरी डिसेंटरी' बताई। उस समय मेरा वजन १ मन ५ सेरसे घटकर सिर्फ ३५ सेर रह गया। इंजेक्शन दिये गये। एक बार ठीक हो गया। परीक्षामें पास हो गया। लेकिन उसके बाद आंवकी शिकायत मुझे बराबर रहने लगी। कुछ भी भारी खाना खाया कि दूसरे दिन आंवोंका जोर हुआ। कभी-कभी खून भी गिरता। धीरे-धीरे मेरा वजन बढ़ने लगा। सन् १९४१ तक मैं १ मन ३५ सेर हो गया। देखनेमें मेरा स्वास्थ्य अच्छा था, क्योंकि मैं मोटा-ताजा लगता था, पर मुझे आंवोंकी चिंता निरंतर सताती रहती। किसी प्रकारका गरिष्ठ भोजन मेरे लिए अभिशाप ही था।

आंव तो थे ही, सन् १९४३ में मुझपर एक्जिमा का (उकवत) आक्रमण भी हुआ। दवाएं होनेपर बीमारी एक बार कुछ दब

गई। पर थोड़ी तकलीफ बराबर बनी रही। सन् १९४५ में कलकत्ताके एक बड़े चर्म-विशेषज्ञकी राय ली तो उन्होंने साफ शब्दोंमें कहा, उकवतको जड़से खोनेवाली कोई दवा अबतक नहीं निकल सकी है, पर मैं तुम्हें एक दवा देता हूं, जिसे लगाते रहोगे तो तकलीफसे बचे रहोगे। इंजेक्शन भी दिये और यह भी कह दिया कि ले लो, पर इनसे फायदा होनेमें मुझे संदेह है। डाक्टरकी बात अक्षरशः सत्य निकली। इंजेक्शनोंका कोई असर न हुआ। लगानेकी दवा बराबर इस्तेमाल करता रहा, जिससे बीमारी दबी रहती और मेरा काम चलता रहता। आंवोंकी शिकायत तो ज्यों-की-त्यों बनी रही।

सन् १९५२ में मेरी बीमारीने जोर पकड़ कर मंदाग्निका रूप लिया। पहले डाक्टरोंकी दवाएं लीं, जिनमें 'आरोमाइसिन' और 'टेरामाइसिन'-जैसी विषैली दवाएं भी थीं। जबतक लेता रहा, खाना हजम होता रहा। बंद करते ही चार-पांच दिन बाद वही हालत हो जाती। अब वैद्यकी शरण ली। कुछ फायदा हुआ। पर उकवतने जोर पकड़ा। तब दो महीना वैद्यनाथ धाममें रहकर वैद्यकी दवा लेता रहा। वैद्यने कहा, दवा से ठीक रहनेपर भी घी और खोवेकी बनी वस्तुओंका प्रयोग तो हमेशाके लिए छोड़ना होगा। लाचार होकर मैंने उनकी राय मानी।

मेरे देवघर निवासकालमें पू० प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका किसी कामसे वहां आये थे। उन्होंने मुझे देखकर कहा, दवाओंके फेरमें मत रहो, जल्दी-से-जल्दी गोरखपुर जाकर प्राकृतिक चिकित्सा कराओ, उसीसे तुम अच्छे हो सकोगे। मैं वहांके लिए पत्र लिख दूंगा। मुझे उस समय उनकी बात जंची नहीं। मैंने सोचा कि जब इतने बड़े-बड़े डाक्टर-वैद्य मेरी बीमारी न

मिटा सके तो प्राकृतिक चिकित्सामें मिट्टी, पानीसे मेरा क्या बनेगा।

१९५३ में फिर मेरा हाजमा गड़बड़ हुआ। उन दिनों दरभंगामें आम खूब आते थे, और अच्छे किस्मके। पाचन-शक्तिकी खराबी रहनेपर भी, मैं आम खानेके लालच को न रोक सका। नतीजा यह हुआ कि उकवतने जोर पकड़ा। लेकिन एक आश्चर्य देखा मैंने। पाचन-शक्तिमें अनायास सुधार मालूम होने लगा। मुझे लगा कि शायद मेरे पेटकी तकलीफका उकवतसे कोई संबंध है। डाक्टरोंसे तो मैं बराबर यही सुनता आया था कि उकवत एक चर्म-रोग है, इसका भीतरसे कोई संबंध नहीं है। मुझे भोजन रुचिकर लगने लगा। उधर उकवत जोरसे चूने लगी।

फिर कलकत्ता जाकर अपने एक संबंधीकी सलाहसे मैं एलगिन नरसिंग होममें भरती हुआ। वहां सात दिनके डाक्टरी उपचारसे मेरी त्वचा साफ हो गई। उन्हीं दिनों उस नरसिंग होममें श्री रामकुमारजी भुआलका भी भरती हुए थे। उनसे मैंने अपना संदेह बतलाया कि आम खानेसे शायद मेरी उकवतने जोर पकड़ा है। पर उन्होंने इसे मेरा भ्रम ठहराया, बोले, आम और उकवतका क्या संबंध है। मुझे उन्होंने भी दृढ़तापूर्वक प्राकृतिक चिकित्सा करानेकी राय दी है। दरभंगा आनेके दो महीने बाद फिर उकवत निकली।

अब तो उकवत मुझे अपने लिए वरदान लगने लगी। शरीरमें जहां कोई विकार इकट्ठा होता, प्रकृति उसे उकवतकी शक्लमें बाहर निकालनेकी चेष्टा करती। उकवतका जोर रहनेपर मेरा हाजमा दुरुस्त रहता था। इसलिए मैंने उसपर दवा लगाना बंद कर दिया। उकवत चेहरेपर भी थी, इससे मेरी शक्ल खराब

दीखती, पर मैंने इसकी परवा नहीं की।

सितंबर १९५४में मैं जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रमें जाकर ४० दिन रहा। जिसमें २१ दिनों रसाहार किया। मिट्टी-की पट्टी, कटिस्नान और वाष्पस्नान नियमित थे। वहांसे लौट आनेपर, बिना चुपड़ी रोटी, उबली तरकारी, दूध, फल इत्यादि पर आ गया। पांच महीनेतक नमक नहीं खाया। शरीर बहुत हल्का रहने लगा। आंवका नामोनिशान मिट गया। उकवत भी कम तो काफी हुई पर संपूर्ण रूपसे उससे पीछा नहीं छूटा। भूख खूब लगती पर शरीर दुर्बल रहता। १९५५ के जाड़ोंमें मैंने चालीस दिनका गाजर-दूध का कल्प किया, इससे उकवत सिर्फ नाममात्रको रह गई। तब मुझे विश्वास हुआ कि एक्जिमा भी दूर हो सकता है।

मार्च १९५५ से मैं साधारण भोजनपर आ गया हूं। अब मैं अपनेको सुखी अनुभव करता हूं। बाइस सालमें (१९३२ से १९५४ तक) शायद ही कोई ऐसा महीना गया हो जब मुझे आंव-की शिकायत न रही हो। प्राकृतिक चिकित्साके बाद पिछले एक सालमें तो एक दिन भी आंव नहीं आया।

यहां यह भी कह दूं कि मुझे आंव और उकवतके अलावा और भी कई तकलीफें हो गई थीं। जैसे, एक पैरका पंजा फूलना, पायरिया इत्यादि। वे सब आंव जानेके साथ-साथ स्वतः विदा हो गई।

प्राकृतिक चिकित्साने मेरे ऊपर जो अनेक उपकार किये हैं, उन्हें मैं कभी भुला न सकूंगा, क्योंकि पहले तो मैं अपनी सैंतीस सालकी उम्रमें अपनेको सैंतालीस सालका-सा अनुभव करने लगा था अब उसकी कृपासे बयालीसकी अवस्थामें अपनेको बत्तीस का-सा अनुभव करता हूं।

: ५४ :

पेट-दर्द और पथरी

मोतीलाल भड़ूकिया



एक दिन मेरे पेटमें यकायक भयंकर दर्द उठा। साथ ही मूत्र-नालीमें भारी जलन पैदा हुई। देवघरके सब डाक्टरोंने कहा, यहां इसका इलाज संभव नहीं है, पटना या कलकत्ता ले जाकर आपरेशन कराना पड़ेगा। मैं आपरेशन के नामसे डरा। तब मेरे मित्र श्री गोपाल छापरिया, जो प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा भगंदर रोगसे अच्छे हुए थे, मुझे यहां ले आये।

यहां दो हफ्तेकी चिकित्सासे ही मेरे पेटका दर्द और इंद्रियकी जलन बिलकुल जाती रही। इंद्रियसे मूंगके दानेके बराबर पत्थरीके दो टुकड़े भी निकले, जो चिकित्सा केंद्रवालोंने रख लियें।

: ५५ :

नाड़ी-दौर्बल्य, स्वप्नदोष

दीनशा मेहता



डेढ़ सालसे, पेटकी पीड़ा तथा वायुके प्रकोपसे मेरा मन बहुत अशांत रहता था। मैंने एलोपैथिक, आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक——सब इलाज कराये, लेकिन कुछ लाभ न हुआ। उल्टे, दवाओं-की बदौलत, स्वप्नदोषकी नई बीमारी लग गई। हफ्तेमें तीन बार स्वप्नदोष होने लगा। मैं दिन-दिन कमजोर होने लगा, साथ ही जीवनसे निराश। उदासी, सुस्ती बढ़ने लगी। मस्तिष्क तथा नाड़ी-संस्थानकी दुर्बलता भी बढ़ रही थी। जब-तब आत्म-हत्या करनेकी इच्छा होती। ऐसे ही समय एक मित्रसे मुझे प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र, जसीडीहका पता चला। मैंने यहां आकर महीनेभर चिकित्सा ली।

स्वप्नदोष और पेटकी शिकायत अब नहीं रही। थोड़ी कम-जोरी जरूर है अभी। यदि कुछ दिनों मैं यहां और रह सकता तो अवश्य पूरी शक्ति आ जाती।

अब मुझे जीनेकी आशा बंध गई है। मैं जीनेका सही रास्ता भी जान गया हूं। यहां मुझे एक बड़ी शिक्षा यह मिली कि खाना जीनेके वास्ते है, जीना खानेके वास्ते नहीं।

तनके साथ मेरा मन भी दुरुस्त हो गया है।

: ५६ :



अपच, अतिसार, आंव

रामप्रताप सिंह

मुझे अपच, अतिसार और आंवके साथ कठिन कब्ज, निद्राका अभाव और स्वप्नदोषकी शिकायत थी।

एलोपैथी और होमियोपैथ डाक्टरोंकी काफी दवाएं खाकर मैं निराश हो गया था। पर यहां प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रमें आने पर अन्य पुराने-पुराने रोगियोंकी कहानी सुनकर और उन्हें प्राप्त हुआ लाभ देखकर मेरे मनमें आशाका संचार हुआ।

यहां धूप-नहान और भाप-नहानसे पसीनेके रूपमें और रोज एनिमा द्वारा आंतोंसे पुराना सड़ा, बदबूदार मल निकलता रहा। इतने दिनोंमें आंतोंसे कई सेर मल निकला होगा। इससे मेरी त्वचापर काफी सफाई आ गई। मुंहपर से झाईं जाती रही। नींद आने लगी। स्वप्नदोषकी शिकायत जा कर मन प्रसन्न रहने लगा।

इस इलाजसे शरीर और मन दोनों सुधरते हैं। पहले मैं सर्दी लग जानेके भयसे ठंडी हवा और सिरमें दर्द हो जानेके भयसे धूपसे भी बचता था। यहां मेरा वह सारा भ्रम दूर हो गया।

: ५७ :

दमा और पेट-दर्द

बसंत शर्मा



मुझे नीचे लिखी शिकायतें थीं--१. पेटमें बराबर दर्द, कभी मीठा कभी जोरसे, २. हल्का दमा ३. दाहिने बाजूमें और गर्दनमें दर्द, ४. पैरोंमें रातको सोते समय चभक।

पेट-दर्द तो मुझे पंद्रह सालोंसे था। जोरसे उभरने पर घरेलू आयुर्वेदिक या डाक्टरी इलाजसे एक बार कुछ चैन मिलता।

१९५४ में भागलपुर सैंट्रल जेलमें नवंबर महीनेमें जोरका दर्द आया और साथ ही जाड़ा लगकर १०५ डिग्री बुखार भी। ५०-६० लाख यूनिट पेंसिलिनके इंजेक्शन, गोलियों और हाट वाटर-बैगके प्रयोगसे दर्द दबा और जाड़ा छूटा। जेलके डाक्टरने अपेंडिसाइटिस कायम किया और भागलपुरके सिविल सर्जनने उसके आपरेशनकी राय दी।

वहांसे मैं पटना सदर अस्पताल भेज दिया गया। एक्सरे हुआ। वहांके बड़े डाक्टर ए० एन० दास, एस० के० सेन और दूसरे-दूसरे डाक्टरोंने मिलकर बतलाया कि अपेंडिसाइटिसके सिवा पेटमें गोला है और आंतोंमें टी० बी० की शंका भी है। इस बुनियादपर मैं जेलसे रिहा कर दिया गया। पटनेके डाक्टरोंकी

सलाहसे मैंने वहां लगभग पचास रुपयेकी दवा खाई। पर कोई लाभ न हुआ।

इससे पहले १९५२ के जूनमें जेलमें मुझे हल्का दमा शुरू हुआ था। साथ ही गर्दनके जोड़का दर्द जो पहले बायें हिस्सेमें शुरू हुआ था, वह सूइयां लगवानेसे बाएं हिस्सेका दब गया और बादको दाहिनेमें होने लगा।

मेरा खून खराब बतलाकर मुझे स्ट्रिप्टोमाइसिनकी सूइयां और कई तरहकी गोलियां दी गईं। इसमें मेरे एक सौ रुपये लगे। लेकिन सब फजूल गये।

पहली मई १९५५ को मैं यहां प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रमें दाखिल हुआ था और आज १० जून १९५५ को घर जा रहा हूं। इस एक महीने नौ रोजमें मैं अपने रोगोंसे प्रायः मुक्त हो गया हूं।

मैंने उपचार यह किया--

दिनमें दो बार दस-दस मिनटका कटिस्नान, दो बार मिट्टीकी पट्टी, हफ्तेमें एक बार भापस्नान, हफ्तेमें तीन-चार धूप-स्नान, रोज तीन-चार मील घूमना।

पांच रोज फलाहार, २१ रोज रसाहार, १३ दिन दुग्धकल्प।

यदि मैं ४० दिन दुग्धकल्प चला सकता तो मुझमें पूरी ताकत आ जाती।

: ५८ :

आंव, फाइलेरिया, स्वप्नदोष

दामोदरप्रसाद सिंह



यों तो मुझे टांसिल, डिसेंट्री, फाइलेरिया, स्वप्नदोष वगैरह अनेक रोग थे, लेकिन ज्यादा तकलीफ मुझे आंवसे थी। टांसिलके लिए मैंने होमियोपैथी चिकित्सा कराई थी। उससे कभी टांसिल कम हो जाते और कभी ज्यादा। यही हालत डाक्टरी इंजेक्शनोंसे भी हुई। टांसिलका इलाज कराते समय ही मेरा पेट भी खराब रहने लगा। इसका इलाज कराया तो स्वप्नदोष होने लगा। उसके बाद आंव आने लगे। पहले आयुर्वेदिक इलाज कराया। फिर एलोपैथी, कोई फायदा न हुआ। इसी समयमें फाइलेरियाका शिकार हो गया। जांघके बगलमें (काछमें) एक गिल्टी हो गई सूइयां दी गईं, जिनसे ज्वर आ गया। गलेमें फुंसियां हो गईं। फाइलेरियामें पांवकी दो अंगुलियां मुड़ी रहती थीं। आधे सिरमें दर्द भी रहता था।

यही सब शिकायतें लेकर मैं एक बार सन् १९५४ में आया और एक महीने यहां रहा। आधा ही इलाज हो पाया कि मैं घर चला गया और एक साल बाद फिर लौटकर यहां दो महीने रहकर पूरा इलाज कराया और अब सब बीमारियोंसे मुक्त होकर घर जा रहा हूं।

मुझे कहते खुशी होती है कि मुझे गांजा पीनेका विशेष दुर्व्यसन था, वह अब बिल्कुल छूट गया है।

: ५९ :

उदरशूल और हृदयशूल

महेन्द्र नारायणसिंह



शुरू-शुरूमें मुझे पेटमें शूल--दर्द हुआ, जो १६ दिन चला। पाखानेमें खून आता और साथ बहुत श्लेष्मा। पेट खूब कटता। मैंने कोई इलाज नहीं किया। इसके वाद मेरी दाहिनी छातीमें एक जगह मीठा-मीठा दर्द शुरू हुआ और धीरे-धीरे उसने सारी छातीपर कब्जा जमा लिया। डाक्टर-ने प्लूरसी बतलाई। १५-२० इंजेक्शन दिये। पर कोई फायदा न देखकर मैं सुलतानगंजके एक डाक्टरके पास पहुंचा। उन्होंने हृदय-रोग वताकर १७इंजेक्शन दिये और खाने को ३०० गोलियां। तीन महीनेमें कोई लाभ न होनेपर भागलपुरके सिविलसर्जनके यहां पहुंचा। मेरी छाती कमजोर वता कर उन्होंने इक्कीस रुपयेकी दवा दी। कोई परिणाम न हुआ।

गायके दूधके साथ मुर्गीका अंडा खानेको बताया था। उसके खानेसे भी कोई लाभ न हुआ।

उसी समय मैंने जसीडीहके प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रकी बात सुनी। मैंने अपने पितासे जसीडीह जानेको कहा। पर वह खर्चसे डरे। क्योंकि अवतक मेरे दवा-पानीमें उनके तीन सौ रुपये खर्च हो चके थे। ये सारे रुपये कर्ज लेकर ही खर्च हुए थे। किसी तरह मेरे पिताजी मुझे जसीडीह लाये।

अन्य उपचारोंके साथ मैंने यहां ६ दिन फलाहार किया, १२ दिन रसाहार, ३ दिन उपवास और १५ दिन दूधपर रहा। यहां मेरे कुल ७०) खर्च हुए। मेरे सारे रोग खतम हो गए।

: ६० :

शक्ति-हीनता

प्रभुलाल



पिछले तीन सालोंसे मैं बराबर बीमार रहता आया था। अपनी सारी शक्ति खो चुका था। यहांतक कि बैठ जानेके बाद मेरा उठना भी मुश्किल था। बदनमें जब तब रोमांच होकर कंपकंपी-सी आ जाती। पटनेके बड़े-बड़े डाक्टरोंके इलाजमें मैंने २०००) के करीब खर्च किये। पर रोग उल्टा बढ़ा।

इस बीच एक मित्रसे इस प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रका पता पाकर यहां आया। यहां मैं चौबीस रोजके उपचारमें चंगा हो गया। अपनी खोई हुई तंदुरुस्ती मुझे मिल गई। शरीरमें पहले जैसी स्फूर्ति और चपलता आ गई। रगोंमें खून हरकत करने लगा। मुझे इसपर आश्चर्य-सा हुआ कि इतनी जल्दी मुझमें यह परिवर्तन कैसे हो गया?

उपचार

तीन दिन फलाहार, १८ दिन रसाहार, एनिमा रोज। दोनों समय मिट्टीकी पट्टी और कटिस्नान। ४-५ मील टहलना। हफ्तेमें एक धुलाई एनिमा।

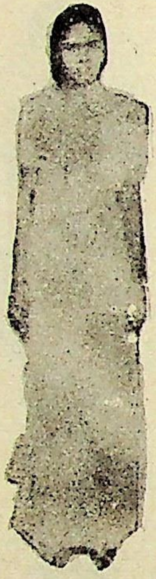
इस इलाजमें मेरे कुल १२५) खर्च हुए।

यहां मैंने सबसे अनमोल चीज हासिल की जीनेकी कला. यानी जीवनमें सादगी।

: ६१ :

कान-पकना

निर्मला पचीसिया



मैं अपनी मांकी शुश्रूषाके निमित्तसे यहां आई थी। कुछ दिनों बाद कानका निचला हिस्सा, जहां बाली पहनी जाती है, पक गया। कलकत्ता होते तो डाक्टरोंको जरूर दिखाते, मलहम लगाते और शायद सेप्टिकके भूतके भयसे पेंसिलिनके दस-पांच इंजेक्शन भी खाने पड़ते। पर यहांका बावा आदम निराला है। चिकित्सक मेरी मां को देखने आये तो मैंने उन्हें अपना कान दिखाया। मैंने सुन रखा था कि कोई बीमारी दिखाइए, फलाहार, रसाहार बतायेंगे। और एनिमा तो है ही। डाक्टरमें और इनमें बड़ा फर्क है। इस बातमें कि वह खूब खानेको कहता है और पड़े रहनेको, यह कहते हैं, खाना बंद करो और मस्तीसे घूमो। मेरा भी यही हुआ, बोले, कलसे रसाहार चले। ८-१० दिन यह क्रम चला। मैं दो सेर सूख गई, इतने दिनोंमें, और कान गरीब भी सूख गया। बीच में एक दिन ज्वर आया तो हुक्म हुआ—आज खाना बंद, एनिमा लो। दूसरे दिन ज्वर अपने रास्ते लगा।

इसी तरह मुझे कई बार कई शिकायतें हुईं और सब इसी तरीकेसे चली गईं।

: ६२ :

भयंकर क़ब्ज

मोतीलाल लखोटिया



इस ४३ सालकी उम्रमें मैं १८ सालसे कब्जका मरीज हूं। बिगड़ते-बिगड़ते हालत यहांतक बिगड़ी कि जुलाबसे भी दस्त नहीं लगता था। कब्जके परिणामस्वरूप सप्ताहमें एक-दो बार स्वप्नदोष होने लगा। पेशाबमें धातु जाने लगी। मनमें घोर अशांति रहती। किसी काममें मन न लगता। स्वभाव बिल्कुल चिड़चिड़ा हो गया। मामूली-मामूली बातोंमें गुस्सा आता रहता। जब-तब आत्महत्याकी प्रवृत्ति होती।

अपने रोगके लिए शुरू-शुरूमें कविराजी दवा ली। लाभ न होनेपर होमियोपैथी। तब एलोपैथी (डाक्टरी)। मैंने अनगिनत इंजेक्शन लिये। मेरा सारा शरीर बिंध गया। पेटेंट दवाइयां भी कम नहीं सेवन कीं। पर सब व्यर्थ।

फिर एक हकीमजीसे पाला पड़ा। उन्होंने एक रत्ती हीरेकी भस्म दी। उसकी कीमत ६००) रुपये ली। उस भस्मके साथ दो आनेभर बादामका तेल दिया, रोज, एक महीनेतक। रुपये गए, समय गया, पर मेरा कब्ज न गया। हालत कुछ बिगड़ी ही।

इन सबसे निराश होकर दिल्लीके एक प्राकृतिक चिकित्सालयमें गया। वहां चालीस दिन सिर्फ मौसंबीके रसपर रहा। खूब आंव निकला। मालूम होता मेरा सारा शरीर जैसे

आंव हो गया है। उसके बाद फलाहार पर रहा। चार महीनोंमें शरीर काफी ठीक हो गया। वहांसे मैं राजस्थान चला गया। वहां खूब तरबूज खाता और मौज से रोज ४-५कोस घूमता।

राजस्थानसे मैं फिर कूचबिहार लौटा। यहां ताकत बढ़ाने के लिए मक्खन और रसगुल्ले खूब खाये। धीरे-धीरे फिर हालत बिगड़ने लगी। कमजोर होने लगा। कमजोरी दूर करनेको पुष्टिकर खुराक खाता, पर शरीर बेकार ही होता गया। फिर राजस्थान जाकर भी कोई फायदा न हुआ। एक बार सात दिनों लगातार स्वप्नदोष होता रहा। साढ़े तीन सेर वजन चला गया। मुझे ऐसी चिंता होने लगी मानों मैं मौतके मुंहमें जा रहा हूं। अब हफ्ते-हफ्ते भर पाखाना न होता है। इसी दशामें मैं कलकत्ता आ गया।

वहां मेरे एक संबंधीने मुझे जसीडीह केंद्रके बारेमें बतलाया। साथ ही यह भी कहा कि इलाज तो वहां बहुत अच्छा होता है, पर आपकी इस वक्त जो दिमागी हालत है, उसमें वहां उपचार होना शायद कुछ कठिन है। क्योंकि वहांके चिकित्सक कुछ खरे स्वभाववाले हैं, पता नहीं आपको वहां लें न लें। संयोग-से चिकित्सक किसी कामसे कलकत्ता आये। मैं अपने संबंधीके साथ उनके पास गया। मेरी राम-कहानी ध्यानसे सुनकर उन्होंने कहा, जसीडीह आइए, सम्भव है वहां आपका रास्ता बैठ जाय।

जसीडीह आया तब मेरा वजन कुल १५५ था। मेरी कम-जोरी की हालत देखकर मुझे पंद्रह दिनोंतक तो रोटी और फल-दूध पर रखा गया। वजन १५५ से १५८ हो गया। पर रोग में कोई फर्क न पड़ा। तब २५ दिनों रसाहारपर रहा। रस रोज सेर-सवा-सेर लेता। वजन घटकर १५४ हो गया। रसाहारके बाद ४० दिन

का दुग्धकल्प किया; पर दस्त अपने-आप सहजमें न होता। दूसरे-तीसरे दिन एनिमाकी जरूरत पड़ती। चोकड़, बेल, अंजीर किशमिश सब लेता, लेकिन दस्त न होता। मेरा मन दुखी बना रहता कि देखो, सबको यहां लाभ होता है, मैं ही अभागा कैसा हूं कि मुझे फायदा नहीं होता।

मैंने चिकित्सकसे और एक रसाहार करानेकी प्रार्थना की। पर वह मेरी कमजोर हालत देखकर झिझकते थे। पर अंतमें उन्होंने मेरी बात मानी। दुग्धकल्पमें मेरा वजन ११९ हो गया था। इस रसाहारमें एनिमाके द्वारा मेरे पेटसे काफी आंव निकला। ज्यों-ज्यों आंव निकलता, मन को शांति मिलती। १८ दिनोंतक रसाहार करनेके बाद चार दिनतक पानी मिलाकर दूध लिया। इससे मुझे ४-५ दस्त रोज अपने-आप लग जाते। अब मैं खालिस दूध लेने लगा। दूध चार सेर तक पहुंचा। इस समय भी ४-५ दस्त रोज लगते। यों १५ दिन दूध चलाकर मैं दूध और आमपर आ गया। रोज ऽ२॥ दूध और ऽ२॥ आम ले रहा हूं। दस्त नियमित दो-तीन लग जाते हैं। वजन ११ऽ हो गया है।

मेरा विश्वास है कि इसी नियमपर चलकर मैं अपना पूरा वजन और शक्ति प्राप्त कर लूंगा।

अंतमें मैं यह कहना चाहता हूं कि मैंने अपनी १८ सालोंकी बीमारीमें ३०-३५ हजार रुपये तो जरूर खर्च कर दिये होंगे, पर प्राकृतिक चिकित्सा को छोड़कर किसी इलाजसे कभी मुझे लाभ न मिला। इतने डाक्टर, वैद्यों और हकीमों वगैरहका इलाज किया, कभी किसीने भोजन-सुधारकी बात नहीं की। और स्वास्थ्य की असली जड़ भोजनमें है, यह तो मैंने यहीं जाना।

: ६३ :

मंदाग्नि और अपच

जगदीशप्रसाद



मैं अप्रैल १९५५ में मंदाग्नि और अपचका शिकार हुआ। आसपासके डाक्टर-वैद्योंके यहां दौड़ा, पर कोई फायदा न हुआ। एक-दो डाक्टरोंने झूठमूठ टी० बी० का शक पैदा कराके डरा दिया। तब मैं पटना के नामी डाक्टरके पास पहुंचा। उन्होंने देख-दिखाकर कहा, तुम्हें कोई रोग नहीं है। तब मुझे भूख क्यों नहीं लगती, शरीरमें कमजोरी क्यों छाई रहती है, कुछ खाते ही पेट क्यों गुड़गुड़ाने लगता है? इन प्रश्नोंका मुझे कोई जवाब न मिला। बड़ी निराशा हुई। डाक्टरी पर से मेरी रही-सही श्रद्धा जाती रही।

प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र में बीस दिनके रसाहार और ३० दिनके दुग्धकल्पसे मेरे सारे रोग चले गए। मैं नई जिंदगी पा गया।

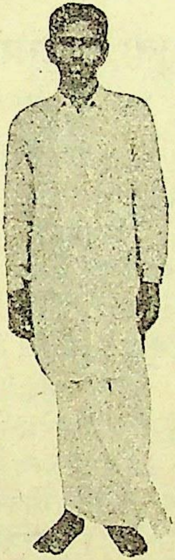
यहां मैंने स्वास्थ्य लाभ करनेके साथ खानपान और रहन-सहनका तरीका भी सीखा। अपने भोजन-व्ययके सिवा यहां मुझे सिर्फ डेढ़ रुपया रोज लगा, जितना पहले मैं अपने घरपर फजूल खर्च कर देता था। मैं इस चिकित्साका बहुत आभारी हूं।

एक बात मैं कहना भूल गया कि पटनाके डाक्टरने मुझे रोग कोई नहीं बतलाया, लेकिन दवा खानेको लिख दी थी।

: ६४ :

मंदाग्नि, धातु-दौर्बल्य, पायरिया

रामप्रकाश



सात सालसे मैं उपर्युक्त रोगोंसे पीड़ित था। घरेलू जड़ी-बूटियोंसे लेकर आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक और एलोपैथिक सभी तरहकी चिकित्सा मैंने कराई, पर स्थाई लाभ किसीसे न हुआ।

कब्जके लिए मैं एनिमा लेने लगा। भोजनमें भी सुधार किया। इसी साल अपने चाचाको, जो गठियाके मरीज हैं, जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रमें उपचारके लिए लाया। उन्हें काफी फायदा हुआ।

मैंने भी यहां २७ दिनका रसाहार किया अन्य उपचारोंके साथ। चार दिन कुछ कमजोरी जान पड़ी। फिर तो रोज-रोज शरीरमें ताजगी आती गई। रस मैंने तरबूज और जामुनका लिया। दिनमें तीन पावसे एक सेरतक लेता था।

२७वें दिन एक सेर दूधमें एक सेर पानी मिलाकर लिया। दूध पीनेके बाद ५वें दिनसे ही सुबह ५ बजे और शामको ३ बजे खुलासा पाखाना होने लगा। दोनों समय शौच आना तो मेरे लिए आश्चर्यजनक ही था। पायरिया भी काफी कम हो गया।

: ६५ :



खूनी बवासीर, हृत्कंपन, स्वप्नदोष

हुलासचंद रूंगटा

प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मैं रोगोंसे ऐसा मुक्त हुआ कि मुझे उनके नामकी यादसे भी मुक्ति मिल गई। कौन पुरानी पीड़ाको याद रखता फिरे ? गई बातको याद रखनेवालेको मूर्ख कहा गया है नीति शास्त्रमें। इसलिए बहुत कुछ तो मैंने बिसार ही दिया।

थोड़ा याद है—खूनी बवासीरसे तो मैं कई सालोंसे परेशान था, ऐसा कि सब भूलकर भी उसे नहीं भुला पाया हूं। हृत्कंपन, स्वप्न-दोष और सिर-दर्द तो था ही। केंद्रके रोगियोंके रजिस्टरमें तो मेरे सब रोग दर्ज होंगे। शारीरिक रोगोंके नाम गिना भी सकूंगा तो मानसिक रोगोंको गिनाना तो कठिन ही होगा। मैंने कितनी ही व्यर्थ चिंताएं मोल ले रखी थीं, उन सभीसे मेरा छुटकारा हो गया।

वहां हुए लाभोंको रोग-मुक्तिकी संकुचित संज्ञा न देकर जीवन-परिवर्तन कहना चाहिए।

पार्वती[1]की बेहोशी[2] और श्वेतप्रदरकी शिकायत वहां जो गई, सो गई ही। फिर लौटी नहीं। पार्वतीके साथ चिकित्सा करानेका बड़ा फल यह मिला कि घरमें मुझे अब इच्छानुसार उपयुक्त भोजन मिल जाता है।

डाक्टर-वैद्योंसे हमारा पिंड छूटा, यह कौन कम लाभ है ?

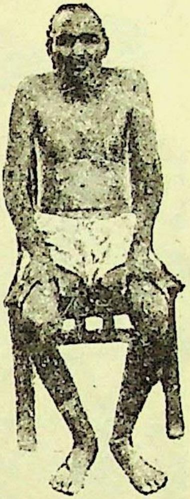
---

[1] हुलासचंद्रजीकी स्त्री, [2] हिस्टीरिया।

: ६६ :

दमा

किशनलाल जैन



बहुत साल पहले मुझे जुकाम हुआ और फिर वह नजलेकी (नाकसे पानी गिरना) शक्लमें बदल गया। उन्हीं दिनों एक चूहेने सिरमें काट खाया। उसके लिए डाक्टर द्वारा प्लेगके इंजेक्शन दिये जानेपर तेज बुखार आ गया। १००-डिग्री तो काफी दिनों रहा। कई इलाज करनेपर मैं ठीक हुआ। ९-१० महीने दूध-मट्ठेपर और फिर कुछ दिनों केवल सेब खाकर रहने पर तबीयत ठीक रहने लगी। बादको व्यापारके सिलसिलेमें कहीं जाने-आनेका काम पड़ने पर खानपानमें गड़बड़ी हुई तो फिर जुकाम और नजलेने दबाया। अंतमें उसीने बिगड़कर दमेका रूप धारण कर लिया। डाक्टरी, वैद्यक, हिकमत कई तरहके इलाज किये, पर जड़ न गई। दमा दौरेके रूपमें आता, कभी छः महीने निकल जाते, कभी महीने-दो महीनेमें ही आ जाता। आता तब बुरी तरह सताता।

मेरे भाई श्री मखनलाल जैनने मुझे प्राकृतिक चिकित्सा करानेकी सलाह दी। यहां कुछ दिनों रसाहार, फिर दस दिन दूध, और बादको २१ दिन मट्ठेपर रहा और अब रोटी-तरकारी खाने लगा हूं। भूख लगती है, जो पहले कम लगती थी। छः मील घूमता हूं। आसन भी करता हूं। शरीरमें फुर्ती मालूम होती है। नींद खूब आती है। आशा है कि अब श्वासका दौरा न आयेगा।



: ६७ :

ज्वर

श्यामसुंदर चौधरी

विमल (उम्र सात साल) को तथा अपने अन्य तीन बच्चोंको लेकर मैं जसीडीह हवा खाने आया था। यहां आकर विमलको बुखार आने लगा। १००-१०१ तक जाता। कलकत्तामें तो डाक्टरोंके सिवा कोई चारा न था, पर यहां हमारी कोठीसे कुछ दूर प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र है। मैंने फोनपर विमलके ज्वरकी चिकित्साके बारेमें पूछा। जवाब मिला, कल चिकित्सालय लाइए। मैंने पूछा आज खानेको क्या दें?

—संतरेका रस।

—सेब मांगता है।

—सेब आज नहीं। उससे कहिए, एक-दो दिनमें ज्वर उतरनेपर सेब देंगे।

सुबह मैं विमलको प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र ले गया। वहां उसे गुनगुने पानीका एनिमा दिया गया और गरम पानीसे मलकर नहलानेके बाद ठंडे पानीसे नहला दिया गया। हमने उसे दो-तीन दिनसे बिल्कुल नहलाया नहीं था, इसलिए कि, बुखारमें शरीरमें पानी लगाना हानिकारक समझा जाता है। तीन-चार दिनों यही क्रम चला। खुराकमें संतरेका रस दिया जाता रहा। कभी-कभी टमाटरका रस भी। एक हफ्तेमें बुखार चला गया, तब उसे दो दिन दूध-फल देकर रोटी दी जाने लगी।

विमल चंगा हो गया।

: ६८ :

नस-नसमें दर्द

परमेश्वरीदेवी खेतान



लगभग छः साल पहले मेरी छातीमें दर्द शुरू हुआ। बढ़ते-बढ़ते सारे शरीरमें हो गया। हाथ-पैरोंमें अधिक रहता। सारे बदनमें 'रील' चलती। धरतीपर पैर रखनेपर बिजलीका करंट-सा लगता। मेरी ऐसी हालत हो गई कि पानी या किसी ठंडी चीजको छूनेमात्रसे डर लगता। सिर बराबर दुखता रहता और शरीरकी नस-नसमें वेदना होती। आंखोंकी रोशनी भी घटने लगी। जीवनसे मुझे निराशा होने लगी।

कुछ स्त्रियोंने कहा, यह सब प्रसूत-ज्वरके कारण है। किसी-किसीने टी०बीका शक धराया। इसके लिए दो बार एक्सरेके चक्करमें पड़ी, पर फेफड़ोंमें कोई खराबी न निकली।

पतिको डाक्टरी दवामें विश्वास न होनेके कारण मैं डाक्टरीके फंदेमें तो न फँसने पाई। हां, १५-२० दिनतक कविराजकी दवा ली। लेकिन कुछ बना नहीं। पतिकी प्रेरणासे उनके साथ मैं

प्राकृतिक चिकित्साके लिए जसीडीह आई।

यहां मैंने २७ दिन, नित्य, सिर्फ एक गिलास नारंगीका रस लिया। रोज दोनों समय कटि-स्नान, पेड़ू पर मिट्टीकी पट्टी, आध-आध घंटे धूप-नहान, मालिश और हफ्तेमें एक भाप-नहान लेती। इन दिनों नित्य ५-६ मील घूमती। रसाहार समाप्त होनेपर १० दिन दूधपर रही। दूध अधिक-से-अधिक २ सेरतक पहुंचा। फिर १०-१५ दिन फलोंपर। पर इतनेसे पूरा लाभ न प्राप्त होनेपर १३ दिन फिर रसपर रहकर मैं दूध-फल लेने लगी। रोटी मुझे पूरे चार महीने नहीं मिली।

चिकित्सा-कालमें मुझे चार बड़े उभार आये। उस समय मैं मरणासन्न हो जाती। पुरानी सब तकलीफें उभर आतीं। लगता, अब मरी तब मरी। लेकिन चिकित्सकके यह विश्वास दिलानेपर कि यह उभार तो शरीरमें एकत्र हुए विकारकी सफाईके लिए आये हैं, मनको कुछ तसल्ली होती। उभारोंमें बहुत तकलीफ होनेपर कभी-कभी अविश्वास होने लगता कि कबतक यह होता रहेगा।

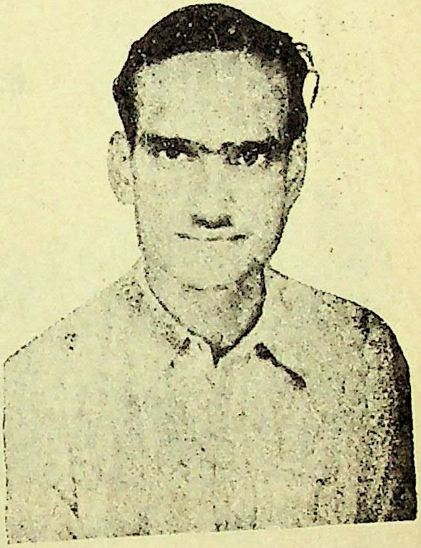
मुझे स्वस्थ होनेमें पूरे पांच महीने लगे। इस चिकित्सा द्वारा पाई हुई सीख एक धरोहरकी भांति जीवन-पर्यंत मेरे पास रहेगी। अब मैं काफी ठीक हूं। मेरा दर्द करीब-करीब चला गया है। मैं नित्य अढ़ाई सेर आटा पीसती हूं और घरका अधिक-से-अधिक काम करती हूं। २-३ मील रोज घूमती भी हूं। मेरा वजन पहले १।ऽ१ था जो अब १।ऽ१ है। वजन जाकर मुझे कोई कमजोरी नहीं, बल्कि स्फूर्ति और ताजगी मालूम होती है।

यहां मैंने जीवनमें सादगीकी कला सीखी है। मेरा वश चले तो मैं प्रत्येक रोगीको पकड़कर प्राकृतिक चिकित्सामें लगा दूं।

: ६९ :

वजन बढ़ा

गोविंदराम खेतान



मैं अपनी पत्नी श्री परमेश्वरीदेवीकी प्राकृतिक चिकित्सा कराने जसीडीह आया था। यहां चिकित्सकसे मैंने पूछा, मेरा वजन, जो मेरी उम्र और लम्बाई के अनुपातसे कम है, बढ़ सकता है क्या ?

उत्तर मिला, "यत्न करनेसे क्या नहीं हो सकता ?"

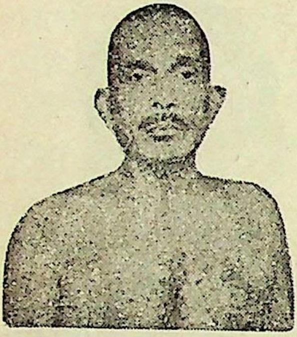
यों प्राकृतिक चिकित्सासे मेरा परिचय ६-७ साल पुराना है। मैं इस चिकित्साका कायल भी हूं। लेकिन इससे वजन बढ़नेवाली बात मेरे दिमागमें नहीं समाती थी।

चिकित्सककी सलाहके अनुसार मैंने एक महीनेका रसाहार किया। इस बीच मेरा वजन १५४।। से घटकर १५ ही रह गया लेकिन फिर बढ़कर १५९ हो गया। शरीरमें विशेष स्फूर्ति आगई; साथ-साथ मनसे यह गलत संस्कार जाता रहा कि इस चिकित्सासे वजन बढ़ता नहीं है।

: ७० :

पेट-दर्द, लीवर तथा दमा

नारायणदास



मुझे पाखाना बड़ी मुश्किलसे होता था। पेट बहुत ही सख्त रहता था, बीच-बीचमें दर्द भी हो जाता था। डाक्टरने लीवर बतला दिया था।

पेटकी तकलीफ पांच सालसे थी और सांसकी (दमा) सात-आठ सालसे।

मैंने रानीगंज, आसनसोल, तथा कलकत्ताके कई डाक्टरोंके पीछे ७००–८००) रुपये खोये, लेकिन कोई लाभ न हुआ।

रानीगंजके श्री गोविंदरामजी खेतानकी प्रेरणासे यहां प्राकृतिक चिकित्सा करानेपर मुझे अद्भुत लाभ मिला।

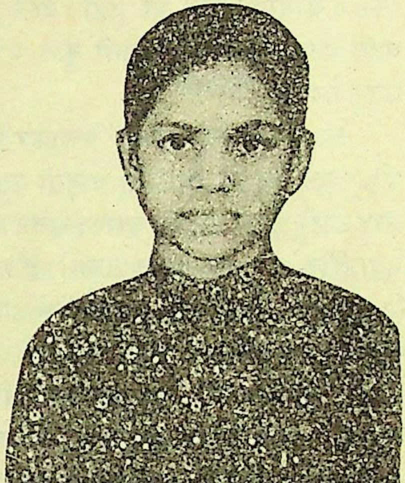
मैं रसाहारके दिनोंमें ७-८ मील रोज घूमता था और बाजारसे ५-७ सेर फल-तरकारी ले आता था, अपने तथा लोगोंके लिए।

यहां मेरे किराये, उपचार फीस तथा खाने-पीनेमें कुल २२५) खर्च हुए। मुझे यहां सोलह आना फायदा हुआ है।

: ७१ :

मियादी बुखार

रामकृष्ण सोमानी



मेरी छोटी लड़कीको (प्यारका नाम 'बेबी' पड़ गया है) एक दिन खूब तेज बुखार आया। रात-भर बना रहकर दूसरे दिन सुबह कुछ कम हुआ। नित्यकी तरह उसे ठंडे पानीसे स्नान कराया गया। खुराक में, दूध बंद करके, सिर्फ नारंगीका रस दिया गया। जब ज्वर तीन दिन बराबर बना रहा तो मीयादी बुखारका संदेह हुआ। थर्मामीटरसे देखने लगे। सुबह १०१॥ रहता, शामको ४ बजे १०३॥। अब मीयादी निश्चित हो गया।

एक दिनका अंतर देकर उसे एनिमा देते। सारा शरीर गरम पानीसे धोकर सिर ठंडे पानीसे धो दिया जाता। खुराकमें, दिनमें, जब मांगती, नारंगीका रस अथवा शहद, पानी नींबू डाल कर दिया जाता। दस दिन यही क्रम चला। फिर रोज दस-पंद्रह दस्त होने लगे। डाक्टर-वैद्योंके हिसाबसे तो मीयादी बुखारमें इतने दस्त आना बहुत बुरा लक्षण माना जाता है, लेकिन हम लोगों

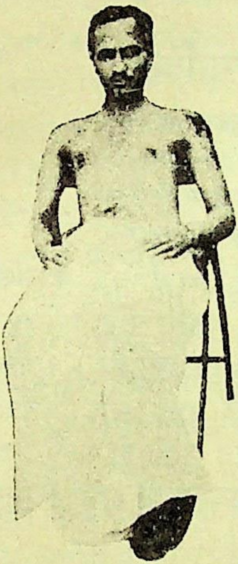
ने तो प्राकृतिक चिकित्साकी दृष्टिसे माना कि विकार शीघ्र निकल जायगा। हुआ भी वही। दस्त शुरू होनेके बाद ही क्रमशः घटते-घटते १४ दिनोंमें यानी कुल २४ दिनोंमें बुखार एक दम उतर गया।

तब दो रोज दूध-पानी मिलाकर दिया गया। फिर दस रोज केवल दूध, जितनी बार वह चाहती उतनी बार। उसके बाद साग और रोटी शुरू की गई। उसका वजन पहलेकी अपेक्षा काफी बढ़ गया और स्वास्थ्य बहुत अच्छा होगया। मेरी दूसरी लड़की विमलाका स्वास्थ्य भी कुछ दिनोंसे ढीला चल रहा था। बेबीका सुधरा हुआ स्वास्थ्य देखकर हम सोचते कि इसे भी मियादी बुखार आजाय तो इसका काम भी बन जाय। एक दिन दुकानसे घर गया तो देखा बिमला लेटी हुई है। हाथ लगाकर देखने पर बुखार तेज जान पड़ा। जब दो-तीन दिन न उतरा तो सोचा गया कि इसे भी मियादी हो गया है। बेबीवाला प्रयोग इसपर भी दोहराया गया। इसका ज्वर २८ दिनमें गया। इसे ३ दिन दूध-पानी और २० दिन दूध दिया गया। फिर रोटी तरकारी। इसका स्वास्थ्य भी पहलेकी अपेक्षा बहुत अच्छा हो गया और वजन भी बढ़ा है। इतना और कह दूं कि पीनेका या रसमें मिलानेवाला पानी उबाला हुआ होता था।

: ७२ :

कब्ज

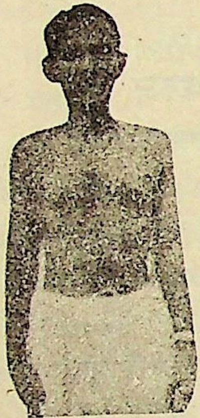
गिरधारीलाल सराफ



शहरमें बसने वालोंमें गिने-गिनाये लोग ही होंगे, जिन्हें कब्जका रोग न हो। महीनोंमें मुश्किलसे कोई मौका होता था जब मेरा पेट साफ होता था। मेरी भूख गायब होगई, खानेपर अरुचि हो गई। मुंहसे बदबू आती रहती। कामसे मन उचट गया। मुझे जीवन-से निराशा होने लगी। गौहाटीका कोई डाक्टर, वैद्य न बचा जिसकी दवा मैंने न खाई हो, और रुपये न ठगाये हों। कलकत्ताके डाक्टरोंकी दवाइयोंमें भी बहुत रुपये खर्च हुए।

मैं अपनी स्त्री गीता, बहन अन्नपूर्णा और छोटे भाई कैलाश के साथ जसीडीह आया। हम सबका इलाज एक ही तरहसे शुरू हुआ, यद्यपि रोगके लक्षण सबके अलग-अलग थे। अन्नपूर्णा को बेहद थूकनी थी, गीताको भयंकर श्वेतप्रदर और असुप्तता, कैलाशको डाइब्रिटीज और मुझे घोर कब्ज था और सबको वही कटिस्नान, मिट्टीकी पट्टी और भाप-स्नान और सबको रसाहार। इसी-को कहते हैं सबको एक लाठीसे हांकना। चिकित्सक कभी-कभी मजाकमें कहते भी, कि हम सब रोग-पशुओंको एक ही लाठीसे हांकते--भगाते हैं। यहां के उपचारों से मेरे सब रोग जाते रहे।

: ७३ :



आमातिसार

मधुसूदनलाल दास
पर्सनल असिस्टेंट
भूतपूर्व हेल्थ मिनिस्टर
(बिहार सरकार)

मैंने जबसे होश संभाला, कब्जका शिकार रहा। उसके परिणामस्वरूप पहली बीमारी अनिद्राकी हुई। रातको देरसे नींद आती, कुछ ही घंटों बाद टूट जाती और फिर तो कितनी ही कोशिश करनेपर भी न आती। आती तो सपने देखा करता। सुबह ताजगी न रहती, थकावट लगती। नींदके बाद भूखने भी मुझसे मुंह मोड़ना शुरू किया।

सलाहके लिए मैं गरदनीबाग, पटनाके सहायक सिविल सर्जन से मिला। उन्होंने मुझे कलसिब्रोनेट (Calcibronate) नामकी दवा दी। पूरी शीशी खा गया, लेकिन कोई लाभ न हुआ। तब पैखाना जांच कराकर क्रॉनिक एमोबिक डिसेन्ट्री (chronic amobic dysentry) ठहराकर उसकी नवीनतम दवाइयां दीं। साथ ही यह भी कह दिया कि इससे तुम्हारी तकलीफ कुछ कम हो जायगी, लेकिन जड़से नहीं जायगी, बिहारके ९० प्रतिशत व्यक्ति इस रोगके शिकार हैं। इसका जो असर मेरे मनपर हुआ उसका अंदाज पाठक स्वयं कर सकते हैं। उन दवाइयोंसे लाभके बदले कुछ नुकसान ही समझमें आया मेरे।

दिसम्बर १९५५ में एक मित्रकी सलाहसे आयुर्वेदिक चिकित्सा शुरू करके तीन महीने चलाई। उससे भी कुछ फायदा न हुआ। तब होमियोपैथीके बड़े डाक्टर एन सी० घोषकी दवा ली, दो महीने। वह भी बेकार हुई। गत जुलाईमें मैं बिहार सरकारके कैंपके साथ रांची गया। वहांके बड़े अस्पतालके एक एम. आर. सी. पी. (M.R.C.P.) डाक्टरकी सलाहसे फिर पैखाने-पेशाबकी जांच कराईं गईं। इस बार कोई खराबी न आई, इसलिए कि पतले पाखानेमें कीड़ोंका पता चलता है, बंधेमें नहीं। मुझे पाचककी एक दवा दे दी गई। सरकारी कर्मचारी होनेके नाते मुझे सब सरकारी चिकित्सकोंकी सलाह और दवा मुफ्तमें मिलती थी। लेकिन किसी दवाने मुझपर कोई असर न किया।

इसी समय पटना जंक्शनके ह्वीलरके बुकस्टालसे जुलाई १९५६ का 'आरोग्य' मैंने खरीदा। उसका एक लेख पढ़कर मुझे लगा कि मेरी बीमारी कब्जके सिवा कुछ नहीं है। सब कब्जका ही परिणाम है और यह कब्ज प्राकृतिक उपचारसे ही जा सकता है।

संयोगसे इसी समय पटना हाईस्कूलके सहायक शिक्षक श्री वंशी पंडितसे मेरी भेंट हुई। उन्होंने मुझे अपने घरके प्राकृतिक चिकित्साके कई अनुभव सुनाए। उन्होंने बताया कि इसी इलाज-की बदौलत उनके छोटे भाईकी स्त्री, जो जलोदरसे पीड़ित थी, उठकर चल नहीं सकती थी, अब बड़े सवेरे उठकर गंगा नहाने जाती है और वहांसे घड़ाभर पानी लाती है। वह स्वयं वर्षोंसे आंवकी बीमारीसे पीड़ित थे, इसी इलाजसे अच्छे हुए। उनकी स्त्री और उनके छोटे भाई भी। उन्होंने मुझे प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र, जसीडीह जाकर इलाज करानेका विशेष

अनुरोध किया। इसपर मैंने वहां जानेकी पूरी तैयारी कर ली। अपने एक पूज्य शुभचिंतकसे विदा लेने गया। उन्होंने अनुमति तो दी, लेकिन कहा कि एक बार पटनाके बड़े डाक्टर टी० एन० बनर्जी साहबको दिखा लो, फायदा न हो तब प्राकृतिक चिकित्साके झमेलेमें पड़ना। डाक्टर बनर्जी पटनेके ही नहीं, भारतके प्रमुख डाक्टरोंमें गिने जाते हैं। मैंने एक वर्ष डाक्टर-वैद्योंके चक्कर में गंवाया तो एक महीना और सही। डाक्टर बनर्जीने फिरसे मेरी पूरी जांच—पेशाब पैखाना वगैरह की—करवाकर रिपोर्ट देखनेके बाद तीन हफ्तेकी दवा देकर कहा, इससे पाचनशक्ति ठीक हो जायगी, कब्ज और कमजोरी भी जाती रहेगी। तीन हफ्तेमें विशेष लाभ न देखकर मैं उनके पास गया तो बोले, एक हफ्ते दवा छोड़कर फिर तीन हफ्तेका एक कोर्स लो। मैं दिन-ब-दिन कमजोर होता जा रहा था। वजन एक मन बीस सेरसे घटकर एक मन तेरह सेर रह गया था। अब एलोपैथीमें तीन हफ्ते और ठहरनेकी मेरी हिम्मत नहीं रही।

मैंने २६-१०-५६ को अपने स्वास्थ्य-मंत्रीसे मिलकर प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र जसीडीह जानेकी अनुमति मांगी। मेरी गिरती हालत देखकर उन्होंने अनुमति दी और इतना ही नहीं, जसीडीहके एम० एल० सी०—श्री गौरीशंकर डालमियासे मेरी व्यवस्था करा देनेका अनुरोध किया।

जसीडीह पहुंचा उस समय मेरा वजन एक मन सवा ग्यारह सेर था।

उपचार

रोज दो कटि-स्नान, घूमना, मिट्टीकी पट्टी, एनिमा, हफ्तेमें एक भाप-स्नान, धूप-स्नान। खुराकमें पहले चार दिन फला-

हार, फिर पंद्रह दिन रसाहार—फलोंका रस। बीसवें दिन एक सेर दूध जो बढ़ते-बढ़ते रोज साढ़े पांच सेर तक पहुंचा। दूधसे मुझे कब्ज होने लगा तो उसके साथ दिनभरमें दो-तीन अमरूद, चार-पांच हरे आंवले और आध छटांक चोकड़ लेने लगा।

रसाहारमें मैं चार सेर और घट गया, लेकिन उससे कोई कमजोरी नहीं जान पड़ी। बीस दिनोंके दूध-कल्पसे उतना आ गया और अब तो चार सेर और बढ़ गया है। पर वजनकी अब मुझे चिंता भी नहीं रह गई है। मुझे यहां मालूम हो गया कि वजनका और स्वास्थ्य तथा शक्तिका कोई सीधा संबंध नहीं है। वजन कम रहकर भी स्वास्थ्य अच्छा रह सकता है और ज्यादा रहकर स्वास्थ्य खराब रहते तो यहां बहुतोंको देखा, मैंने।

लाभ

मेरी सारी तकलीफें जाती रहीं। शरीर और मनमें एक नई स्फूर्त्ति मालूम होती है। मुझे भूख कम लगती थी, आजकल रोटी-तरकारी खाते हुए और दिनमें तीन सेर दूध पीनेपर भी मुझे भूख बनी रहती है। नींद कम आती थी, अब सात बजे शामसे ही सोनेके लिए मन छटपटाता रहता है। छः-सात घंटेकी एक गहरी नींद आती है और आंख खुलते ही जोरकी हाजत होती है, पैखानेकी। काममें मन नहीं लगता था, अब वह बात नहीं है। मन हमेशा प्रसन्न रहता है। सुबह-शाम तीन-तीन मील (पांच मील प्रति घंटे की चाल से) घूमता हूं।

मेरा खयाल है, रोगके आरंभमें ही प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ली जाय तो विदेशी दवाओंके पीछे बरबाद होनेवाला राष्ट्रीय धन बचेगा और राष्ट्रका स्वास्थ्य भी।

: ७४ :

यकृत

संपादक



एक दिन नरेंद्र के पिता, जो मुंगेर जिलेके किसी स्कूलके अध्यापक हैं, उसे प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र, जसीडीह, दिखाने लाए। सुनाया कि इसका यकृत बढ़ गया है, इसे चार महीने पटनेके बड़े अस्पतालमें रखकर इलाज होनेके बाद कहा गया है कि यकृतका आपरेशन करना पड़ेगा और उसमें जान जानेका खतरा है। बातचीतसे मालूम हुआ कि अभी सिर्फ सलाह लेने आए हैं। अधिक काममें था, कह दिया, अच्छा लाइयेगा, देखा जायगा।

सोचा था, चले जायंगे, पर वे लोग गये नहीं, बैठे ही रहे, सामने बेंचपर। जब कामसे फुर्सत हुई तो नरेंद्रकी ओर फिर नजर गई। चेहरा एकदम सुस्त, त्वचा शुष्क, फीकी, बेजान-सा लग रहा था। मैंने कहा, जरा कमीज उतार दो। देखा तो सीना तंग, पेडू के पास का हिस्सा एकदम तना हुआ। डाक्टर ने कहा है, यकृत का आपरेशन करना पड़ेगा, यह केस प्राकृतिक चिकित्सामें कैसे ठीक हो सकेगा। फिर सोचा, कह चुका हूं कि लेआइये तो अब कैसे नहीं कहूं। मनमें हुआ, शायद न लाये तो अपनी बात रह जायगी। दूसरे रोगियोंसे कुछ और पूछा-जांचा और चला गया।

पांच-सात दिनके बाद नरेंद्र आ पहुंचा। वजन किया गया,

सिर्फ ३९ सेर। इलाज शुरू हुआ। पैसोंकी तंगीके कारण और कुछ अन्य कारणोंसे रस कम दिया गया, बदलेमें डेढ़-दो सेर खजूर-की नीरा दी गई। अन्य सब उपचार भी चले। १९ दिनोंमें खूब पेट साफ हुआ। बराबर काला मल निकलता रहा। पेट छः अंगुल छोटा हो गया। अब घी निकालकर मट्ठा दिया जाने लगा, जो ५ सेर रोज तक बढ़ा। वजन भी ४ सेर बढ़ गया। नरेंद्रका चेहरा-मोहरा सब बदल गया। जो नरेंद्र आधा मील नहीं चल सकता था, वह चार-पांच मील का चक्कर काटने लगा। नरेंद्रको तो खुशी हुई ही होगी, मुझे भी उसके अच्छे हो जाने की कम खुशी नहीं हुई। जिन्हें हम यह समझकर लेते हैं कि अच्छे हो जायंगे उनके भी अच्छे होने में खुशी तो होती ही है, पर जिनके संबंध में शंका होती है उनके अच्छे होने में तो और भी ज्यादा खुशी होती है।

: ७५ :

मियादी बुखार

प्रेमचंद मूंदड़ा



गत दस वर्षोंसे बीमार न पड़ा था। कारण, नौहर (राजस्थान) में खान-पान प्रायः ठीक रखता या कहूं रहता। जून १९५४ में कलकत्ता आया तो चाय पीने लगा और रेस्टोरेंट-होटलमें खानेका चस्का भी लगा। कब्ज रहने लगा, खाना हजम न होता, भूख कम हो गई। कई सालतक यही हाल चलता रहा। १५ जनवरी '५७ को सुबह उठा तो सिरमें दर्द था और शरीरमें भारीपन। यह सोचकर कि रातको नींद कम आई होगी, उसीका यह फसाद है, मैंने परवाह न की और शौचादिसे निवृत्त होकर कालेज चला गया। पर सिर-दर्दके कारण वापस घर आकर लेट जाना पड़ा। ज्वर आगया। चार दिन घरेलू इलाज चला। पांचवें दिन डाक्टर आया। नाड़ी देखी, टेम्परेचर देखा, जो १०४ था। स्टेथेस्कोप लगाया, पेट बजाया, जीभ देखी। बोले, मलेरिया बुखार है। लाल रंगका कड़वा मिक्सचर पीनेको और सफेद रंगकी पुड़िया खानेको दी। खानेके लिए दूध, बार्ली, साबूदाना, संतरे, अनार वगैरह बताए। पांच दिनमें तीन बार आये यह डाक्टर। इनसे कहा गया कि आप मलेरिया कहते हैं, पर बुखार तो बराबर बना ही रहता

है, प्रायः कम भी नहीं होता। बोले, आप लोग नहीं जानते, एक मच्छर काट जाता है तो उसका असर बारह घंटे रहता है, फिर दूसरा काटता है तो इसी तरह उसका भी बारह घंटे रहता है। मुझे दस्त नहीं होता था। इसके लिए मैंने रेंडीका तेल (कास्टर आयल) या बुकलेक्सकी टिकिया लेनेको पूछा तो बोले, नहीं, दस्त ज्यादा लग जायंगे, कमजोरी आ जायगी। दूधपर मुझे अरुचि हो रही थी। इसके लिए कहा तो बोले, जबर्दस्ती पीयो, नहीं तो कमजोरी आयेगी। तीसरी बार आये तो बोले, बुखार उतरता नहीं है, खून जंचवाना होगा। खून जांचनेको यही डाक्टर अपने साथ एक और डाक्टरको लाये। खून जंच जानेपर 'टायफाइड' कायम किया गया। अब इसके लिए हरे-हरे रंगकी क्लोरोमायसिटिन नामकी दवा चली। पहली कई दवाइयां, जिनकी शीशियां अभी खोली भी न गई थीं, बेकार हुईं।

इसी बीच मेरे ममेरे भाई श्री लेखरामजी और श्रीगजानंदजीने मेरे हाल सुने तो मुझे अपने घर ले गए। ज्वरका ग्यारहवां दिन था, मेरा। वहां जाकर जो उपचार हुए—सुबह शौचके बाद मिट्टीकी पट्टी, एनिमा, दोपहरको गरम पानीसे शरीर पोंछा—स्पंज—किया जाता। शामको फिर मिट्टीकी पट्टी। खुराकमें शहद और नीबू डालकर पानी पिलाया जाता और संतरेका रस दिया जाता। मुझे एनिमासे दस्त नहीं होता, पर अपने-आप तीन-चार दस्त हो जाते। सात रोज यह क्रम चला। इससे सिर दर्द वगैरहकी बेचैनी तो जाती रही, पर ज्वर रोज शामको १०३-१०४ तक होता। इसी समय मुझे सात-आठ दस्त रोज होने लगे।

मेरे मामाजी ज्वर न उतरने के कारण चिंतित हो गए। श्री गजानंदजी से, जो मेरा इलाज कर रहे थे, बोले, डाक्टर-

की दवा मत दो, दिखा तो दो, कहीं केस बिगड़ न जाय। डाक्टर आया, देखकर दवा लिखी, खानेका एक लंबा-सा चार्ट बनाया और बोला, इसे टायफाइडके साथ मिड्‌लपाक्स (ओदरी-बोदरी) भी हो गया है—यह फुंसियां उसी दिन निकली थीं। पर कोई हर्ज नहीं है, दवा लीजिए। तीन दिनमें ठीक हो जायगा। पर किसीको दवा लेनेकी न जंची। भरे मामाजीने मेरी कमजोरी देखकर मुझे होमियोपैथकी दवा दिलानेका आग्रह किया। उन्होंने कहा, कुछ लाभ न करेगी तो होमियोपैथीकी दवा कुछ नुकसान तो न करेगी।

होमियोपैथ आया। उसने भी जांचका वही तरीका बरता, जो एलोपैथीवालोंका होता है। फिर, अबतकके हुए उपचारोंका विवरण पूछा। एनिमा का नाम सुनते ही चौंककर बोला, बुखार में एनिमा ! इसीलिए इतनी कमजोरी आई है। मेरी दवा लेते तो मैं कभी इतना कमजोर न होने देता।

दवा शुरू हुई। दस्त कम हुए। पुराना काला मल निकलना बंद हुआ। ज्वर धीरे-धीरे कम होने लगा, लेकिन ९९ से नीचे न गया। छः-सात दिन तक यही हाल रहनेपर यह खयाल करके कि कमजोरीके कारण ज्वर टिक रहा है, मुझे दूध दिया जाने लगा। यह ज्वरका पैंतीसवां दिन था। अब मेरी भूख बढ़ी, दूधके साथ फल भी लेने लगा। तीन-चार रोज बाद कुछ अन्न भी खाने लगा। थोड़ी ताकत मालूम हुई, घूमने लगा। पर अन्न लेते पांच ही रोज हुए होंगे कि जुकाम होकर दूसरे दिन १०२ डिग्री ज्वर हो गया। अब मैं बहुत घबड़ाया। किसीने कहा, अन्न जल्दी शुरू कर दिया, किसीने ठंडी हवाको दोषी ठहराया, किसीने नजर लग गई कहा। मैं किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर सबकी सुनता रहा।

मेरे भाईसाहबकी घबड़ाहट मुझपर क्रोधके रूपमें प्रकट हुई। मैं रोने लगा। पर भाई लेखरामजीने मुझे धीरज बंधाया और बहुत प्यारसे समझाया। फिर वही प्राकृतिक उपचार शुरू हुआ। एनिमासे दो बार दस्त हुआ, फिर अपने-आप पहले की भांति छः-सात दस्त होने लगे। चार-पांच रोज बाद दस्त कम हुए और ज्वर दो-तीन दिनतक ९९ रहा। तब मुझे एक बार भीगी चादरका लपेट दिया गया और एक बार भाप-स्नान। अब ज्वर ९७ हो गया। इस प्रकार ५२-५३ रोजमें मुझे बुखारसे छुटकारा मिलने पर भी छः-सात रोजतक रस तथा फलपर रखा। इसके बाद १४-३-५७ को मैं श्री लेखरामजीके साथ जसीडीह आ गया। मेरा वजन एक मन ग्यारह सेरसे घटकर एक मन रह गया, फिर भी मुझमें शक्ति रह गई थी। मैंने जसीडीहमें बिना सहारेके पैदल चलकर रेलका पुल पार किया। इतने लंबे मियादी बुखारके बाद भी इतनी शक्तिका रह जाना प्राकृतिक उपचारका चमत्कार ही था। दूसरे उपचारोंमें तो रोगी एकदम खाटसे लग जाता है, लंबे टायफाइड में।

जसीडीहमें आते ही मेरा दूध-कल्प शुरू हुआ। दूध बढ़ते-बढ़ते रोज पांच सेर तक पहुंचा। ३१ दिनमें मेरा वजन सवा आठ सेर बढ़ा। ज्यों-ज्यों ताकत बढ़ी, मैंने घूमना बढ़ाकर रोज दोनों वक्तमें छः मील कर दिया। अब मैं दोपहरको रोटी और सुबह-शाम दूध-फल लेता हूं। रोटी बहुत स्वाद लगती है। अब मैं अपने को बिल्कुल स्वस्थ समझता हूं।

प्राकृतिक उपचारोंमें वक्त तो काफी लगा, पर शरीरमें वर्षों-से जमी गंदगी निकलकर शरीर स्वच्छ हो गया।

: ७६ :

सिरदर्द, हृत्कंपन, जोड़ोंमें दर्द, कब्ज, अनिद्रा



मदनलाल अग्रवाल बी० काम०

मैं दो वर्षोंसे उपर्युक्त रोगोंसे पीड़ित था। कलकत्ता, तातानगर और अपने घर संबलपुरके बड़े डाक्टरोंसे राय ली। डाक्टरोंने रक्त-चाप (Blood pressure) और वैद्योंने वायु-विकार बताया। निदान से संतोष न होनेपर मैंने उनकी दवाइयां खाईं, पर कोई लाभ न हुआ। तब मैंने आहारमें संयम करके आराम होनेका निश्चय किया, लेकिन कोई ठीक पथप्रदर्शक न मिलनेके कारण वह न कर सका। प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रमें जानेका इरादा किया तो लोगोंने बेतरह डराया, वहां तो भूखों मार देते हैं, दुबला कर देते हैं इत्यादि। पर मैं उन बातोंपर ध्यान न देकर २१-३-५६ को प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र जसीडी हमें भर्ती हुआ।

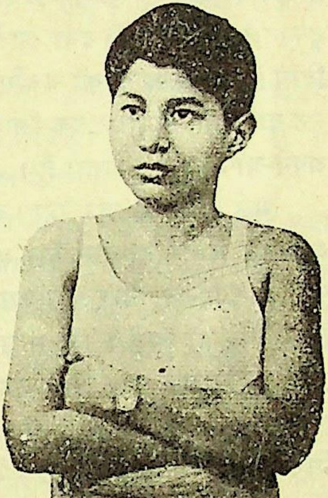
यहांके उपचारसे मेरे उपर्युक्त रोग तो गए ही, दो और ऐसी बातें हुईं मेरे साथ कि उनका मुझे आश्चर्य है। यहां मेरा चश्मा छूट गया, कानमें पीप आती थी, वह बंद हो गई।

मैंने यहां यह सीखा कि जीवन बितानेके सही तरीकेका नाम ही प्राकृतिक चिकित्सा है। सात्विक आहार-विहार और शुद्ध मानसिक विचार प्राकृतिक चिकित्साकी कुंजी है।

: ७७ :

टायफाइड

सुरेश जयपुरिया



लगभग दो महीने पहलेकी बात है, दिनमें मुझे कुछ जाड़ा-सा लगा। मैंने घरमें किसीसे कहा नहीं। दूसरे दिन नित्यकी भांति स्कूल गया, लेकिन सिर-दर्द लिये। अध्यापकसे छुट्टी लेकर घर जल्द लौट आया। सिर तो दुख ही रहा था, आते ही जाड़ा लगने लगा और शाम होते-होते एकसौ चार डिग्री ज्वर हो आया।

मैंने सुन रखा था कि बहुत-से रोगोंका कारण क़ब्ज होता है, इसलिए मैंने अपने पिताजीसे एनिमा लेनेको पूछा। स्वीकृति पाकर मैंने अपने-आप एनिमा लिया, पर पेट साफ न हुआ। दो दिन ज्वर उतना ही बना रहा। नाकसे बहुत खून आने लगा। यों भी मुझे अक्सर नकसीर फूटा करती थी,

मेरे चाचाजीने पिताजीसे कहा, भाई, लड़केको बुखार बढ़ता जा रहा है, नाकसे ख़ून आ रहा है, किसी वैद्य-डाक्टरको क्यों नहीं दिखाते ? पिताजीने तो फोनपर जसीडीह से फूफाजी (श्री महाबीरप्रसादजी पोद्दार) से मेरे सब हाल बताकर उपचार पूछ लिया था, इसलिए निश्चिंत थे, लेकिन चाचाजीके

बहुत आग्रह करनेपर वैद्यको बुलाया। उन्होंने टायफाइड (मियादी बुखार) करार दिया। एक नुस्खा लिख गये। उनकी दूकानसे पांच रुपयेकी दवा आई। पर मैंने लेनेसे इंकार कर दिया। अपने फूफाजी की चर्चाएं सुनकर दवापरसे मेरा विश्वास उठ गया था। टायफाइडके लिए तो मैंने सुन ही रखा था कि वह अपने-आप समयसे जाता है।

मुझे २१ दिन ज्वर रहा। अधिक-से-अधिक १०५ तक गया। शुरू-शुरू में मैंने दो-तीन बार एनिमा लिया। फिर तो खूब पानी पीने और दिनमें चार बार रस लेनेके कारण मुझे एक-दो दस्त अपने-आप हो जाते। रस मैं संतरेका लेता, पांच-पांच छटांक करके, और एक बार आध सेर अनारका। पानी कुल अढ़ाई-तीन सेरके लगभग पीता। स्पंज रोज किया जाता, गरम पानीसे, सिर ठंडे पानीसे धोया जाता। मेरा वजन ३९ सेर से घटकर ३६ सेर रह गया।

ज्वर उतर जानेके बाद मैं दूध पीने लगा। दूध रोज तीन सेर तक पहुंचा। दूधके साथ कुछ फल भी लेने लगा। मेरा वजन अब ४५ सेर हो गया है, यानी तीन सेर जो चला गया था वह आ गया और ६ सेर और। इस प्रकार मेरे लिए टायफाइड लाभ-दायक सिद्ध हुआ।

मेरी लंबाईके खयालसे इससे ज्यादा वजनकी जरूरत न समझी जानेके कारण मैंने अपनी खुराक अब इस प्रकार कर दी : सुबह आध सेर दूध, ११ बजे तीन फुल्के (एक छटांक आटे के) और १ पाव तरकारी, उबली हुई, जीरा नीबू देकर, नमक अलग रख लेता हूं और इच्छा होती है तो थोड़ा-सा खा लेता हूं। ३ बजे शामको तीन आम। शामको ६ बजे आध सेर

दूध और फिर रातको ८ बजे तीन फुल्के और एक पाव तरकारी। इस खुराकसे मेरी तंदुरुस्ती बहुत अच्छी है। शौचमें एक-दो मिनटसे ज्यादा नहीं लगते।

अगर मैं दवाके चक्करमें पड़ा होता तो इक्कीस दिनमें सैकड़ों रुपये खर्च हुए होते और मियादी बुखारके बाद जो मैं अधिक स्वस्थ हुआ वह तो हर्गिज न होता।

मेरी एक छोटी बहनको मुझसे कुछ पहले टायफाइड हुआ था। उसका इलाज एक आयुर्वेदाचार्यके द्वारा हुआ। अच्छी तो वह हुई, लेकिन कई महीने हो जाने पर भी अबतक उसमें वह पूर्ववाली स्फूर्ति नहीं आई है। इस दृष्टिसे मैं बिना दवाके अपनी बहनसे कहीं अधिक अच्छा रहा। मेरा और मेरी बहन का मुकाबला करके मेरे ताऊजी और चाचाजी भी कहने लगे हैं कि यह बेदवा-वाला ही अच्छा रहा, लेकिन इतना देख-सुनकर भी, दवासे पिंड नहीं छूटता लोगोंका। मेरी एक भाभीको मंदाग्नि हो गई, उसके लिए उन्हें दवा दी जाती है। मैं उनसे मजाक में कहता हूं, मेरा इलाज करो तो मैं तुम्हें हफ्ते भरमें ठीक कर दूंगा। पर मैं लड़का ठहरा, कौन सुने मेरी !

: ७८ :

मोटापा, कब्ज, खाज

रुक्मिणीदेवी



सन् १९४० में अपने विवाहके समय मैं पतले शरीरकी स्वस्थ, सुंदर लड़की थी। १९४५ में मेरे एक बच्चा हुआ। प्रसवके समय ही मेरे स्तनोंमें घाव हो गये। बहुत पीड़ा रहती, मैं बच्चे को दूध न पिला सकती। वह दूध पिलानेको रोका भी गया था। छातीसे दूध रबर पंपसे निकाला जाता। उन घावोंके लिए मुझे बहुत दवाइयां खिलाईं, लगाईं गईं।

घाव गये, लेकिन तबसे न मालूम क्यों, मैं मोटी होने लगी। चलने-फिरने और काम करनेमें हांफने लगी। इसी समयसे मुझे कब्ज रहने लगा। ईसबगोलकी भूसी और फ्रूट साल्टसे दस्त होता। शरीर में बहुत दाद हो गये। गरमीके दिनोंमें फुंसियोंसे सारा शरीर फूल जाता। पैरोंकी अंगुलियां सड़ने लगीं। मासिकमें भी गड़बड़ रहने लगी। दो-तीन सालमें दो गर्भपात भी हुए।

अच्छे इलाजके खयालसे मैं लहरियासराय गई। वहां तीन महीने रही। नामी डाक्टरोंका इलाज हुआ। १५००) खर्च हुए, पर कुछ फायदा न हुआ। डाक्टरोंने कहा, लाभ धीरे-धीरे ही होगा, दवा खाती जाओ। ५००) की दवा लेकर घर आ

गई। एक साल खाती रही। रोग बढ़ते ही गये। अब पटना की बारी आई। वहां भी बड़े-बड़े डाक्टरोंका इलाज हुआ, लेकिन कोई लाभ न हुआ। मैंने समझ लिया कि अब यह जीवन रोगोंको साथ लिये-लिये ही जायगा।

इसी बीच किसीने मुजफ्फरपुरके एक नामी डाक्टरकी तारीफ की तो मेरे पति मुझे उसके यहां ले गये। खून, पेशाब, पैखानेकी जांच हुई। मेरे पतिके खूनकी भी जांच हुई। मेरे एक नया रोग और कायम किया गया, पेशाबमें चीनी। दवाओं की लंबी सूची बनी—

१. दिनमें तीन बार एक प्रकारका मिक्सचर।
२. दिनमें दो बार खून साफ होनेके लिए एक टानिक।
३. दिनमें दो बार खानेके ठीक पांच मिनट पहले इन्जेक्शन।
४. दो पुड़िया रोज प्रातः शौचके पहले—एक ठंडे पानीमें और एक गरम पानीमें मिलाकर, फिर एक साथ मिलाकर लेनेको।
५. दिनमें तीन बार एक तरहकी सफेद गोलियां।
६. एक मलहम रोज दादपर लगानेको।
७. एक मलहम रोज पैरोंकी अंगुलियोंके घावोंपर लगानेको।
८. एक प्रकारकी सूई हफ्तेमें दो बार।

साथ ही पेशाबमें चीनीकी जांच करानेको कहा गया। मेरे पति यह लंबी सूची देखकर घबड़ाए तो डाक्टरने उन्हें बताया कि आपकी स्त्री को लगभग दर्जन भर रोग हैं, उनके लिए आठ दवाइयां क्या ज्यादा हैं?

मेरे पतिको इसमें पूरी दूकानदारी लगी। हम लोग लौट

कर घर चले गये। इसी समय मेरा देवर, जो 'आरोग्य' मंगाया करता था, बोला, क्यों न भाभीकी प्राकृतिक चिकित्सा कराई जाय ? सुना कि मेरी ननद अपनी जिठानी श्री पन्नादेवीके उपचारके सिलसिलेमें प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र, जसीडीह गई थी। उससे फोन पर बात करके उसे मेरे साथ जसीडीह जानेको राजी किया।

मैं यहां १२-३-५७ को आई तब मेरा वजन २ मन १ सेर था।

उपचार

रोज एनिमा, कटि-स्नान, घूमना, मिट्टीकी पट्टी, भाप-नहान, धूप-नहान। खुराक—५ दिन फलाहार, २१ दिन रसाहार, फिर चार दिन एक सेर दूध, एक सेर पानी। फिर १० दिन १ सेर दूधका मट्ठा और फल। ८ दिन एक वक्त रोटी, एक वक्त फल, दुबारा दस दिनका रसाहार।

लाभ

मेरा वजन १।।ऽ हो गया है। कब्ज जड़से जाता रहा।



हाथ-पैरोंकी जलन चली गई। दाद गये। पेशाबकी चीनी गई। या यों कहूं कि मैं बिल्कुल नीरोग होकर जा रही हूं। मैं यावज्जीवन प्राकृतिक चिकित्साकी कृतज्ञ रहूंगी।

यहां मेरा पर्दा भी छूट गया, जिसके कारण मुझे घूमने-फिरने की बहुत आजादी हो गई।

उक्त चिकित्सा केंद्रमें आखिरी एक महीनेमें मेरा लड़का भी साथ था। वह कुछ दुबला था, उसका वजन ऽ२। सेर बढ़ा।

इसी केंद्रका प्रभाव है कि मेरे पतिने चाय, पान और जर्दा सदाके लिए छोड़ दिया।

: ७९ :

सिर-दर्द

वीरेंद्र मुंशी



मेरी उम्र इस समय ३८ साल है। ८ साल पहलेकी बात है, मुझे बंगालके मिदनापुर जिलेके एक मलेरिया-ग्रस्त गांवमें रहना पड़ा। मैं भी उसका शिकार हुआ। हर दूसरे दिन ज्वर आने लगा। साथ उल्टी और सिरके बायें हिस्सेमें दर्द। दो सालतक वहां के ऐलोपैथ और होमियो-पैथोंकी चिकित्सासे निराश होकर सन् १९४९ के आरंभमें मैं कलकत्ता अपने पिता जो अवकाश-प्राप्त सिविल सर्जन हैं और भाई मेडिकल कालेजमें हाउस सर्जन हैं—के पास चला आया। मेरे स्वास्थ्यकी बुरी दशा देखकर वे लोग बहुत परेशान हुए। बहुत कोशिशोंके बाद ज्वर तो किसी तरह छूटा, पर सिर-दर्द ज्यों-का-त्यों रहा। हफ्ता बीतता और जोर-का सिर-दर्द होता। साथ ही उल्टी। मैं बेचैन हो जाता। ८-१० घंटे मेरी यह शोचनीय दशा रहती। कलकत्ताके लगभग सभी नामी डाक्टर, वैद्य और होमियोपैथोंके यहां टकराया, लेकिन मुझे सर्वत्र निराश होना पड़ा। रुपये भी यथाशक्य खर्च किये गए। कुछ डाक्टरोंने मेरी बीमारीका नाम 'मिग्रेन' रखा। इसके बाद रोगकी वैज्ञानिक जांचके लिए मैं स्कूल आव ट्रापिकल मेडिसनमें भर्ती होकर एक महीने रहा। पैखाना, पेशाब

खून सब जांचा गया, बेरियम नामक दवा खिलाकर पेटका एक्सरे लिया गया। वहांकी एक मासकी चिकित्सासे भी मुझे कोई राहत न मिली तो मैं निराश हो गया कि अब यह सिर-दर्द मेरा साथ न छोड़ेगा।

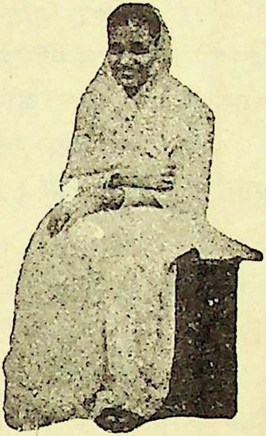
इसी समय मेरे एक दोस्तने प्राकृतिक चिकित्साका जिक्र किया। मुझे इसके बारेमें कुछ पता न था और उन मित्रका ज्ञान भी इस विषयमें विशेष न था। पर प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र जसीडीहके प्राकृतिक चिकित्सकसे उनका पूर्ण परिचय था। एक बार चिकित्सकके कलकत्ता आनेपर मैं उन मित्रके घर पर ही उनसे मिला। उन्हें अपनी सारी कथा सुनाई तो उन्होंने कहा, आप अच्छे तो हो जायंगे, दो महीने जसीडीह आकर रहिए। डूबते को तिनकेका सहारा मिला। पर घरवालोंके सामने जसीडीह जानेका इरादा प्रकट करने पर उन लोगोंने विरोध किया, खासकर जो डाक्टर थे। बोले, इतने बड़े डाक्टरोंसे कुछ नहीं हुआ तो अब मिट्टी, पानीसे क्या होगा तुम्हें। फिर भी मैं जसीडीह आया। मैंने अढाई महीने यहां चिकित्सा कराई। तीन सप्ताह फल और फलोंके रसपर रहा और करीब ४० दिन दूध और मट्ठेपर। रसाहारके दिनोंमें रोज एनिमा लिया। सुबह-शाम पेडू पर आध घंटे गीली मिट्टीकी पट्टी और १०-१० मिनटका कटिस्नान। सप्ताहमें एक दिन भापस्नान। रसाहारमें मेरा वजन साढ़े आठ सेर गया. पर आश्चर्य है कि ताकत नहीं गई, उल्टे अधिक स्फूर्त्ति रही। दिन-दिन मेरी हालत सुधरती गई। अब मेरा घटा हुआ वजन पूरा होकर पांच सेर और बढ़ गया है।

मुझे यह कहते बड़ी खुशी होती है कि मैं अब एकदम स्वस्थ हूं। यहां रहकर प्राप्त हुए अनुभवके बलपर मैं कह सकता हूं कि प्राकृतिक चिकित्साके नियमोंके पालनसे मनुष्य सिर्फ रोग-मुक्त ही नहीं होता, बल्कि स्वस्थ जीवन प्राप्त करनेका सुलभ और सुनिश्चित मार्ग जान जाता है।

: ८० :

थूकनी

अन्नपूर्णा कुमारी



मुझे लगभग डेढ़ सालसे 'थूकनी' का रोग लगा हुआ था। सुबह उठनेपर मुंह थूकसे भरा रहता था। कुछ खा न लेनेतक थू-थू लगी रहती। पास रहने वालोंको बुरा लगता और मेरी परेशानीका तो कोई ठिकाना ही न था।

डाक्टरोंको दिखाया, सुनाया, पूछा गया कि यह रोग क्या है? बोले, नाम तो इसका कुछ है नहीं, दवा खाइए, अच्छा हो जायगा। वह अंदाज न कर सके कि ऐसा होता क्यों है?

गोहाटी के बड़े-बड़े डाक्टरोंकी दवा से भी थूकनी न गई।

मेरे भाई और भाभी अपना प्राकृतिक उपचार कराने आने लगे तो मुझे भी साथ ले आये। मुझे शुरूमें कुछ दिनों फलों पर रखा गया। चिकित्सक रोज हाल पूछते। मैं निराशासे कहती, वही हाल है। मेरे मनमें शंका होती कि जो थूकनी बड़े-बड़े डाक्टरोंकी दवासे न गई, वह इस कटिस्नान, मिट्टीकी पट्टी और फलाहारसे कैसे चली जायगी?

पर मुझे कहते खुशी होती है कि यहाँके उपचारोंसे मेरी थूकनी चली गई। मेरे वजनमेंसे भी ६ सेर गया और शरीर सुडौल

लगने लगा।

मेरे गलेपर बाहरी हिस्सेमें सामनेकी ओर दो-तीन अंगुलमें एक परत-सी जमी हुई थी, करीब तीन महीनेसे। मनमें इसके बढ़नेका डर था और देखनेमें दाग भद्दा लगता था।

एक बारके भाप देनेमें ही वह दाग ऐसा गायब हो गया मानों कभी था ही नहीं।

: ८१ :

बोन टी. बी.

दिनेश चौधरी



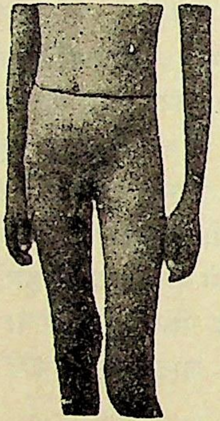
तीन साल पहले डाक्टरोंने मुझे बोन (हड्डी) की टी० बी० बतला दी थी। मैं और मेरे सब घरवाले इस नामसे ही परेशान हो गए। टी० बी० का तो नाम ही रोगीकी आधी जान निकाल दता है। डाक्टरोंका, वैद्योंका बहुत इलाज करवाकर भी कोई फायदा नहीं हुआ। मेरी कमरकी रीढ़में, घुटनेमें, पैर-में दर्द रहता, सूजन भी। वह घटती, बढ़ती रहती थी। उठने-बैठनेमें मुझे कठिनाई होती थी। मैं मुश्किल से आध मील चल पाता था। वर्षाके दिन दर्द बढ़ जाता था। शरीर बिल्कुल अशक्त जान पड़ता था

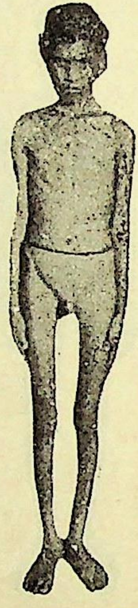
डाक्टरने एक्सरे और खून जांचके बाद टी०बी० प्रकट की थी। पलस्तरकी राय दी। २१०) का खर्च बताया। यह भी कहा कि एक बारमें लाभ न होगा तो पहला पलस्तर काटकर फिर दूसरा करना होगा और २१०) रुपये फिर लगेंगे। और खाटपर पड़े-पड़े मांस, मछली, अंडा, छेना, दूध-दही खाना होगा।

इतने खर्च और झंझटोंसे घबरा कर मैं जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रमें पहुंचा।

यहां बीस दिन मैं फल और रसपर रहा। दोनों वक्त कटि-

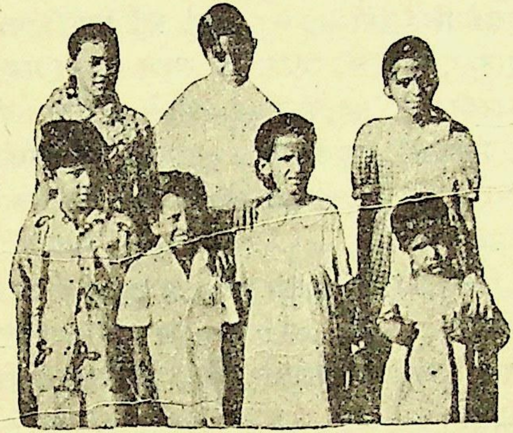
स्नान और मिट्टीकी पट्टी लेता, रोज एनिमा। हफ्तेमें दो भाप-नहान। शक्तिभर घूमता। वजन मेरा ३४ सेरसे घटकर ३० सेर रह गया। इतने उपचारसे मेरी बीमारीमें आठ आना लाभ हुआ। फिर मुझे २१ दिनका रसाहार कराया गया। उसमें मेरा वजन चार सेर और घटा।





उसके बाद २१ दिन दुग्धकल्प चला। दूध ऽ४॥ तक बढ़ा। १४ दिन अमृतान्न पर रहा। मेरा रोग रुपयेमें चौदह आना चला गया। मेरा वजन लगभग पूरा हो गया है। अब मैं घर जाकर अमृतान्न चलाऊंगा।

मेरा एक पैर जो सीधा नहीं पड़ता था, वह सीधा पड़ने लगा। ईश्वरको धन्यवाद है कि मैं डाक्टरोंके पंजेसे छूट गया।



: ८२ :

इन्फ्लुएंजा

इंद्रप्रसाद गुप्त

पिछले दिनों देश-विदेशके लाखों लोग इन्फ्लुएंजाके शिकार हुए। जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र में भी सात बच्चोंपर इसका आक्रमण हुआ। पहला बच्चा अशोक मोदी (उम्र १२ साल), ७-६-५७ को बीमार पड़ा। जुकाम, तेज ज्वर, बदनमें दर्द, सिरमें दर्द, कुछ खांसी। इन्फ्लुएंजाके सब लक्षण थे। लेकिन न बच्चेको कोई गम था, न घरवालोंको; क्योंकि चिकित्सकने आकर देखा तो न अपनी मुद्रा गंभीर की, न मुंह बनाया, जैसाकि डाक्टर प्रायः करते हैं; बल्कि हँसकर कहा, चलो अच्छा हुआ, इस तरह तो तुम रसाहार करते नहीं, अब इसी बहाने दो-चार दिन शरीर

की सफाईका मौका मिलेगा। अशोककी मां श्री आनंदीदेवी मोदीने पूछा, क्या करना होगा ?

"इसके लिए नया क्या करना है! वही मिट्टी, पानी, धूप, हवा। एनिमा, मिट्टीकी पट्टी, कटि-स्नान। और गरम पानी-से खूब अच्छी तरह नहलाकर ठंडे पानीसे नहलाना और बदन पोंछकर बिस्तरेमें उढ़ाकर लिटा देना। बुखार अधिक बढ़ने-पर सिरपर और पेडूपर गीले कपड़ेकी पट्टी। खुराकमें केवल फलोंका रस।"

छः दिनमें ज्वर जाता रहा और १३ जून '५७ को यहां जो एक अभिनय हुआ उसमें अशोकको भाग लेते देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अभिनयवाले दिन उसे सिर्फ दूध-पानीपर रखा गया था।

अशोकके बाद दस-वर्षीया संतोष पचीसियापर १०-६-५७ को ज्वरका आक्रमण हुआ। पर वह तो एक दिनमें ही चंगी हो गई, क्योंकि इसके पहले उसका रसाहार शरीर-सफाईके खयालसे हो चुका था। वह तो ज्वरके दूसरे दिन दौड़की होड़में भाग लेकर जीत पाई।

१२-६-५७ को अशोक की बहन सुधा (उम्र १० वर्ष) बीमार पड़ी। वह भी एक दिन-रात में चंगी हो गई। सुधाके बाद उसके दो भाई दीपक (उम्र ७ वर्ष) और ज्योति (५ वर्ष) पड़े। ये तीन दिनमें अच्छे हो गये।

अब छठा और सातवां नंबर मेरी दो लड़कियोंका था। पहले मंजू (६ साल) को १०३ डिग्री ज्वर आया। जुकाम, साथ सिर-दर्द भी। इलाज वही चला। १७ जूनको सुमन (३ साल) पड़ी। ज्वर १०४ था। दूसरे दिन उसके तो नाक से काफी खून

भी आया। यह देखकर मेरी स्त्री घबराई। बोली, कल तक उसकी दशा न सुधरी तो मैं किसी डाक्टरको बुलाऊंगी। मैंने समझाया कि जब इसी इलाजसे पांच दूसरे बच्चे अच्छे हुए हैं तो हमारी लड़कियां ही क्यों अच्छी न होंगी ? १९ जूनको दोनों लड़कियोंने बिस्तर छोड़ दिया। बड़ी लड़कीका ६ दिन रसाहार चला, छोटी का ४ दिन। पहले एनिमासे और बादको दो दिन दूध-पानी पीने-से दोनोंके पेटसे काफी पुराना मल निकला।

लोग कहते हैं, इन्फ्लुएंजाके बाद बहुत दिनों तक कमजोरी नहीं जाती, पर मैं तो देखता हूं, इन्फ्लुएंजाके बाद बच्चे पूर्वकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ लगते हैं। १०-१२ दिन बाद मेरी दोनों लड़-कियोंका वजन लिया गया तो मंजूका १७ सेर से १८ सेर हुआ और सुमनका ११॥ सेरसे १३ सेर। प्राकृतिक उपचार का यह प्रत्यक्ष चमत्कार है।

: ८३ :

पागल कुत्तेके काटेका इलाज

महावीरप्रसाद पोद्दार



"देखो तो फोन कहांका है ?"

"आरोग्य भवनका है, शर्माजीकी छोटी लड़कीको कुत्तेने काट लिया है।"

श्री रामेश्वर शर्मा प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र जसीडीहमें काम करते थे। उस समय वह एक रोगीको भाप-नहान दे रहे थे। उन्हें फोन सुननेको बुलाया गया। सुनकर बोले, लीलाको कुत्तेने काट लिया है। इसके बाद मेरी सलाहकी प्रतीक्षामें खड़े रहे। मैंने कहा, जाइए उसे यहां ले आइए।

कुत्तेके काटनेसे लोग बहुत डरते हैं। इस खयालसे कि कुत्ता पागल होनेपर उसका काटा पागल हो जाता है, मर जाता है। पागल कुत्तेके काटनेके इंजेक्शन भी निकले हैं। कसौली (शिमला) में पागल कुत्तेके काटोंके इलाजके लिए एक खास अस्पताल बना हुआ है।

२०-२५ मिनटमें शर्माजी लीलाको लेकर आये। देखा, गर्दन-पर दाहिनी ओर, कंधेसे जरा ऊपर, कुछ खून निकला है। एक-दो दांत भी लगे हैं। वह लड़की तीन फुट लंबी तो जरूर है, मनमें शंका हुई कि कुत्तेके इतने ऊंचे उछलकर गर्दनपर दांत गड़ानेकी क्या वजह हुई, पैरोंमें काटा होता तो एक बात थी। लीलाने कहा कि

उस समय वह सिरपर काले कंबलका एक आसन ओढ़े जा रही थी, कुत्तेने समझा कि कोई कुत्तेका बच्चा लिये जा रही है। बस, उसीपर वह झपटा। मुझे यह वजह कुछ जंची नहीं। पर कुत्तेके मनकी जानना तो कठिन ही था और आज इसकी गहराईमें उतरना भी बेफायदा है। घाव प्रत्यक्ष था।

लीलाको तुरत एक एनिमा देकर भापनहान और फिर १५-२० मिनटका कटिस्नान दिलाया। इसके बाद दिनमें घावपर दो-तीन बार मिट्टीकी पट्टी रखनेकी हिदायत की। खाना कई दिन बिल्कुल बंद रखकर सिर्फ पानी पीना बतलाया।

दूसरे दिन सुबह, शर्मासे हाल पूछनेपर बोले, स्त्रीने रात एक उल्टी हुई बतलाई। मैंने कहा, बहुत अच्छा हुआ, जहर निकल गया। लीलाके बाद उस कुत्तेने उसी दिन एकको और काटा। दूसरे दिन भवनके मुनीम श्री गिरधारीलालकी छोटी नातिनको उसके गलेपर ऐसा काटा कि मांस निकल आया। उस लड़कीको अस्पताल ले गये। वहां उसे लगातार २१ दिनतक सूइयां दी गईं। पर वह बची नहीं—मर गई। उसके पागल होनेकी बात भी सुनी गई कि वह लड़की मृत्युके दो दिन पहले कुत्तेकी भांति भूंकने लगी और लोगोंको काटने दौड़ती थी। इस खबरकी तसदीकके लिए लड़कीकी नानीके पास आदमी भेजा। पर ठीक पता न चल सका। रोगीका भूंकना और काटने दौड़ना इन दोनों लक्षणोंके सही होनेमें मेरे मनमें बहुत संदेह रहा। इसलिए कि ये कुत्तेके स्वाभाविक लक्षण हैं, उसके काटनेसे मनुष्यमें यह स्वभाव आ जाना समझमें नहीं आता। कुछ बुद्धिके बाहरकी-सी बात लगती है। तीसरे दिन लड़कीके नाना गिरधारीलालसे

दरियाफ्त करनेपर मालूम हुआ कि लड़की अपनी एक अंगुली तो मुंहमें लेती थी, बाकी भूंकने और दूसरेको काटनेकी बात उन्होंने गलत बतलाई।

भूंकनेवाली बात लड़कीकी नानीसे मिली थी, पर नानी अस्पताल नहीं गई थी, घर बैठे ही उसने किस्सा जोड़ लिया था। नानीकी कहानीको सच माननेवाले लोग तो नानीकी ही बात-को सही मानेंगे। कहेंगे, गिरधारीलालने बात छिपाई होगी।

उस कुत्तेके काटे हुए अन्य पांच-छ: मेंसे तीनके यहां मैंने श्री रवींद्र चौधरीको हाल दरियाफ्त करनेको भेजा था। ये तीनों ठीक-ठीक मिले। शेष दोका पता न लग सका।

पांचमेंसे पहली लड़की प्राकृतिक चिकित्सासे अच्छी हुई या कहिए प्रकृतिसे—अपने-आप अच्छी हुई। और एक लड़की अस्पतालके कुत्ता काटनेके और पेंसिलिनके इंजेक्शनकी पूर्ण मात्रा देनेके बावजूद भी बचाई न जा सकी—मर गई। तीन ठीक रहे। इन तीनोंने भी कुछ इंजेक्शन लिये थे। अगर यह माना जाय कि वे प्रकृतिसे ही ठीक हुए तो क्या कसूर होगा? ठीक तो प्रकृति ही करती है, दवाका तो एक वहममात्र होता है, कि उससे आदमी अच्छा होता है। दवा अच्छा कर सकती तो वह लड़की मरती क्यों? कोई कहेगा उसकी मौत आ गई थी? तब तो हम यह मानें कि मौतकी कोई दवा नहीं है। अगर दूसरे तीन भी इंजेक्शन न लेते तो क्या मर जाते? मैं कहता हूं, कभी न मरते। क्योंकि बिना दवावाली लड़कीका सबूत तो हमारे सामने मौजूद है।

: ८४ :

मिट्टीकी उपयोगिता

संपादक



चोटपर

उस समय 'आरोग्य-भवन' जसीडीहमें पहला प्राकृतिक चिकित्सा-शिक्षण-शिविर चल रहा था। गोरखपुरसे गौतम भी मेरे पास आया हुआ था और जब मैं सुबह शिविरमें जाता, वह मेरे साथ जाता। एक दिन किसी कुत्ते-के पीछे दौड़ते हुए वह गिर पड़ा। उसके दोनों घुटने बुरी तरह छिल गए, मानों किसीने छः-छः इंच चमड़ेकी एक-एक परत ही उतार ली हो। मैं हालसे बाहर निकला तो उसे सुबुकते पाया। पूछनेपर गिरनेका हाल मालूम हुआ और यह भी उस दिन पहले-पहल पता चला कि यहांकी जमीन के दरदरी होनेकी वजहसे गिरनेपर जोरकी रगड़ लगती है।

५०-६० शिक्षार्थी चारों ओर घेरकर खड़े थे, कुछ सहानुभूतिमें, कुछ इस खयालसे कि देखें, इस चोटके लिए क्या प्राकृतिक चिकित्सा होती है। संयोगसे उस दिन मैंने मिट्टीपर एक व्याख्यान दिया था और चोट लगनेपर भी मिट्टीका प्रयोग बतलाया था। गौतमके पास शिबू नौकर खड़ा था, उसे मैंने दो

सेरके लगभग मिट्टी गूंधकर लानेको कहा—मिट्टी तो वहां एक गाड़ी लाकर रखी हुई थी, शिक्षार्थियोंको जब-तब पट्टी देने, सिखानेके लिए। सफेद पुराना कपड़ा मंगाकर मिट्टीकी छः इंच लंबी छः इंच चौड़ी (घुटनेके हिसाबसे) एक इंच मोटी, दो पट्टियां बनाकर गौतमके घुटनोंपर बांध दी गई। कुछ शिक्षार्थियोंने, जो अंग्रेजी कुछ अधिक यानी बी० ए० तक पढ़े थे, शंका की कि इससे सेप्टिक हो सकता है। मैंने कहा, मिट्टी साफ हो तो कोई आशंका नहीं है। मिट्टी जहर खींचनेका काम करती है, सेप्टिक जहर फैलनेसे होता है। और हाथ कंगन को आरसी क्या, आपको पता ही चल जायगा कि सेप्टिक होता है या नहीं। लेकिन शंका को चाहे जितना बढ़ाया जा सकता है। एकने शंका की, मान लीजिए, गौतमजीको सेप्टिक न हुआ, पर एक को न हो तो सबको ही न होगा, यह कैसे मानें?

"अभी तो यह मेरे कथन पर विश्वास करके मानिए, मैंने बहुतोंकी चोट और फोड़ों पर मिट्टीका प्रयोग करके देखा है, उनमें अधिकांशको लाभ होते पाया है। और आप देखें कि मेरे मनमें मिट्टीके गुणपर असीम विश्वास न होता तो मैं अपने इस प्रिय पौत्र पर कैसे उसका प्रयोग कर सकता। मिट्टी हमेशा साफ जगहकी और कम-से-कम एक फुट नीचे से लेनी चाहिए।"

गौतम स्वयं पैर टिकाकर चलने में असमर्थ था, इसलिए पट्टी बांधनेके बाद शिबूने उसे पीठ पर लिया।

एक हफ्तेमें गौतमकी चोट बिल्कुल बेमालूम हो गई और वह अपने रोजके कामोंमें लग गया। गौतमको पशु, पक्षियोंके साथ खेलनेका, धरतीमें कुछ बोने उगानेका बेतरह शौक था।

अच्छे होनेके बाद वह फूलके पौधे लगाने आदि के काम में पहले की तरह लग गया।

बिच्छू काटेपर

मैंने प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र में कई व्यक्तियोंको बिच्छू काटनेपर मिट्टी लगानेसे आराम होते देखा था। एक दिन शामको प्रार्थनाके कुछ पहले कलकत्ताके श्री नाथूराम पोद्दारके नौकर बूधनको बिच्छूने डंक मार दिया। उसके चीखने की आवाज सुनकर सब लोग उधर दौड़ पड़े। एकने कहा, किसी झाड़े वाले को बुलाओ, दूसरेने एक कानमें नमकका पानी डालने की राय दी, तीसरेने आंखमें। मतलब जितने मुंह उतनी बातें हो रही थीं। इतनेमें चिकित्सक आ गए। उन्होंने रोगीको एक चौकीपर लिटाकर उसके डंकके स्थानसे लेकर एक फुट ऊपर तक तीन-चार सेर मिट्टी पानीमें सनवाकर लगा दी। फिर भी बूधनका चिल्लाना जारी ही रहा। सब लोग उसकी पीड़ामें प्रार्थना भूल गए। चिकित्सकने चार-पांच सेर मिट्टी और सनवाई तथा ऊपर जांघ तक छोपवा दी। क्योंकि पूछने पर बूधन जांघ तक जहर पहुंचा बता रहा था। १०-१२ मिनट में उसका चिल्लाना कम हुआ तो चिकित्सक नौकरको यह कह कर कि १५ मिनट बाद इसी तरह फिर मिट्टी लगा देना। और जब तक चिल्लाना बंद न हो इसी तरह करते रहना सब लोगोंके साथ प्रार्थनाके लिए आ गये। उस दिन ताऊजीने बिच्छू काटेपर, चोट लगेपर, फोड़े-फुन्सियोंपर, जलेपर, पेट दर्दपर, सिर दर्दपर तथा अनेक तकलीफोंमें मिट्टीके प्रयोगों से लाभ प्राप्त करनेकी चर्चा की। उन्होंने ऋषिकेशमें मीरा-

बहन (मिस लेड) को बिच्छू काटनेपर अपना मिट्टी का मजेदार तजरबा सुनाया। एक घंटा प्रार्थनामें लगानेके बाद सब लोग बूधनको देखने गए——खास कर मिट्टीका चमत्कार देखने! बूधनकी चीख-पुकार एक दम खत्म हो गई थी, उस समय भी उसकी जांघ तक मिट्टी छोपी हुई थी।

सुबह देखा बूधन बहँगीमें दो बाल्टियां लटकाए कुएंसे पानी ढो रहा है। विश्वास नहीं हुआ कि यह वही बूधन है। पीछे मालूम हुआ कि रातको १२ बजे ही बूधन तख्तेसे उठकर सोने चला गया था।

: ८५ :

उन्निद्र

चारुचंद्र चटर्जी



कलकत्तामें एक आंखके मोतियाबिंदके आपरेशन बाद मेरी दोनों आंखोंपर पट्टी बांध दी गई। पांच दिनके लिए मुझे अंधा ही कर दिया गया। मुझे न दिनका पता था, न रातका, अंधकार-ही-अंधकार था, मेरे सामने। नतीजा यह हुआ कि मेरी नींद जाती रही। कभी आती भी तो मालूम होता मैं अंधकार में डूबा जा रहा हूं। मैं चौंक पड़ता, किसीको पुकारता। फिर शांत हो जाता, पर नींद न आती। पट्टी खुल जानेपर एक बार मुझे बड़ा आराम मालूम हुआ। मैंने दिनके प्रकाशको एक नए आनंद-से देखा, लेकिन रात होनेपर फिर भी नींद न आई। मनमें अंधकारका भय-सा समा गया था। कई दिनों यही हालत रही। पर मैंने किसीसे इस बेचैनीकी चर्चा नहीं की। न मनमें ही बहुत परवा की।

कुछ दिनों बाद देवघर (वर्तमान निवास-स्थान) आनेपर दशा बदल गई। मैं आरामसे सोने लगा। महीना-भर शांतिसे बीता। गरमीके दिन थे। एक रातको अत्यधिक गरमीके कारण मैं सो न सका। तबसे मैं कभी-कभी ही सोता। अधिकतर मेरी रात अनिद्रामें ही कटती थी। किसी अज्ञात भयसे सोते समय कलेजा

धड़कने लगता और सिर गरम हो जाता। डर लगता कि नींद न आयेगी। और सचमुच नींद न आती। कभी बैठकर, कभी लेटकर, कभी करवटें बदलकर, रात बड़े कष्टमें कटती थी।

एक होमियोपैथसे मैंने अपनी हकीकत कही। बोले, इनसोम्निया (उन्निद्र) रोग है। होमियोपैथ लक्षणसे चलते हैं। उन्होंने मुझमें अनिद्राके सब लक्षण पाये। कुछ गोलियां दीं, कलेजेकी धड़कनके लिए एक तरल औषधि। हफ्तेभरमें कोई लाभ न होनेपर कलकत्ता जाकर किसी अच्छे डाक्टरको दिखानेका खयाल हुआ। साथ ही जसीडीहके प्राकृतिक चिकित्सा-केंद्रकी याद आई। वहां डाक्टरों, वैद्यों द्वारा निराश हुए बहुत रोगियोंको अच्छा होते मैंने देखा-सुना था। वहांके संचालक मेरे मित्र हैं। रोग और स्वास्थ्यके संबंधमें उनकी रायको मैं मूल्यवान मानता हूं। मैं फौरन टैक्सी करके उनसे मिलने चल पड़ा। उन्होंने पांच मिनट मेरी हालत सुनकर कहा, "आइए, बिना दवाकी चिकित्साका चमत्कार देखिए।"

बिस्तर और पहननेके कुछ कपड़े लेकर मैं प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रमें पहुंच गया। मुझे वहां रहनेको दो साफ-सुथरे खूब हवादार कमरे मिले। तीन दिन मेरी कोई चिकित्सा नहीं हुई। चिकित्सक प्रतिदिन केवल पूछते, कैसा हूं। पर इन दिनों मैं रातको सोने लगा। क्यों, कैसे, यह मुझे पता नहीं। शायद स्थान-परिवर्तनके कारण यह हुआ हो। चौथे दिन चिकित्सकने अधिक चर्चा की। उनके शब्द थे, "आपको इनसोम्निया नहीं है, सिर्फ वहम है उसका। नींदका बिल्कुल न आना अनिद्रा कहलाता है, पर आप तो सोते हैं। हां, अपनी समझसे कुछ कम सोते हैं। पर इस ७० सालकी उम्रमें आप बच्चोंकी तरह सोनेकी आशा कैसे कर

सकते हैं ? वास्तवमें आपको कोई व्याधि नहीं है, केवल आधि है।"
इस विश्लेषणने ही मेरी आधी बीमारी तो खो दी।

मैंने इनसोम्निया के विषयमें सोचना ही छोड़ दिया। अनिद्राके बारेमें मेरी कल्पना बदल गई। औरोंकी भांति ही, पहले मैं भी सोचता कि छः से आठ घंटे पूरी नींद आनी ही चाहिए, उसके बिना ताजगी नहीं मिल सकती। इतनी देर न सोना किसी भीतरी रोगका लक्षण है। रातको पहले पहर जागता रहा या अंतमें नींद न आई तो समझ लिया कि इनसोम्निया हो गया। अब मैंने समझ लिया कि मस्तिष्कसे काम लेनेवाले पांच-छः घंटे ही सोते हैं और वृद्धोंके लिए तो इससे भी कममें काम चलता है, और यह भी कि हमारी कल्पनासे कुछ इधर-उधर होनेमें आसमान नहीं फट पड़ता।

मेरी चिकित्सा क्या हुई ? न सोनेकी दवा, न कोई इन्जेक्शन, न मालिश। यहांके चिकित्सक दवामें विश्वास नहीं रखते। उनका कथन है कि दवासे बीमारी अच्छी होती है, यह कहना अर्थरहित है। उनके लिए, पानी, धूप, हवा और मिट्टी महौषधि हैं।

मुझसे इन्हीं साधनोंका सेवन करनेको कहा गया। सुबह-शाम कटिस्नान, रातको गरम पानीका फुटबाथ और सोते समय मिट्टीकी पट्टी। भोजन भी बदल गया। केवल एक दिन रसाहार कराकर कुछ दिनों दूधपर रखा गया। रोज तीन-चार मील घूमना, इतनी तेजीसे कि पसीना आ जाय। यह लोग कहते हैं—No exercise, No food, यानी व्यायाम नहीं तो खाना भी नहीं। कहते हैं, देवनागरी वर्णमालाके अनुसार पहले क (करो मेहनत) पढ़ो, तब ख (खाओ खाना)।

मैं अपने मित्र चिकित्सकके आदेशानुसार नियमपूर्वक रहने

लगा। रातको कभी नींद न भी आती तो प्रातःकाल उठनेमें आलस्य करता। उस समयके आनंदको खोना नहीं चाहता था। अपने कार्यक्रमको धर्म मानकर उसका पालन करता था। मुझे प्राकृतिक चिकित्साकी पद्धति बहुत पसंद आई। उसमें पूर्ण युक्तियुक्तता है और औषधियोंके आडंबर तथा झंझटोंसे मुक्ति।

चिकित्सकने मुझे कह रखा था कि कभी नींद कम-ज्यादा आए तो इसके लिए परेशान होनेकी जरूरत नहीं है। नींदका न आना कष्टदायक तो है, फिर इसमें परेशानीको जोड़कर कष्टको हम बढ़ाएं क्यों? जब मुझे नींद नहीं आती थी, मैं चुपचाप बिस्तर-पर उठ बैठता और पतित-पावन परमात्माका नाम लेता। सब कष्ट दूर हो जाता और शांतिका अनुभव करता। इससे कभी नींद आ जाती, कभी नहीं, पर चित्तमें शांति आ जाती थी। निद्राका भी तो यही उद्देश्य है!

मुझे यहां प्राकृतिक चिकित्साके नियमोंका भी कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ। यह एक बड़ा लाभ मिला। ये नियम केवल रोगियोंके लिए ही नहीं, स्वस्थ व्यक्तियोंके लिए भी पूर्ण उपकारी हैं।

: ८६ :

मोटापा, मंदाग्नि, आंव

सत्यनारायण



दूकानदारीमें बैठना शुरू करते ही मेरी कसरत, खेलकूद–सब खतम होगए। आनंदके दूसरे जरिये न रह जानेपर, खानेके मजेका लालची होकर धीरे-धीरे मैं चटोर होगया। नतीजा वही हुआ जो होना चाहिए। मंदाग्नि, आंव, भयंकर कब्ज और साथ ही मोटापेका शिकार हुआ, मैं। व्यापारी सिर्फ पैसेपर निगाह रखता है, भले ही स्वास्थ्य जाय—"चमड़ी जाय, पर दमड़ी न जाय।" प्रायः दूकानदारोंको दुकानपर ज्यादा देर बैठकर बिक्री ज्यादा कर लेनेका लोभ रहता है। स्वास्थ्यकी उस समय कोई परवा नहीं रहती। मेरी भी यही दशा थी।

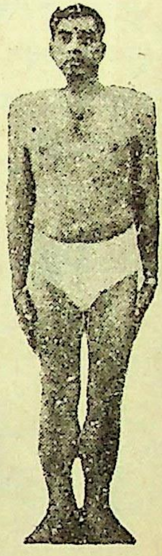
१५ साल पहले अपने एक मित्रकी सहायतासे मैंने कुछ प्राकृतिक उपचार करके लाभ प्राप्त किया था। पर फिर मैं उस पथसे भटककर एलोपैथों—डाक्टरोंके चक्करमें पड़ गया। जिन्हें लोग बड़े डाक्टर कहते हैं, मैंने उनमेंसे बहुतोंके दरवाजे खटखटाए। कोई फायदा न हुआ। दिन-दिन मेरी हालत बिगड़ती

गईं। उत्साह, साहस, स्फूर्ति विदा हो गईं। भूख भी उन्हींके साथ चली गई। कुछ व्यायाम करनेका इरादा किया, लेकिन मन न लगा। स्मृति खराब हो गई। कामसे मन उचटने लगा। इस समय मेरा वजन पौने तीन मनके करीब था। इसके कुछ दिनों पहले सवा तीन था। कष्ट बढ़ जानेपर किताबोंके सहारे कुछ प्राकृतिक उपचार अपनाये, पर संतोषजनक लाभ न हुआ।

इसी समय मेरी स्त्री और मेरी दो बहनोंका स्वास्थ्य भी खराब हुआ। स्त्री और एक बहन भी मोटापेसे पीड़ित थीं, और भी अनेक रोग थे इन्हें। डाक्टरीसे निराश हो चुकी थीं। निश्चय हुआ कि इन सबको किसी प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रमें भेजकर इलाज कराया जाय। मैंने 'आरोग्य' में विज्ञापन देखकर 'कब्ज: कारण और निवारण' पुस्तक मंगाई थी। उसमें जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रका जिक्र पढ़कर मैंने अपने यहांके तीनों मरीजोंको चिकित्सार्थ वहां भेज दिया। उनसे मिलने जब-तब मैं भी जाता रहा। वह आवागमन ही मेरे लिए वरदान रूप हुआ। वहांके चिकित्सकसे एक कार्यक्रम बनवाकर मैं घरपर अपना उपचार चलाने लगा। मोटापा घटना शुरू हुआ, लेकिन पड़ोसवालोंकी तरह-तरहकी बातें सुन-सुनकर मेरा धीरज भी कम होने लगा। लोग कहते, तुम्हें हो क्या गया है, इतने सूखे कैसे जा रहे हो, कोई अंदरूनी बीमारी हो गई है क्या, कोई दवा-इलाज क्यों नहीं कराते? दो-चारको समझाया-बुझाया, पर अंतमें देखा कि ये सब तो समझनेसे रहे, मुझे रास्तेसे जरूर बहका देंगे। मैं घरपर १२ दिनोंके रसाहारके बाद जसीडीह चला आया। यहां मेरा रसाहार २७ दिन चला। पेटसे खूब मल निकला। बेतरह आंव गिरा। परिणामस्वरूप मेरा कायाकल्प हो गया। वजन पौने तीन मनसे एक मन चौंतीस सेर हो

गया। गया हुआ उत्साह, साहस, स्फूर्ति सब वापस आ गए।

मैंने कुछ लोगोंको प्राकृतिक चिकित्साके महंगी होनेकी शिकायत करते सुना है। मेरा खर्च सुनाता हूं। चार आदमियोंके, तीन महीनेकी चिकित्साके, तथा रसाहार वगैरह मिलाकर ८००) रुपए लगे। मेरा खयाल है, घर भी चार आदमियोंने तीन महीनेमें चारसौसे कम क्या खाये होते। अगर फी आदमी सौ-सौ रुपए ज्यादा लगे और उसके बदलेमें स्वास्थ्य-जैसी अनमोल वस्तु प्राप्त हुई तो मैं तो इसे निहायत सस्ती समझता हूं। घरपर मेरा अपना ६०) रुपए महीनेका पान और जर्देका खर्च था। उस दुर्व्यसनसे मैंने सदाके लिए छुटकारा पा लिया। मैं यहां प्राप्त हुए लाभोंकी कीमत पैसोंमें आंकनेकी हिमाकत नहीं कर सकता।



मेरी स्त्री, छोटी बहन तथा भाईकी बीमारी तथा उनके अच्छे होनेका हाल भी आगे सुन लीजिए।

श्वेतप्रदर, पायरिया, फाइलेरिया आदि

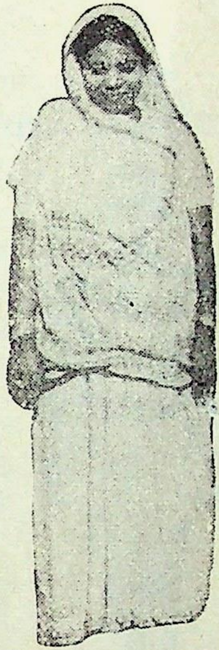


बहुत वर्षोंसे मेरी स्त्री श्री सुनीति देवीकी शिकायतें थीं—हाथदर्द, श्वेत-प्रदर, मासिक-दोष, पायरिया, फाइलेरिया, पेटकी खराबी और मोटापा। बिहारके नामी-नामी डाक्टरोंके उपचारसे भी कुछ लाभ न हुआ। कभी-कभी दवाकी बदौलत थोड़े समयके लिए रोग दब जाता।

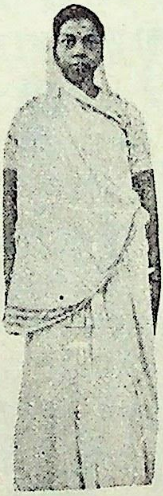


अंतमें वह प्राकृतिक चिकित्साकी शरणमें आई। अन्य उपचारोंके साथ उसने १७-१७ दिनोंके दो रसाहार किये। प्रायः रोगोंसे उसका छुटकारा हो चुका है।

मोटापा



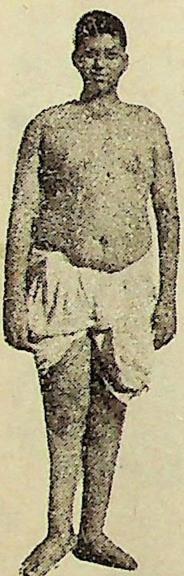
मेरी छोटी बहन राधा यहां २।।/९ से १।।/६ होकर गई, यानी पूरा एक मन और तीन सेर वजन खो गई। चलना मुश्किल था, जिसके लिए आधा मील, वह यहां रोज छः मील चलती थी। उसकी कितनी तकलीफें गईं, यह तो उसीके मुंहसे सुनने लायक है। लोग कहते हैं, इतना वजन घटनेसे चमड़ा झूल



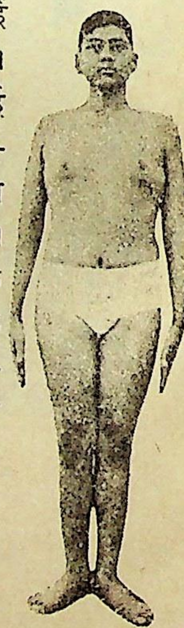
जाता है, लेकिन उसका न तो चमड़ा झूला, न कहीं शिकन ही आई। अफसोस है कि उसका २।।/९ के समयका फोटो नहीं लिया जा सका था। उस समय तो वह फोटो लिवानेसे भी झेंपती थी। २/ का फोटो लिया गया था वह, और मुकाबलेके लिए १।।/६ का फोटो इसके साथ दिया जा रहा है।

मोटापा

जब घरके चार आदमी अच्छे हो गए तो मेरे छोटे भाई इंद्रदेवको भी जसीडीह आनेको राजी किया जा सका। इंद्रदेव



की हालत हम सबसे खराब थी। सिर्फ सत्रह सालकी उम्रमें उसका वजन २।/१ हो गया था और रोज बढ़ता ही जा रहा था। डर लग रहा था कि आगेके दो-चार साल-में इसका क्या होगा। उठ-बैठ भी सकेगा या नहीं, चलने-फिरनेसे तो अभी वह मजबूर हो गया था। उसे चलानेको एक नौकर रखा गया था, लेकिन कोई कामयाबी न होती थी। इंद्रदेवका खानेपर कोई 'कंट्रोल' नहीं था। दिन-भरमें न चार बारका ठिकाना था, न छः बारका। हमें उम्मीद नहीं थी कि इंद्रदेव प्राकृतिक चिकित्साके संयममें टिक सकेगा। पर मुझे कहते खुशी होती है कि इंद्र-देवने हम सबसे अधिक संयम रखा और बहुत प्रसन्नतापूर्वक रखा। उसकी इस सिफतका हम सबको पता नहीं था। परिणाम जो हुआ वह फोटोसे देखिए। पहला फोटो २।/१ का है, दूसरा १।।/२ का।



: ८७ :

मोटापा, बवासीर

गोरेकृष्ण पचीसिया

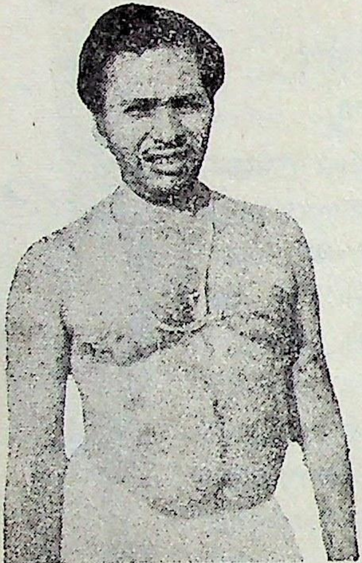


मैंने पहले अपनी धर्मपत्नी श्री परमेश्वरी पचीसियाके उपचारके लिए प्राकृतिक चिकित्साका आश्रय लिया था, लेकिन इसके फायदे देखकर धीरे-धीरे हम घरभर इसके मुरीद हो गए। हम सबका रहन-सहन और खानपान बदल गया। मेरे तीन लड़कियां और दो लड़के हैं। यह तो नहीं हुआ कि अब कभी हम बीमार ही न पड़ते हों, लेकिन पहलेसे बहुत कम, और पड़े तो अब डाक्टर की चरण-रज न लेकर रसाहार और एनिमाकी शरण लेते हैं। हम निबाह पायं या न पायं, इतना समझ जरूर गए हैं कि रोगके लिए दवाकी नहीं, आवश्यकता संयमकी है। मैंने इस चिकित्साकी बदौलत अपना मोटापा घटा लिया और बवासीरसे बहुत-कुछ छुटकारा पा लिया।

: ८८ :

शरीरभर फफोले

संपादक



मरीजका नाम श्री चिरंजीलाल मोदी है। रांची (बिहार) के रहनेवाले हैं। इनके बड़े भाई श्री चंडीप्रसाद मोदी अपने पीलियेकी चिकित्साके लिए यहां आये थे। उन्हें लाभ हुआ देखकर यह आये। लेकिन इन्हें देखकर प्राकृतिक चिकित्सा केंद्रके चिकित्सक, चिकित्सिका, दाईं, नौकर—सब घबरा गए। इनके शरीरभरमें इतने फफोले निकले हुए थे कि देखा न जाता था। चित्रमें उन सबका दिखाना तो असंभव ही है। छातीपर एक बड़ा—दो रुपएभरके करीबका, नासूर था, जिससे हमेशा मवाद निकलता रहता। सारे शरीरसे बदबू निकलती। इनके पास खड़ा होना भी कठिन था। यह भी मालूम हुआ कि रोगीके आहार-विहारमें संयमका अभाव है। डाक्टर, वैद्य, टोने-टामन, यंत्र-मंत्र, सबसे हार चुका था रोगी। लखपती घर है, इसलिए पैसे काफी खर्च हुए थे, लेकिन लाभ पैसेभर भी न

हुआ था। रोगी जीवनसे निराश, परेशान था। घरवाले भी।

रोगी कुछ दिनों देखनेकी शर्तपर ही रखा गया था। प्रकृतिकी कृपा कहनी चाहिए कि चार महीने लगाकर रोगी चंगा होगया। इलाज तो जो सबका होता है वही इनका भी हुआ—शरीरका शोधन। इनकी स्त्री श्री ज्वालादेवीने भी अपना दस-बारह सेर वजन घटाकर अपना शरीर सुडौल कर लिया।





: ८९ :

लो ब्लड प्रेशर

प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका
एम० पी०

सन् १९२० में कई मित्रोंके साथ मैं देहरादून गया था। वहीं एक सज्जनके द्वारा जल-चिकित्सासे मेरा परिचय हुआ था। उनका नाम शायद लाला लक्ष्मीचंद था। तबसे अबतक (१९५७ तक) यथासंभव अपना खान-पान दुरुस्त रखनेकी मैंने कोशिश की है। किसी नशेका सेवन नहीं किया। चाय तक भी नहीं पी है, कभी। सदा सादा और परिमित खाना खाया। कलकत्ता जैसी महानगरीमें रहते हुए भी मैं स्वयं डाक्टरोंके चक्करमें बहुत ही कम पड़ा। दूसरोंको और अपने कुटुंबियोंको भी दवाके फंदेमें फंसने से बचानेकी यथाशक्ति कोशिश करता हूं। पर पिछले दिनों एक डाक्टरने, जो मेरे यहां बच्चोंको देखने कभी-कभी आते हैं, मुझे 'लो ब्लड प्रेशर' (अल्प रक्तचाप) के संदेहमें डाल दिया। साथ ही डाक्टर यह सलाह भी दे गया कि इसके लिए मुझे कुछ पौष्टिक भोजन करना चाहिए और कोई टानिक लेना चाहिए। मैंने उनकी टानिक-वानिककी बातें तो मानी नहीं, लेकिन खुराकमें कुछ छेना

और दही जरूर बढ़ा दिया, ब्लड प्रेशर बढ़ानेके खयालसे। पर यह बढ़ा नहीं। हां, पेट जरूर कुछ बढ़ने लगा। इसी समय संयोगसे मैं दस-पांच दिन घूमनेके खयालसे प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र जसीडीह आ गया। वैसे ट्रस्टीके नाते तथा मुझे यह कार्य अति प्रिय होने के कारण अवकाश मिलते ही मैं इसे देखने पहुंच जाता हूं। यहांके चिकित्सक (श्री महाबीरप्रसाद पोद्दार) मेरे पुराने (१९०६ से) मित्र हैं। उन्हें भी प्राकृतिक चिकित्साकी पूरी लगन हम लोगोंके देहरादूनसे लौटनेके बाद ही लगी थी। मेरे जसीडीह पहुंचते ही उन्होंने कहा, "आप इतना घूमते हैं, खान-पान ठीक रखते हैं, फिर यह पेट क्यों बढ़ गया है ?" अल्प रक्तचापकी और उसके लिए पौष्टिक खानेकी बात सुनकर उन्होंने कहा, "आप भी किस चक्कर-में पड़ गये, पौष्टिक खुराकसे कहीं घटा हुआ रक्तचाप बढ़ता है ? बढ़ा हो तो और जरूर बढ़ जाता है। आप डाक्टरको रक्तचाप दिखाने हो क्यों गए ?"

"दिखाने कहां गया मैं, वह तो आला (यंत्र) घर लाकर आपही देख गया। मैंने तो देखा भी नहीं, कहा ही सुना कि ब्लड प्रेशर लो है।"

"और मान लिया आपने ?"

"किसीको झूठा कैसे माना जा सकता है ?"

"दुनियामें सब सच्चे ही हैं ?"

"जबतक झूठे साबित न हों।"

"खैर, अब तो साबित हो गया आपके सामने कि पौष्टिक खुराकसे रक्तचाप नहीं, पेट बढ़ा, जो एक बड़ा रोग है।"

मैंने कहा, "अब आप कहिए, आपकी सुनूंगा।" उन्होंने बताया, कुछ दिनों फलाहार और रसाहार कर लीजिए, पेट घट जायगा।

रक्तचापकी फिक्र शरीर आप करेगा। कई दिनके फलाहार, रसाहार तथा कटि-स्नान आदिसे मेरा पेट कई इंच घट गया। रक्तचापका वहम भी मनसे चला गया। रक्तचाप कितना हो गया, इसका कुछ पता नहीं। मनमें जो एक संस्कार पड़ा था कि रक्तचापके कारण सिर भारी-सा रहता है, वह दूर हो गया। मनुष्य पर बड़ा 'चाप' (दबाव) तो संस्कारोंका ही होता है।

इसके उदाहरण तो नित्य मिलते हैं। मेरा अपना एक उदाहरण सुनाता हूं। सन् १९४० या ४१ की बात है। उन दिनों छठे-छमाहे मेरी छातीके पास एक आध मिनटके लिए कुछ 'चिलक'-सी—हल्की कुछ पीड़ा-सी लगती। एक दिन मैं सीधा श्रद्धेय डाक्टर विधानचंद्र रायके पास पहुंचा। छातीके एक्सरे लेनेकी सलाह मिली। फेफड़ेके—छातीके, पेटके तथा शरीरके अन्य कई भागोंके कितने ही एक्सरे लिये गए। रेडियोलोजिस्ट (एक्सरे पंडित) ने कहा, "अपेन्डिसाइटिसका शक है, कुछ-कुछ।" सारे फोटो देखनेके बाद डा० रायने मुझे कलकत्ताके प्रसिद्ध सर्जन डा० कर्नल एल० एम० बनर्जीको दिखानेकी सलाह दी। बड़ी मेहरबानीसे उन्होंने सब देख-सुनकर कहा कि अपेन्डिक्सका आपरेशन करानेकी जरूरत है। मैं बोला, "मुझे जिंदगीमें कभी अपेन्डिक्सके हिस्सेमें कोई पीड़ा नहीं हुई, फिर भी आप आपरेशनकी जरूरत मानते हैं ?" उन्होंने कहा, "मैं तुम्हें मित्रभावसे सलाह देता हूं कि अभी तो हालत बहुत नाजुक नहीं है, आपरेशन आसान है, अन्यथा अपेन्डिक्स पककर कभी तुम्हें दर्द उठेगा तो फिर मुझे किसी रात-को तुम्हारे लिए परेशान होना पड़ेगा।"

क्या करता, इतने बड़े नामी सर्जनकी बात कैसे टालता ! आपरेशनकी तारीख तय हो गई। मेरे खूनकी जांचसे यह निश्चित

हुआ कि शरीरमें कैलशियमकी कुछ कमी है, सो कई दिन कैलशियम खाकर खून दुरुस्त होनेपर आपरेशन होगा।

संयोग, उन्हीं दिनों कलकत्तामें जापानी बम गिरनेसे लोग अपनी-अपनी जान लेकर भागने लगे। बहुतेरे डाक्टर भी चल दिये। सब गड़बड़-झाला हो गया। मेरा आपरेशन भी मुलतवी हुआ सो हुआ ही। उन बातोंको आज १६ साल होने आये, न फिर मेरा आपरेशन हुआ और न मुझे कभी अपेन्डिक्सकी पीड़ा ही।

इसी तरह, मेरे साथ काम करनेवाले श्री बनवारीलाल शर्मा बी० ए०, बी० एल० की बात मुझे मालूम है। दो बार उनके अपेन्डिक्सका आपरेशन हुआ। फिर भी वह दर्द होता ही रहा। तीसरी बार आपरेशनके लिए अस्पतालमें भरती कराया गया। इसी समय कार्यवश पोद्दारजी कलकत्ता आये। उन्हें अस्पताल ले जाकर शर्माको दिखाया तो उन्होंने कहा, "मेरे साथ आरोग्य-मंदिर, गोरखपुर भेजिए, यह बिना आपरेशनके ठीक हो जायंगे। क्यों ब्राह्मणकी हत्या करवाते हैं ?" शर्मा उनके साथ गोरखपुर गये। तीन महीने वहां रहकर उपचार किया। आज उन्हें दर्दसे छुटकारा पाये: छ साल हो गए।

: ९० :

उच्च रक्तचाप और मधुमेह



भोला प्रसाद महतो

मैं जगदीशपुर (भागलपुर) में होमियोपैथी करता हूं। मेरी उम्र ३३ साल है। पिछली-दुर्गापूजाके करीब मुझे कुछ कमजोरी मालूम होने लगी। पेशाब ज्यादा आ रहा था। जांच करनेपर दो प्रतिशत चीनी मिली और फिर ब्लडप्रेशर १६०।९५।

होमियोपैथी तथा एलोपैथी उपचारोंसे कोई फायदा न हुआ। उल्टे २४-१२-५६ को अकस्मात् मेरी बाईं आंखकी रोशनी खत्म होगई और दाहिनी आंखके सामने भी काले धब्बे-से दिखाई देने लगे। कलकत्ता, पटनाके बड़े-बड़े डाक्टरोंको दिखाकर सलाह, दवा ली। चार महीनेके इलाजका नतीजा यह हुआ कि दाहिनी आंखकी रोशनी भी दिन-दिन कम होने लगी, हमेशाके लिए अंधा हो जानेकी आशंका होने लगी।

यहां एक बात कह दूं कि पहले या उपर्युक्त उपचारके दरमियान मैंने अपने खानपानमें कोई परिवर्तन या कहिए संयम, नहीं किया। मैंने स्वयं इसकी जरूरत नहीं समझी, न किसी दूसरे डाक्टरने ही कहा, बल्कि, डाक्टरोंने खूब खानेकी राय दी। मैंने खूब खाया, और जो जी चाहा, खाया। मांस, मछली, अंडे--सब चले, यह समझकर कि रोगसे लड़नेको खूब ताकत चाहिए, और

ताकतके लिए तो यही सब पदार्थ हैं। बाहरसे देखनेमें मैं मोटा जरूर हुआ, लेकिन ताकत नहीं आई, बल्कि कुछ जाती ही गई।

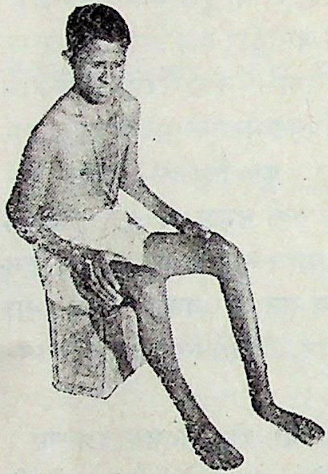
इसी समय किसीके परामर्शसे जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा-केंद्र पहुंचा। चिकित्सकने देखा, सुना। न शरीरमें कहीं हाथ लगाया, न कोई यंत्र। दस-पंद्रह मिनट सुननेके बाद कहा, उपचार कराइए, ठीक तो होना चाहिए। कुछ निराशा-सी हुई। मुझे लगा, यह मेरे रोगोंकी गंभीरताको नहीं समझ रहे हैं। कुछ यह भी जान पड़ा कि मेरी ओर पूरा ध्यान नहीं दिया गया। लेकिन वहां मौजूद दूसरे रोगियोंको देख-सुनकर मनमें विश्वास-सा आया कि इस चिकित्सा द्वारा डाक्टर, वैद्योंसे निराश हुए कठिन-से-कठिन रोगी भी आराम होते हैं।

२ महीने ८ दिनके इलाजमें मेरे रोग लगभग चले गए। दाहिनी आंखकी रोशनी लौटने लगी। बाईंसे तो मैं निराश ही हो गया था। यहां मैंने अमृतान्न शुरू कर दिया था और घर जाकर भी उसे जारी रखा। परिणाम यह हुआ कि बाई आंखमें भी रोशनो आ गई। इस चिकित्साने मुझे अद्‌भुत लाभ पहुंचाया है या यों कहूं कि मेरा जीवन-परिवर्तन कर दिया है। बीस पौंडके लगभग मेरा वजन भी गया, जो बिल्कुल फजूल था।

: ९१ :

पांवका दर्द

रामचंद्र सिंह



सन् १९५५ में मैं कुल्टी (बर्नपुर) कारखानेमें काम करता था। इसी समय मेरे दोनों पांवोंमें दर्द होने लगा और सूजन भी आ गई। एक्सरे लिवाकर तीन महीने डाक्टरी इलाज कराता रहा। कोई लाभ न होनेपर होमियोपैथीका सहारा लिया, पूरे दो महीने। वह भी बेकार हुआ। दुर्गापूजाकी छुट्टीतक तो मैं किसी तरह ड्यूटी पूरी करता रहा, लेकिन दुर्गापूजाके समय पांवोंमें सूजन और दर्द बढ़ जानेपर स्ट्रैचरपर मुझे अस्पताल ले गए। वहां पाखाना, पेशाब बिस्तरपर ही करता। रोज तीन सुइयां लगतीं। पैरोंमें पलस्तर कर दिया गया। वह १५ दिनों बाद खुला तो देखा कि मेरे पैर पतले होते जा रहे हैं। दर्द ज्यों-का-त्यों था। उल्टे, दाहिने पांवमें कई गांठें निकल आईं।

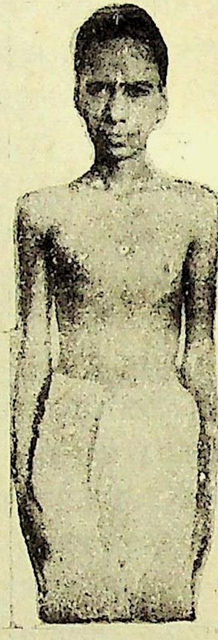
मुझे डाक्टरी इलाजसे घृणा तो पहलेसे ही थी, लेकिन नौकरी बचाने और परिवारवालोंकी सलाहके कारण कराना पड़ा। अंतमें मैंने छुट्टी ली और १५ दिन बाद घर आ गया। वहां वैद्यका इलाज चला। उससे भी कुछ न हुआ। पेशाब, पाखाना खाटपर ही करता।

मैं जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा-केंद्रसे पहलेसे ही परिचित था। घरवालोंसे बहुत कहने-सुननेपर उन्होंने मुझे इसी हालतमें वहां पहुंचाया। वहां मुझे चिकित्सककी ओरसे बहुत सांत्वना मिली। मेरी पाखाने, पेशाबकी सुविधाके लिए काठकी एक चौकी बनवा दी गई, जिसके कारण मुझे बहुत आराम मिला। यहां मुझे पहले दस दिन फलाहारपर, फिर १५ दिन केवल नीबू के पानीपर रखा गया—यानी उपवास कराया गया। इन दिनोंमें एनिमा द्वारा मेरे पेटसे बहुत काला और कड़ा मल—गांठोंकी शक्लमें निकलता रहा। कटिस्नान, भाप्रस्नान, मिट्टीकी पट्टी वगैरह तो थी ही। १५वें दिन जोरकी भूख लगनेपर मुझे रसाहार कराया गया, ४ दिन। फिर अमृतान्न दिया गया। अब मैं लाठीके सहारे चलने लायक हो गया था। पांवकी गांठोंसे मवाद निकलने लगा था। मवादके साथ-साथ पांवोंका दर्द दूर होता गया। घर जाकर भी मैं दो महीने अमृतान्नपर रहा और उपचार चलाता रहा। दर्द, घाव सब ठीक हो गए। अब मैं बिना लाठीके सहारे चलता हूं और इतनी शक्ति आ गई है कि कुएंसे १२ इंचकी बाल्टी भरकर ले आता हूं। अपने अन्य सारे काम भी कर लेता हूं। यह कुदरतकी कृपा ही है कि प्राकृतिक चिकित्साके कारण मैं अपाहिज होनेसे बच गया। डाक्टरने तो कह ही दिया था कि अगर इस तरह दर्द नहीं जायगा तो तुम्हारे दोनों पैर काट देने होंगे। उस समय मेरे मनमें कितनी निराशा हुई थी, और आज कितनी खुशी है! प्राकृतिक चिकित्सा-केंद्रमें मुझे कभी यह नहीं मालूम हुआ कि मैं किसी अस्पतालमें हूं।

: ९२ :

हुचकी, डकार

रामकुमार पोद्दार



मुझे अजब तरहकी हुचकी और डकार आती थी। घंटेमें न पचास बारका ठिकाना था, न साठ बारका। बुरी हालत थी मेरी। कब्ज था, पाचन-शक्ति खराब थी, लेकिन मुझे उन सबकी कोई चिंता न थी, अधिक चिंता हुचकीकी ही थी। उसके कारण किसीके सामने मेरा बैठना मुश्किल था। समाईके अनुसार कलकत्तामें मैं सब इलाज करा चुका था। कोई इतना भी न बता सका कि आखिर इतनी हुचकी आती क्यों है? कहते, यह तो नया ही रोग है. पोथियोंमें कहीं इसका नाम नहीं मिलता है।

जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा-केंद्रके चिकित्सकने मेरे रोगपर कोई आश्चर्य---कोई असाधारण भाव न दिखाया। हुचकीके बारे-में तो पूछा भी बहुत कम, ज्यादा तो मेरे खाने और पाखानेका हाल ही पूछते रहे। मुझे ताज्जुब भी हुआ कि असली रोगकी बात न करके, खानेकी ही बात क्यों करते हैं। खानेसे और हुचकी-से क्या संबंध है? पर जब प्राकृतिक चिकित्साकी बदौलत मेरी हुचकी चली गई तब मैंने समझा कि इसकी जड़ तो दरअसल खानेमें ही थी।

: ९३ :

पीलिया

देवीप्रसाद सरया

मेरे रोगका इतिहास--आई० एस-सी० पास करके मैं शिवपुर इंजीनियरिंग कालेजमें भरती हुआ। वहां बोर्डिगमें रहते समय मैं ग्वालेसे रोज एक सेर दूध लेकर पीता। वह दूध गरम करके दे जाता। दूध शुरू करनेके बाद ही मेरे पेटमें दर्द रहने लगा। संयोगसे एक दिन मैंने दूध नहीं पीया। बरतनमें पड़ा रहा। जब सुबह उसे फेंकने लगा तो बरतनके पेंदेमें खड़िया मिट्टी-सी जमी मिली। लैबोरेटरीमें टेस्ट--जांच करनेपर 'कैलशियम कारबोनेट' ही निकला।

तबसे दूध छूटकर चाय आई। साथ यह संस्कार आये कि यहां रहना हो तो मुझे सामिष भोजन अपनाना चाहिए। एक सालमें ऐसा बन गया कि अंडोंमें कोई हिचक न रह गई। इस प्रकार दो साल तो मजेमें कटे। फिर दूसरे सालकी फाइनल परीक्षाके सिर्फ दो दिन बाकी थे कि सुबह अकस्मात् पेटमें असह्य पीड़ा उत्पन्न हुई। बड़ी कठिनाइयोंसे अस्पताल गया। डाक्टरने ग्लिसरिनका एनिमा दिया। उससे मुझे एक दस्त हुआ। कुछ फायदा लगा। उस दिन मैंने सिर्फ डाभका पानी पीया। शामतक ठीक हो गया।

इसी तरह कभी बीमार, कभी आराम, चार साल गुजर गये। इंजीनियरिंग पास करके मैं टैक्समैकोमें काम करने लगा। वहां तो खान-पान एकदम खराब हो गया। सुबह नाश्तेमें एक सिंघाड़ा, एक कचौरी और एक प्याला चाय और दो वक्त बासेका भोजन था।

छः महीने पहले मेरी भूख कतई बंद हो गई। पेटका दर्द तो रहता ही था। कभी-कभी दस्तमें आंव आते थे। इसके लिए मैं बीच-बीचमें उपवास करता, पर चाय उपवासमें भी पीता। पूजाकी छुट्टीमें घर आनेपर मैंने एक दिन कुछ न खाया तो मेरी मांको बहुत परेशानी हुई। उसने मेरे चेहरेकी ओर देखकर कहा, "तेरी आंखें बहुत पीली हैं, पेशाब भी पीला होता है क्या ?" मैंने पेशाबपर ध्यान दिया तो बिल्कुल पीला। डाक्टरको दिखाया तो उसने पीलिया बतलाया और क्रानिक डिसेंट्री भी। एमिटीनकी सूइयां दीं और एकोमाईवीनके कैपसूल खानेको।

मुझे कई दिन ज्वर आता रहा, दस्त भी लगते रहे। डाक्टरने डेढ़ महीनेमें मुझे बिल्कुल नीरोग बताकर कामपर जानेकी अनुमति दे दी। पर मुझे मालूम होता था कि अब भी मेरा पेट साफ नहीं है। डाक्टरसे कहा तो उसने एक दवाका नाम लिखकर दे दिया और कहा, बीच-बीचमें इसका सेवन करते रहो, ठीक हो जाओगे। मैं कलकत्ता गया, लेकिन काममें अपनेको असमर्थ पाकर रानीगंज लौट आया।

वहां श्री गोविंदरामजी खेतानकी सलाहसे मैं प्राकृतिक चिकित्सा-केंद्र जसीडीहमें भर्ती हुआ। मैंने सात दिनका रसाहार किया। रसाहारमें मुझे अद्‌भुत स्फूर्ति मालूम हुई। आलस्यका तो नाम-निशान भी न रहा। रसाहारके बाद मैंने एक छोटा दूध-कल्प किया और उसके बाद दो सेर दूध, चोकड़सहित आध पाव आटेकी रोटी और थोड़ा फल खाने लगा। अब मुझे क ी एक बार, कभी दो बार बंधा हुआ साफ पैखाना होता है। पेटके दर्दकी पुरानी शिकायत जाती रही। दूध पीनेकी आदत फिर होगई। चाय छूट गई। एक तरहसे मेरा कायाकल्प हो गया।

: ९४ :

मासिकके समयका दर्द

देवीप्रसाद सरया

शादीके बाद रानीगंज आनेपर मेरी स्त्रीने बतलाया कि मासिकके समय उसके पेडूमें अत्यंत पीड़ा होती है। मैं कलकत्ता-में काम करता था, इसलिए मुझे उसकी पीड़ा देखनेका मौका न मिला था। इस बार मुझे पीलिया हो जानेपर डेढ़ महीने रानीगंज उसके साथ रहना पड़ा तो उसकी तकलीफका कुछ अनुमान हुआ। वह चौबीसों घंटे पड़ी छटपटाती रही। डाक्टरसे सलाह लेनेपर उसने कहा, गर्भाशयका मुंह छोटा होनेके कारण इस तरहकी तकलीफ होती है। पहला बच्चा होनेके बाद तकलीफ अपने-आप जाती रहती है। उसके पहले, आपरेशनके सिवा कोई उपाय नहीं है। मेरे संतोषके लिए उसने एक दवा दे दी, लेकिन उससे कोई लाभ न हुआ।

मेरे जसीडीह आनेमें एक लोभ स्त्रीके उपचारका भी था। मुझे विश्वास तो था कि प्राकृतिक चिकित्सासे इसका रोग जायगा, लेकिन मैं समझता था तीन-चार महीने लगेंगे। मेरे पास उतना समय नहीं था। फिर भी यह सोचकर कि सोलह आने न सही, एक महीनेमें चार-छः आना ही हो जायगा, बाकी घर करेंगे, मैं स्त्रीको यहां ले आया। अपने घरवालोंसे मैंने अपना विचार नहीं बत-लाया; क्योंकि उनकी धारणा है कि प्राकृतिक चिकित्सा करानेसे आदमी कमजोर हो जाता है। उनसे मैंने कह दिया कि हम लोग एक महीने हवा-पानी बदलकर आजायंगे, चिकित्सा नहीं करायेंगे।

जसीडीह आकर मेरे साथ श्री शारदादेवीका इलाज भी शुरू हुआ। वही, जो मेरा हुआ। सात दिन रसाहार, फिर दूध। कटि-स्नान, मिट्टीकी पट्टी वगैरह तो थे ही। दूध बढ़कर पौने चार सेरतक गया। शारदादेवीने अपने घर तो कभी एक पाव दूध भी न पिया था। बहुत कोशिश करके भी माता-पिता दूध पिलानेमें सफल न हो सके थे।

मासिकके समयके एक दिन पूर्व रसाहार तथा गरम-ठंडा नहान कराया गया। ७-१-५७ को सुबह चार बजेके लगभग कुछ रक्त आना आरंभ हुआ। वह रोज मेरे साथ घूमने जाती, पर आज न जा सकी। मैं अकेला ही गया। पर रानीगंजमें जो हालत उसकी देख चुका था, उसे याद करके मेरे मनमें डर लग रहा था कि पीछेसे एक घंटेमें शारदादेवीकी क्या हालत हुई होगी। लौटकर मैं उसे बिस्तरेपर पड़े कराहते देखनेकी आशंका कर रहा था, पर मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह कुर्सीपर बैठी स्वेटर बुन रही है। मुझे अवर्णनीय प्रसन्नता हुई और शारदादेवीको भी। मैं मानता हूं कि हम दोनोंके रोग चले गये हैं।

: ९५ :

कब्ज और अपच

रमाकांत

मैं कई वर्षोंसे कब्ज और अपचसे पीड़ित था। मुझे सायटिका——एक तरफ पुट्ठेसे लेकर पांवके नीचेके हिस्सेतक दर्द——(Nerve Pain) भी था। होमियोपैथी, वैद्यक, एलोपैथीकी बहुत दवाइयां खानेपर भी किसीसे कोई स्थायी लाभ न हुआ। कुछ दिनों आराम रहकर हालत ज्यों-की-त्यों हो जाती। दिन-ब-दिन कमजोर और आलसी बनता गया। किसी काममें मन न लगता, दवा खाते-खाते और इंजेक्शन लेते-लेते तंग आ गया। दवा बंद करके भगवान-भरोसे बैठ रहा।

मेरे बड़े मामाजी रेलवे बुकस्टाल से 'आरोग्य' लाया करते थे, उसमें कई ऐसे केस पढ़ता जो सब तरफसे हारकर प्राकृतिक चिकित्सासे अच्छे हुए थे। पर सर्वत्रसे निराशा पानेके कारण इसपर भी विश्वास न जमता था। अंतमें यह सोचकर कि एक बार आजमा देखनेमें क्या हर्ज है, कुछ भला न होगा तो बुरा क्या होगा, जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा-केंद्रमें पहुंचा। यहां मुझे ऐसा लगा जैसे कोई खोया हुआ बालक अपनी मांकी गोदमें पहुंच गया हो।

प्राकृतिक चिकित्साके नियम और उपचार तो बहुत साधारण थे, पर उन्हींपर चलकर मेरा कब्ज और अपच चला गया। सुस्ती भी। अब मैं अपनेको पूर्ण स्वस्थ अनुभव करता हूं। सायटिकाका दर्द भी पहलेसे कम है। यदि चिकित्सकके कथनानुसार मैं वहां एक महीने और रहा होता तो मेरा यह दर्द संपूर्ण चला जाता। पर कार्यवश मुझे जल्दी लौट आना पड़ा।

: ९६ :

आंख दुखना, पीलिया, बवासीर

यशपाल जैन

सन् १९४० की बात है। मामाजी (हिंदीके सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेंद्रकुमारजी) को बंबई हिंदी विद्यापीठमें दीक्षांत-भाषण देने जाना था। वहां सब तैयारियां हो चुकी थीं। जानेके दो दिन पहले अकस्मात् मामाजीकी आंखें दुखने आ गईं और जोरसे। बड़ी परेशानी हुई, यह सोचकर कि समारोहके विशेष अतिथिके न पहुंचनेसे संयोजकों तथा विद्यापीठके विद्यार्थियों और अध्यापकोंको कितनी निराशा होगी। रात होते-होते आंखें सुर्ख होगईं, दर्द बढ़ गया। उपचारस्वरूप हम लोगोंने पीली मिट्टी पानीमें साबी और बाजरेकी रोटीके बराबर मोटी पट्टी बनाकर दोनों आंखोंपर बांध दीं। रातभर बंधी रहीं। सवेरे उठे तो यह देखकर हम लोगोंके आश्चर्य और हर्षका ठिकाना न रहा कि आंखोंको रुपयेमें बारह आना फायदा था। अगले दिन फिर मिट्टीकी पट्टी रखी और तीसरे दिन जब चले तब तकलीफ मुश्किलसे पैसे भर रह गई थी।

× × ×

कुछ साल पहले मुझे पीलिया होगया। आफिसमें बैठे-बैठे तबीयत घबराई। घर लौटा। अगले दिन आंखें पीली होगईं और पेशाब हल्दी-जैसा आने लगा। धीरे-धीरे सारे शरीरपर जर्दी फैल गई। शहरोंमें डाक्टरी चक्करसे बहुत थोड़े सौभाग्यवान बच पाते हैं। मुझे भी अनेक डाक्टरोंके चक्करमें पड़ना पड़ा। पेट

दवाओंका गोदाम बनकर भी बीमारीमें कोई लाभ न हुआ। जितने डाक्टर आये, सबकी रायें अलग-अलग और तब दवाइयां भी अलग-अलग होनी ही थीं। मेरी पत्नीकी छोटी बहनने, जो डाक्टर हैं, पेन्सिलिन और विटामिन बी काम्प्लेक्सके इंजेक्शनों का कोर्स दिया। यह सब होते हुए भी मुझे साफ दीखता था कि रोगमें कोई फायदा नहीं है। पिलाई ज्यों-की-त्यों थी। भूख जरा भी नहीं। जिगर काम नहीं कर रहा था। डाक्टरी दवाइयां खाते-खाते तंग आ जानेपर मैंने सब बंद कर दीं। एक दिन किसीने इस रोगमें मूली और पपीतेको बहुत फायदेमंद बताया। मैंने पहले मूलीके पत्तोंका रस निकलवाकर थोड़ा-थोड़ा पीना शुरू किया। दो-एक दिनमें लाभ मालूम हुआ। धीरे-धीरे रुचि बढ़ी और मैं मूली और पपीता काफी मात्रामें लेने लगा। इस बीच मेरा छोटा भाई एक आदमीको लाया, जिसने कपड़ेकी पोटलीमें बंधी एक जड़ीको पानीमें रगड़कर वह पानी हथेली पर रखकर नाक द्वारा सूंघने को कहा। मैंने सूंघा। परिणाम यह हुआ कि बाईस घंटेतक मेरी नाकसे पानीकी बूंदें टपकती रहीं, हल्दी-जैसी पीली। तीसरे-चौथे दिन फिर उसने वही जड़ी सुंघाई और सात घंटेतक फिर पानी टपका। पपीते और मूलीका प्रयोग चल ही रहा था। आगे चलकर तो वह प्रयोग इतना बढ़ा कि मैं दिनभर में कच्ची, उबाल-कर और रस निकालकर करीब ढाई सेर मूली खा जाता। सवेरे थोड़ी देर खुली हवामें टहलता और पेटके जरा भारी होते ही एनिमा ले लेता। नतीजा यह हुआ कि कुछ ही दिनोंमें पिलाई जाती रही और जिगर भी धीरे-धीरे काम करने लगा। डाक्टरी चक्कर चला होता तो भगवान जाने कितना धन स्वाहा होता, तेज दवाइयोंसे बेचैनी सहनी पड़ती और फिर कौन कह

सकता है कि आराम हो ही जाता।

× × ×

हिंदीके सजीव और प्रखर साहित्यकार श्रद्धेय पं० बनारसीदास चतुर्वेदीकी सुपुत्री बहन देवकीका फिरोजाबादमें विवाह था। वहां पहुंचकर देखा तो दादाजी (चतुर्वेदीजी) चारपाईपर पड़े हैं। मालूम हुआ कि बवासीरसे हैरान हैं। खूब खून जा रहा था। थोड़ा ज्वर भी था। कुछ देर बाद सिविल सर्जन देखने आये। बोले—पांच मिनटमें ठीक किये देता हूं। उन्होंने मस्से अंदर कर दिये और चले गये। दस मिनट बाद ही मस्से फिर बाहर निकल आये और तकलीफ जैसी-की-तैसी होगई। मैंने कहा—"दादाजी, सिविल सर्जनका इलाज तो आपने कर लिया। आप कहें तो एक इलाज मैं भी कर लूं।" उन्होंने अनुमति दे दी। पीली मिट्टी वहां काफी मिल जाती है। उसमेंसे थोड़ी-सी लेकर मैंने पानीमें सानी और पट्टी बनाकर रोगग्रस्त स्थानपर बांध दी। ऊपरसे ऊनी मफलर लपेट दिया। मिट्टीका रखना था कि कुछ ही देरमें उन्हें चैन पड़ गया। जलन जाती रही। दो-तीन पट्टियां बदलीं कि मस्सोंका तनाव भी दूर हो गया। रातको पट्टी बांधी तो उन्हें ऐसी गहरी नींद आई कि खोलनेका ध्यान ही न रहा। कहां चारपाईसे उठा नहीं जाता था और कहां अगले ही दिन घूमने-फिरने लगे। उन्होंने फिर डाक्टरको बुलानेका नाम ही नहीं लिया और तीन दिनतक मिट्टीके प्रयोगसे ऐसा फायदा हुआ कि वह कहने लगे—यह तो चमत्कार हुआ है।

: ९७ :

दांतका दर्द

गुरुप्रसाद

दांतोंका मैं पुराना रोगी हूं। कई दांतोंको भरवाया, पर अंतमें वे दांत गये ही। इस सालके (सन् १९५६) आरंभमें मेरे एक दांतमें दर्द, जिसमें पहले कभी नहीं हुआ था, शुरू हुआ। मैं दांतोंका इलाज पटना मेडिकल कालेज अस्पतालके प्रधान दंत-चिकित्सकसे कराता रहा हूं। इस बार भी महीने-डेढ़ महीने कष्ट भोगनेके बाद मैं उक्त डाक्टरसाहबके पास पटना पहुंचा।

और बार तो कुछ तात्कालिक लाभ हो जाता था, पर इस बार तो पटनेमें महीनेभर इलाज करवाते रहनेपर भी कोई लाभ न हुआ। दर्दमें कमी न हुई। दांतोंका एक्सरे भी लिया गया, उससे भी दर्दके कारणका कोई पता न चला। अंतमें चिकित्सकने वह दांत उखड़वा देनेकी सलाह दी, पर मैं शुरूसे ही दांत उखड़वानेके पक्षमें नहीं रहा, इसलिए राजी न हुआ। अब मैं पटनाके सबसे पुराने और प्रसिद्ध अंग्रेज दंत-चिकित्सकके यहां गया। उसकी दवासे भी कुछ न बना। मैं पीड़ा सहता रहा और साथ-साथ मित्रोंकी मीठी झिड़कियां भी कि जब डाक्टरकी राय है तो दांत उखड़वा क्यों नहीं देते ? मेरी प्राकृतिक चिकित्सापर पहलेसे ही कुछ श्रद्धा रही है, इसलिए मैंने मित्रोंसे कहा, एक बार प्राकृतिक चिकित्सा-केंद्र जसीडीहमें दिखला लूं, उसके बाद जो होगा करूंगा। इसपर एक वयोवृद्ध मित्र बोले, "अरे भाई, प्राकृतिक चिकित्सा दांतके दर्दमें क्या करेगी, पेटका कुछ होता तो करती भी !"

मैंने उनकी बात अनसुनी की और २३ मार्चको जसीडीह प्राकृतिक चिकित्सा-केंद्रमें पहुंचकर वहांके चिकित्सकको अपनी रामकहानी सुनाई।

चिकित्सकका पहला सवाल हुआ, क्या खाते हैं ? मैंने समझा कि यह सोचते होंगे कि मैं कोई कड़ी चीज खाता होऊंगा और उसीकी वजहसे दांतमें दर्द हो गया है। मैंने उत्तर दिया कि मैं कोई कड़ी चीज नहीं खाता हूं।

"कड़ी-नरम मैं नहीं पूछता, साहब। सुबहसे शामतकमें कब क्या खाते हैं, सो कहिए।"

"दूध, दही, दाल, भात, घी, चीनी, तरकारी। दूध कुछ अधिक सेवन करता हूं।"

"दूध, दही, दालभात, घी, चीनी छोड़ दीजिए, गेहूंका दलिया और तरकारी खाइए, और बेलका मौसम है, थोड़ा बेल खाइए।"

और तो मैंने मनमें किसी तरह मान लिया, लेकिन दूध छोड़नेवाली बात मुझे नहीं भाई।

चिकित्सकने समझाया कि दस-पांच दिन दूध छोड़नेसे कुछ बिगड़ेगा नहीं। हिंदुस्तानके पौने पैंतीस करोड़ आदमी कहां दूध पाते हैं ! स्वास्थ्यके नाते क्या वह हमसे बुरी जिंदगी बिताते हैं ?

उनकी दलीलोंके प्रभावसे दूध तो मैंने उसी दिनसे छोड़ दिया और दो-तीन दिनमें ही दाल, भात, घी और रोटी भी बंद कर दी। अंतमें गेहूंका, भापमें पकाया दलिया, साथ बेल, पपीता आदि फल लेने लगा। पंद्रह दिन यही क्रम चला। मुझे कहते खुशी होती है कि दर्द तो मेरा तीन-चार दिनोंके अंदर ही चला गया। अब मैं अपने पुराने भोजनपर आ गया हूं, थोड़े परिवर्तनके साथ।

: ९८

पेचिश

पंचाननसिंह

देहातमें मेरी बीमारीका नाम 'थूथ' रखा गया। दिनमें पंद्रह-बीस पतले दस्त आते, कभी-कभी उनके साथ खून भी। मुझे अजीर्ण भी रहता। खाना मेरे लिए अभिशाप ही था। जीवन एक बोझ हो गया था। यथाशक्ति दवा कराकर लाभ न पानेपर मैं निराश हो बैठा था।

मेरे एक रिश्तेदार द्वारा मिट्टी-पानीके इलाजकी चर्चा चलनेपर मैंने उनका मजाक उड़ाया। रिश्तेदारने जवाब दिया, कितने बड़े भी डाक्टर, कविराज सही, वे सब भी बने तो मिट्टी-पानीसे ही हैं, एक बार करा देखनेमें आपका लगता क्या है?

मैं प्राकृतिक चिकित्सा-केंद्र, जसीडीह आकर रिश्तेदारके साथ ही ठहरा। यह देखकर मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा कि सात दिन बीतते-बीतते मेरे दस्तोंकी तादाद पंद्रह-बीससे तीन-चार ही रह गई। दिनभर जो मैं पाखानेमें ही बैठा रहनेवाला प्राणी था, वह काम लायक आदमी हो गया। इतनी जल्दी और इतना अधिक लाभ मेरे लिए एक जादू ही हुआ। मेरा वजन ९० पौंडसे बढ़कर आज ११२ पौंड हो गया है। खाना भी हजम होने लगा है। यह चिकित्सा इतनी सरल है कि हर आदमी एक बार इलाज करा लेनेपर साधारण रोगोंका चिकित्सक बन सकता है और दूसरोंको डाक्टरोंके चंगुलसे बचा सकता है। कम-से-कम अपने परिवारको तो बचा ही सकता है!

: ९९ :

घाव

गौरीशंकर शुक्ल

मेरे दाहिने पांवके घुटनेके नीचे एक बड़ा घाव हो गया था। पहले कई होमियोपैथिक दवाइयां खाईं, फिर बीसों रुपयेके पेंसिलिनके इंजेक्शन लिये, पर घाव सूख न पा रहा था। संयोगसे एक दिन प्राकृतिक चिकित्सा-केंद्रमें जाने पर चिकित्सकने अपने एक सहकारीसे कहा, "मिट्टीपर 'मंत्र फूंककर' इनके फोड़ेपर बांध दो और पांच सेर मिट्टी अभिमंत्रित करके उन्हें दे दो। घरपर बांधते रहनेकी तरकीब भी बतला दो।"

मुझे कहते खुशी होती है कि दो-तीन पट्टी बांधनेपर ही चौबीस घंटेके भीतर मेरे फोड़ेकी हालत बारह आने सुधर गई। तीन दिन मिट्टीके प्रयोगसे तो वह बिल्कुल अच्छा हो गया। पीछे मालूम हुआ कि मिट्टीके साथ मंत्रकी बात मेरी श्रद्धा बढ़ानेको थी। अब तो मेरी श्रद्धा योंही बढ़ गई थी।

एक दिन चिकित्सकने मुझसे पूछा, "सुकुलजी, यह आपका पेट क्यों बढ़ता जा रहा है?"

"कोई उपाय बतलाइए। कसरत तो बराबर करता हूं।"

उन्होंने मेरा खाना-पीना सुननेके बाद मेरी खुराक रुपयेमें बारह आने करवा दी और व्यायाम कुछ बढ़वा दिया। खुराकमेंसे घी और आध सेर दूध निकलवा दिया। इससे मेरे भोजन-खर्चमें १५ रु० महीनेकी बचत होने लगी और दो महीनेके अंदर मेरे पेटका घेरा छः इंच कम हो गया। शरीरमें पहलेसे अधिक स्फूर्ति रहने लगी।

ऐसा इलाज मैंने न देखा-सुना था कि खर्च बचे, तंदुरुस्ती बने।

: १०० :

ल्यूकोरिया, मासिककी खराबी

गीतादेवी

ग्यारह सालकी उम्रसे ही मेरे पेटमें दर्द रहने लगा था। मासिकका समय आनेपर तो उस दर्दने भयंकर रूप धारण कर लिया। मासिकका समय भी अनियमित रहता। धीरे-धीरे मैं ल्यूकोरिया (श्वेतप्रदर) की शिकार हो गई। मुझे नींद कम आनेकी शिकायत भी थी।

मेरे पेटके दर्दके लिए जितनी दवाइयां हो सकती थीं, हुईं। लाभ न होनेपर डाक्टरने आपरेशनकी सलाह दी। मैंने वह भी कराया। लेकिन दर्द गया नहीं, कमी हुई नाम-मात्रकी।

अपने पतिके साथ मैं प्राकृतिक चिकित्साके लिए जसीडीह आई। यहां कुछ दिनों फलपर रहकर २१ दिन रसाहारपर रही। साथ कटिस्नान, मिट्टीकी पट्टी, भाप-नहान और धूप-स्नान। घूमना भी रोज तीन-चार मीलका था। रसाहारमें मेरा वजन ८२।। गया। मैं पहलेसे ही काफी दुबली थी, ज्यादा वजन जानेकी गुंजाइश न थी। मुझे तो कुछ वजन पानेकी साध थी। रसाहारके बाद मैंने एक महीनेका दुग्ध-कल्प किया। इससे मेरा वजन ८४।। बढ़ा।

मेरे पेटका दर्द बिल्कुल चला गया। श्वेतप्रदरमें रुपयेमें चौदह आना लाभ है। आशा है कि प्राकृतिक चिकित्साके नियमोंपर चलकर मैं उससे बिल्कुल छुटकारा पा जाऊंगी। नींद भी मुझे ठीक आने लगी है।

आशा है, अब मुझे जिंदगीमें दवा लेनेकी जरूरत न पड़ेगी।

: १०१ :

ज्वर-वरदान

महाबीरप्रसाद पोद्दार

आज उन बातोंको छत्तीस साल हो रहे हैं। सन् १९१९ में महात्मा गांधीकी 'आरोग्य-साधन' पुस्तकसे मुझे दवा-विरोधी संस्कार मिले थे। कुछ ही दिनों बाद लूई कूनेकी 'आरोग्य प्राप्त करनेकी नवीन विद्या' पढ़कर वे अधिक दृढ़ हो गए। मनमें विश्वास जम गया कि स्वास्थ्य और दवाका कोई संबंध नहीं है।

दवा न खानेकी सीखके साथ स्वस्थ रहनेके लिए आहार-विहारमें संयम करना सीखा। शरीरमें कभी कुछ गड़बड़ी होते ही मैं खाना छोड़ देता, भरपूर पानी पीता। इतने सालोंमें बीमार पड़नेके मौके बहुत कम आये याद आते हैं।

हां, बीच-बीचमें जुकामका शिकार जरूर होता रहता और महीनों बना रहता—गरमीमें भी। जुकाममें मेरी नाकसे श्लेष्मा प्रायः खारिज होता रहता, पर उस समय औरोंकी भांति मैं भी उसे कोई रोग न मानता था। आज तो मैं उसे भीतर संचित दोष-की एक खास निशानी मानता हूं। मैंने उस समय वर्षोंतक इसके लिए कोई उपाय न किया। इस रोजमर्राके और तुच्छ-सी चीजके लिए उपवास-जैसे रामवाण अस्त्रका उपयोग मुझे भारी मालूम होता था। यह मुझे सूझा नहीं कि इस रोजानाके जुकामके लिए खुराकमें किसी खास फेरबदलकी जरूरत है। उस समय मुझे जुकामसे छुटकारा एक मित्रकी मेहरबानीसे मिला था।

'रोगोंकी अचूक चिकित्सा' के लेखक स्वर्गीय श्री जानकीशरण वर्मा एक स्काउट मेलेमें बस्ती आये थे---शायद सन् १९३८ की बात है यह। मैं भी वहां गया था। चर्चा-ही-चर्चामें मेरे जुकामका प्रसंग आ गया। इसपर उन्होंने मेरी उम्र पूछी। मैंने कहा--"यही पचास के आस-पास है।"

"खाते क्या हैं?"

चुपड़ी रोटी, दाल, तरकारी, दिनमें एक सेर दूध। सात सालसे रोटी तो २४ घंटेमें एक बार ही खाता हूं।

वर्माजी बोले, "दूध-दही बंद करनेके बारेमें कहते तो मुझे पशोपेश होना है, लेकिन दाल तो अब इस उम्रमें आप बिल्कुल ही न खायं तो बेहतर है।"

मैंने कहा, "नहीं, आप कहिए तो दूध-घी भी छोड़ सकता हूं। मुझे दूध, दही-घी खानेका कोई लालच नहीं है, मैं तो शरीर-की आवश्यकता समझकर ही खाता हूं।"

"तो कुछ दिनोंके लिए आप चारों चीजें छोड़कर देखिए।"

मैंने ये चारों चीजें छोड़ीं और जुकामने मेरा पिण्ड छोड़ा। पर दूध-घी छोड़नेसे कई महीनों बाद शरीर कुछ कृश होने लगा। कृशता वास्तवमें दूधके अभावमें नहीं, बल्कि खुराककी कमीके कारण आई थी। यदि मैं एक सेर दूधके बदलेमें अपनी खुराकमें अढ़ाई छटांक आटेकी रोटियां बढ़ा लेता या तीन कच्चा नारियल ले लेता तो दूधका अभाव पूरा हो जाता। पर नारियलकी बात मुझे उस समय सूझी नहीं और आटा मैं बढ़ा न सका। इसलिए फिर दूध लेने लगा, पर अब वह कच्चा होता। जुकाम नहीं लौटा। यों जाड़े-बरसातमें दस-पांच दिनके लिए किसी साल आ गया तो दूसरी बात है।

लेकिन इस बार कुछ जोरसे बीमार पड़ा। सन् ५५ के अगस्तकी २९ तारीख थी, पांच बजे शामका वक्त। बैठा श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयकी 'शेर-ओ-शायरी' पुस्तकके पन्ने उलट रहा था। यकायक लेटनेकी इच्छा हुई। एक सूती चादर ओढ़कर मैं खाट-पर जा लेटा। कुछ ठंड-सी लगनेके कारण मैं पैर सिकोड़े पड़ा रहा। उस समय हाथ-पैर हिलानेका तनिक भी जी नहीं कर रहा था। लगता था, ज्वर आया है।

दूसरे दिन सुबह कुछ कमजोरी होते हुए भी मैं चल-फिर सकता था। आध मील पैदल चलकर मैं चिकित्सालय गया, रोज-की तरह ही मैंने मरीजोंको देखा। किसीने यह न जाना कि रातको तबीयत खराव थी। दूसरे काम भी किये मैंने। दोपहरके वाद फिर उसी तरह ओढ़कर पड़ रहा। उपर्युक्त क्रम दो दिन और चला। चौथे दिन कमजोरी अधिक मालूम होनेपर चिकित्सालय जाना तथा अखबार, डाक पढ़ना-लिखना बंद हो गया।

चौथे दिन मेरी सारी प्रवृत्तियां बंद हो जानेपर किसीके खबर देनेपर कलकत्तासे श्री विजया देवी (मेरी पुत्र-वधू) जसीडीह पहुंच गई। मेरे शरीरमें हाथ लगानेपर उसे ज्वर बहुत तेज जान पड़ा। अव उसके मनमें यह फिक्र हुई कि थर्मामीटरसे देखे कि बुखार कितने डिग्री है।

जबसे यह थर्मामीटर चला है, चिकित्सकोंके सिवा अति साधारण लोगोंके मनमें भी यह जाननेकी बड़ी उत्सुकता होती है कि रोगीको बुखार कितने डिग्री है। ज्वरकी डिग्री जान लेना उपचारका एक प्रधान अंग समझा जाता है! यों तो सिर्फ बुखार कम है या ज्यादा, इतनेकी ही चर्चा हो सकती है,

पर डिग्री जान लेनेपर चर्चाको लंबी डोर मिलती है। केवल ज्वर-की डिग्रीको ही लेकर अनेक अटकलपच्चू बातें होती रहती हैं। दिनमें पांच-सात बार बुखार देखकर कापीमें नोट किया जाता और डाक्टरको ही नहीं, हर आये-गएको बताया जाता है---सुबह बुखार इतना था, दोपहरको इतना, शामको इतना। बेमतलब! आम लोगोंको इससे क्या सरोकार कि रोगीका बुखार कितना कम-ज्यादा है। तबीयत खराब है या अच्छी, इतना बताना काफी समझा जाना चाहिए। ज्वरकी डिग्री जान लेनेसे ज्वरके जानेमें रत्तीभर मदद भी तो नहीं मिलती। और जहां दवा लेने-देनेका सवाल ही न हो वहां तो ये चीजें बिल्कुल ही बेसूद समझी जायंगीं।

पर विजयाने थर्मामीटर मंगानेका बेतरह आग्रह किया। मैंने कहा, "करोगी क्या थर्मामीटरका? क्या होगा यह जानकर कि बुखार कितना है? पर उसके अत्यंत आग्रहके कारण, एक मरीजसे, जो कलकत्तासे बीमारीके साथ थर्मामीटर भी लेकर चले थे, मंगाना पड़ा। थर्मामीटरमें ज्वर १०५ आया। बस फिर क्या था, सब उपस्थितोंके चेहरे भारी होगए। खतरनाक हालत है इनकी! मेरी पांच दिनसे करीब-करीब ऐसी ही हालत रहती थी, दोपहरके बाद। पर अबतक वह खतरनाक नहीं समझी गई थी, लेकिन थर्मामीटर लगाते ही इस समय हालत भयंकर समझी जाने लगी। अब विजयाकी ओरसे मुझपर प्रति-बंध शुरू हुए, "रोज एनिमा लेनेसे कमजोरी आयेगी। ठंडे पानी-से नहाइए मत, स्पंज करा लीजिए, पेशाब-पाखाना खाटपर ही करना चाहिए, शरीरको हवा नहीं लगानी चाहिए, लोगोंसे बातचीत कम करनी चाहिए, इत्यादि।"

मैंने उत्तरमें कहा, "लोगोंसे बातचीत कम करना तो ठीक है, बाकी और सब मैं नहीं मानता।"

मेरी कुछ लेनेकी इच्छा न होती थी, किंतु विजया आग्रह करके मुझे दिनमें मौसंबीका कुछ रस, पानी मिलाकर पिला देती। इससे कुछ फायदा ही रहता। पीता यह मैं अनिच्छासे था। इच्छासे तो मैं सिर्फ एनिमा लेता था और नहाता था। एनिमासे रोज काफी मल निकलता था और ज्वर-तापसे दिनभर मुझे जो पसीना आता था उसे बिना नहाए साफ न किया जा सकता था।

इसी बीच एक प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक मित्र मुझे देखने आये। आते ही उन्होंने जो भाव दिखाया उससे मेरे मनमें आशंका हुई कि यह मुझे दवा लेनेको कहेंगे। अपनी दृष्टिमें मुझे किसी बाहरी चिकित्सककी आवश्यकता प्रतीत न होती थी। कुदरत तो मेरा इलाज कर ही रही थी। इससे अधिक कोई चिकित्सक क्या करता? १०५ डिग्री ज्वर उसीकी देन तो थी, और पसीनों द्वारा शरीरका सारा विकार निकालना उसीका काम था। एनिमा द्वारा आंतोंका मल निकालकर और स्नान द्वारा रोमकूपोंको साफ रखकर हम उसकी पूरी मदद कर ही रहे थे। मैं सोचता, इससे अधिक जो करना है, कुदरत ही करेगी। मरना-जीना भी तो प्रकृति—परमेश्वरके ही अधीन है। जीने-मरनेका तो मेरे मनमें खयालतक न आया। अपने जीवन-मृत्युके बारेमें सोचनेकी मुझे आदत भी नहीं है।

चिकित्सक मित्रने आकर्णन यंत्र (स्टेथिसकोप) से मेरी छाती देखनेकी बात की। मैंने इन्कार किया। मुझे उस वक्त जोरका पसीना आ रहा था। मैंने सोचा, यह छाती-पीठ ठोकेंगे तथा

डाक्टरोंकी तरह नाक-मुंह बनायंगे। संभव है, इनके मुंहसे कोई गोलमाल बात निकल गई, तो मेरा तो कुछ न बिगड़ेगा, पर ऊपरवाले लोग घबरा जायंगे। मुझे मालूम है कि अक्सर चिकित्सकोंकी जबानपर लगाम नहीं होती। वे नहीं सोचते कि उनकी गैर-जिम्मेदारीसे कही हुई साधारण-सी बातका रोगी और उसके घरवालोंके दिमागपर कितना बुरा असर पड़ता है। इनकी तो एक बात होती है, पर रोगीकी जानपर आ बनती है।

मुझे ज्वर उस समय १०५ था। सब लोग परस्पर इस निर्णयमें लगे थे कि वह ज्वर मियादी (टायफायड) है या मलेरियाका। बड़ी बहसके बाद तय पाया कि सुबह ९७ हो जाता है और ऊपर १०६ तक जाता है तो मलेरिया ही समझना चाहिए। एक मित्रने खून जंचवानेकी सलाह दी, पाखाना और पेशाब भी। मैंने कहा, "यह सब जंचवाकर होगा क्या ?"

बोले, "मलेरिया होगा तो बिना कुनेनके कैसे जायगा, बिना दवाके तो मलेरिया जाता ही नहीं।" पांच-सात हितू मित्र मौजूद थे। सबने यही फैसला किया कि मलेरिया है और यह फतवा भी दे दिया कि मलेरिया बिना दवाके नहीं जाता।

अब सब मिलकर मुझसे आग्रह करने लगे कि कुनैन लेनी चाहिए। उस समय मेरे मनमें तनिक भी निराशा नहीं थी और न दवापर मेरा रत्तीभर भरोसा। जिसने छत्तीस सालमें ज्वरको प्रकृतिका वरदान मानना सीखा हो वह उसे आज दवासे दूर क्यों करने लगा। मैंने दोस्तोंसे विनयपूर्वक कहा, "क्या होगा दवासे ? ज्वर चला जायगा यही तो, और वह चला कहां जायगा, जो बाहर दिखाई दे रहा है, वह भीतर दबा रहेगा। पसीनेके द्वारा अपनेआप निकलनेवाली गंदगी अंदर रुक जायगी और भविष्यमें

वह किसी दमा, एक्जिमा, गठिया-जैसे जीर्ण रोगके रूपमें प्रकट हो सकती है। हां, आप लोगोंके दिलको एक बार तसल्ली हो जायगी। पर आपके और मेरे दृष्टिकोणमें ही फर्क है।"

दवाके लिए लोगोंके आग्रह करनेका एक कारण और था। मेरी दशा कई दिन सन्निपातकी रही। कुछ होश नहीं था कि मैं क्या कह रहा हूं, यानी बहुत बार मैं आपेमें नहीं रहता था। ऐसी दशामें दवा न लेनेके आग्रहको मित्र लोग गलत मानते थे। लेकिन सान्निपातिक दशा होते हुए भी मुझे कई बातोंमें होश था। अजीब तरहका सन्निपात था मेरा। उस समय कोई सन्निपात कहता था तो मैं उसे स्वीकार न करता था। सोचता, वह मुझे समझ नहीं पा रहा है। लेकिन आज मैं सोचता हूं तो मालूम होता है, जरूर बीच-बीचमें मेरा मस्तिष्क ठिकाने नहीं रहता था। यह दशा संभवतः तीव्र ज्वरके परिणामस्वरूप थी। यदि मैं उस समय नित्य कटि-स्नान, दिनमें दो-तीन बार, ले सकता तो शायद ज्वर वशमें रहता और सन्निपातका उपद्रव न होता। पर न मेरी हालत ऐसी थी कि मैं कटि-स्नानके लिए आग्रह कर सकूं, न ऊपरवाले उसके बारेमें सोचते थे। मेरे पसीनेमें बेतरह बदबू थी। पानी कम पीनेकी वजहसे पेशाबका रंग गहरा पीला रहता था। मेरा खयाल है, यदि मैं पानी अधिक पी सकता तो अच्छा होता। पसीना और अधिक आता, सफाई ज्यादा होती। मेरे मुंहका स्वाद बेतरह बिगड़ा रहता था, लेकिन और किसी तरहकी बेचैनी न थी। न सिरमें दर्द था, न बदन ज्यादा टूटता, न कहीं जलन थी। मैं किसीसे कुछ न कहता कि मेरा यह करो या वह करो। चुपचाप पड़े रहनेकी ही तबीयत चाहती।

आठ-दस दिनोंमें ज्वर बिल्कुल चला गया और जो शुश्रूषा

आदिके लिए आये थे, वे भी चले गए। अब बीमार पड़नेके बारेमें अपना अंदाज कहना चाहता हूं।

मैं इधर एक सालसे अमृतान्न यानी बिना आगकी पकी खुराकपर था और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बहुत अच्छा था। दो समय साफ शौच होता था। शरीर, मन दोनोंसे प्रसन्न था। पर ज्वर आनेके एक महीने पहले कुछ कारणोंसे मुझे कब्ज रहने लगा—दो बारके बजाय मैं एक बार शौच जाने लगा और वह भी एनिमा लेकर। मनमें समझता रहा, कुछ हर्ज नहीं, पेट साफ तो हो ही जाता है। परिस्थिति ठीक होते ही पुराने क्रमको अपना लेनेकी मेरी इच्छा थी। भूख भी मेरी कम होती गई। सिर्फ डेढ़ सेर दूध और एक छटांक कच्चा नारियल मेरी खुराकमें रह गया। नींदमें व्याघात हुआ। घूमना भी अनियमित हो गया। कभी घूमने जाता, कभी नहीं। शरीरमें कूड़ा जमा होने लगा। बहुत लोगोंके शरीरमें इसी तरह वर्षों कूड़ा जमा हो जाता है और वे इसे किसी तरह निबाहे जाते हैं। परिणामस्वरूप उन्हें जीर्ण रोग सताते हैं, जैसे दमा, गठिया वगैरह, पर जिनके शरीरमें यथेष्ट जीवनी शक्ति होती है, उनकी प्रकृति तो कूड़ेको अधिक कालतक बरदाश्त नहीं कर सकती—जैसे बच्चोंकी प्रकृति। कुछ दिनों ज्यादा मीठा, खट्टा या गलत खुराक खाते ही उन्हें फोड़े-फुंसी निकलने लगते हैं, दस्त लगने लगते हैं अथवा दो-चार दिन तेज बुखार आ जाता है। मेरा भी वही हाल हुआ। महीने-बीस दिनके अपथ्यका परिणाम मेरे शरीरमें ज्वरकी शक्लमें प्रकट हुआ। आंतोंमें जमा मल उपवास करके एनिमा लेनेसे निकला और ज्वरने पसीने द्वारा रक्तमें मिला हुआ विष निकाला। इस क्रियामें दस-बारह दिन लग गए। इस बीच मेरा वजन १६ पौंड चला गया।

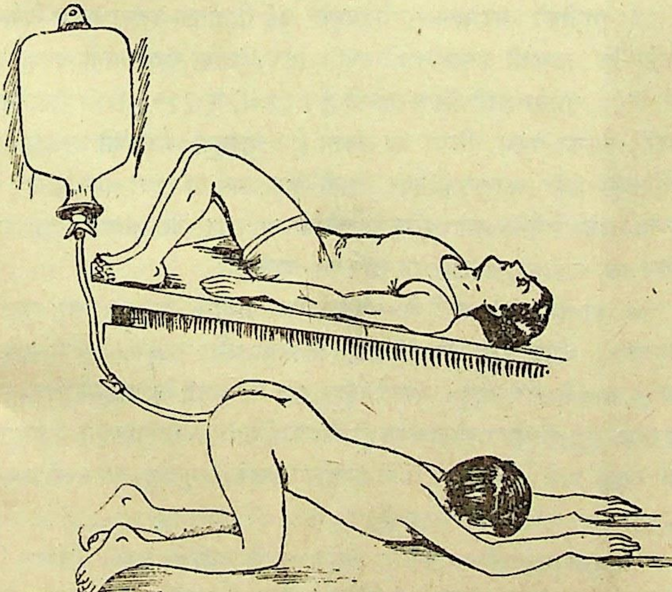
ज्वरके चले जानेपर पहलेकी अपेक्षा अधिक ताजगी मालूम होने लगी। धीरे-धीरे मेहनत बढ़ी और साथ-साथ भूख-प्यास भी। मैं सुबह-शाम तेजीसे चार-पांच मीलका चक्कर काटने लगा। शौच पहलेकी भांति दिनमें दो बार साफ होने लगा। खुराकमें सारे दिनमें मैं डेढ़ सेर दूध, तीन छटांक आटेकी रोटी, एक छटांक घी, आध सेर तरकारी, दो छटांक नारियल कच्चा और थोड़े फल लेने लगा। चालीस दिनमें गया हुआ सोलह पौंड वजन पूरा हुआ, और बादमें तो चार पौंड अधिक आ गया। यह ज्वर मेरे लिए एक वरदान ही साबित हुआ।

परिशिष्ट

प्राकृतिक चिकित्साकी विधियां

१. एनिमा

१. **लेनेका समय**—यदि सुबह दो बार शौच जाते हों तो दूसरी बार शौच जानेके बाद और एक बार जाते हों तो पहली बार जानेके बाद, एनिमा लेना चाहिए। जिन लोगोंको निरंतर कई दिन एनिमा लेनेकी जरूरत हो वे रातको सोनेके पहले ले सकते हैं।



२. **लेनेका तरीका**—एनिमा सीधे लेटकर अथवा कुहनी और घुटनोंके बलपर होकर पुट्ठेको ऊपर करके (चित्र के अनुसार) भी लिया जा सकता है।

३. **पानी पीना**---एनिमा लेनेके तुरत पहले आध सेर गरम अथवा ताजा पानी पीना लाभदायक है।

४. **टांगनेकी ऊंचाई**---एनिमाका बैग या बर्तन चार फुटसे ज्यादा ऊंचाईपर नहीं रहना चाहिए। ज्यादा ऊंचाईपर रखनेसे पानी अंदर जोर-से जाता है, इससे हाजत जल्दी हो जाती है।

५. **पानीकी मात्रा**---आंतोंमें ५ सेरतक पानी लेनेकी जगह है, लेकिन किसी जानकारकी देखरेखके बिना इतना पानी नहीं लेना चाहिए। आरामसे जितना लिया जा सके उतना ही लेना चाहिए। आरंभमें लोग थोड़ा ले पाते हैं। अभ्यास होजाने पर अढ़ाई सेर पानी आसानीसे लिया जा सकता है। पहले दिनोंमें दो-अढ़ाई सेर लेना चाहिए, लेकिन अधिक दिनों-तक लेनेकी जरूरत हो तो पानीकी मात्रा कम कर लेनी चाहिए।

६. **पानीकी गरमी**---पानी पहले कई दिनोंतक इतना गरम लेना-चाहिए कि हाथको बरदाश्त हो सके। हाथ जितना गरम पानी बरदाश्त कर लेता है उतना आंतें भी कर लेती हैं। ११०° से ११५° डिग्री (फारेन-हाइट) तकका गरम लिया जा सकता है। नाजुक लोगोंको या ज्यादा दिनों तक लेनेकी जरूरत होनेपर पानी कम गरम या ताजा लेना चाहिए। अथवा गरम लेनेके बाद शौचसे लौटकर पावभर ठंडे पानीका एनिमा लेकर उस पानीको आंतोंमें पड़े रहने देना चाहिए।

७. **पानीमें क्या डालें ?**---अढ़ाई सेर पानीमें, सुलभ हो तो, खट्टे नींबूका दो तोला रस डालना चाहिए। पानी और नींबूके रसको साफ कपड़ेसे छान लेना चाहिए। अढ़ाई तोला शहद भी अढ़ाई सेर पानीमें मिलाया जा सकता है। जिनका कोठा कड़ा हो, वे अढ़ाई सेर पानीमें एक तोला पिसा हुआ नमक मिला सकते हैं। छोटे बच्चोंको उम्रके अनुसार एनिमामें पाव-डेढ़ पाव सादा पानी काफी होता है।

८. **घुंडी खोलना**---एनिमा लेनेके पहले नलीकी घुंडी (नोजल) को खोलकर दो तोला पानी निकाल देना चाहिए। इससे हवा निकल जाती है और मालूम हो जाता है कि नलीमें पानी ठीक आ रहा है या नहीं।

गुदामें डालनेवाली नलीको घी या किसी मीठे तेलसे चुपड़ लेना चाहिए। एनिमा ले चुकनेके बाद इस नलीको साबुन और गरम पानीसे धोकर रखना चाहिए।

९. **बीचमें पाखाना**—लेते-लेते जोरकी हाजत हो जाय तो पाखाने जा आना चाहिए और यह मालूम हो कि पूरी सफाई नहीं हुई है तो फिर आकर एनिमा लेना चाहिए।

१०. **रुकना**—एनिमा लेनेके बाद तीन-चार मिनटतक रुकना और दायें-बायें करवट लेना अच्छा है। इससे मल अंदर पानीमें घुल जाता है।

११. **पानी लेनेमें समय**—२॥ सेर पानी लेनेमें ८-१० मिनटसे ज्यादा नहीं लगने चाहिएं।

१२. **एनिमाके बाद शौच**—कई बार ऐसा होता है कि एक बारके शौच जानेमें ही सारा पानी नहीं निकलता। थोड़ी देरके बाद हाजत हो तो फिर जाना चाहिए। बचे हुए मलसहित पानी निकल जायगा। अगर आंतोंमें पानी रह गया तो घंटे-दो घंटेमें पेशाब द्वारा निकल जायगा। उसके लिए चिंतित होनेकी जरूरत नहीं है।

एनिमाका पानी निकालनेके लिए गुदापर ज्यादा जोर नहीं डालना चाहिए, न पाखानेसे जल्दी उठकर भागना चाहिए। दस-बीस मिनट आरामसे बैठे रहनेसे पानी मलको घुलाकर अपने आप निकलेगा।

१३. **दो बार एनिमा**—अगर एक बार एक एनिमासे मल साफ न हो या कोठेमें मल ज्यादा होनेकी शंका हो तो एकके बाद दूसरा और तीसरा एनिमा भी लिया जा सकता है। पर यह चीज कभी-कभी ही ठीक हो सकती है। रोज दो-दो तीन-तीन बार एनिमा लेना ठीक नहीं। कुछ लोग रसाहारमें सुबह-शाम दो समय एनिमा लेना पसंद करते हैं, लेकिन ऐसा किसी जानकार चिकित्सककी सलाहसे ही करना चाहिए।

१४. **शौच-स्थान**—शौचका स्थान एनिमा लेनेके स्थानसे ज्यादा दूर नहीं होना चाहिए। जितना पास हो उतना अच्छा है।

१५. **गर्भावस्थामें एनिमा**—जिन स्त्रियोंको गर्भके समय उल्टी

वगैरहके उपद्रव होते हैं वे अगर खान-पान, व्यायाम आदि ठीक रखनेके साथ-साथ कुछ दिनोंतक एनिमा लें तो उनकी बहुत-सी पीड़ाएं दूर हो जायंगी।

१६. **नहाना**—एनिमासे पेट साफ कर लेनेके बाद तुरत नहानेमें कोई हानि नहीं है। बल्कि उससे स्फूर्ति आती है। नहानेका पानी गरम या ठंडा अभ्यासके अनुसार, लेना चाहिए।

१७. **खाना**—खानेके बाद फौरन एनिमा नहीं लेना चाहिए। खाली पेट या खानेके तीन-चार घंटे बाद लेना अच्छा है। लेकिन खानेके बाद अगर कभी तत्काल दर्द वगैरहके कारण पेटसे मल निकालनेकी जरूरत हो तो एनिमा लेनेमें कोई हर्ज नहीं है। एनिमा लेकर फारिग होनेके बाद भोजन करनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

१८. **उपवासमें एनिमा**—बहुत जरूरी है। बिना एनिमाके उपवास करना हानिकारक ही है। एनिमासे उपवास आसान हो जाता है। उपवास-कालमें आंतोंमें खुराकका—ऊपरका बोझ न पड़नेके कारण भीतर पड़ा मल अपने-आप आगे नहीं सरकता और एनिमा न लिया जाय तो वह अंदर सड़ेगा और उसमें पैदा हुआ विष शरीरके खूनमें मिल जायगा।

२. मिट्टीकी पट्टी

मिट्टी बहुत उपयोगी वस्तु है। शरीरके जिस हिस्सेपर मिट्टी-की पट्टी रखी जाती है उसके नीचे तथा आस-पासके भागकी भीतरी गरमी-को वह खींच लेती है। इसीलिए मिट्टीकी पट्टीकी ठंडक धीरे-धीरे कम होती जाती है। लगभग पौन घंटेमें और कभी-कभी आध घंटेमें ही, ठंडक बिल्कुल चली जाती है, मिट्टीका पानी सूख जाता है। इस प्रकार गरमीके दूर होनेसे वहां पैदा हुई शिथिलता जाती रहती है और आंतोंमें गतिशीलता आ जाती है। यही कारण है कि मिट्टीसे तत्काल फायदा मालूम होता है। कब्ज दूर करनेके उपायमें मिट्टीकी पट्टी कुदरती उपचारका एक विशेष अंग बन गया है। चोट, सिरके भारीपन, पेटके दर्द, फोड़े तथा डंक आदिपर भी उसका सफलतापूर्वक प्रयोग होता है।

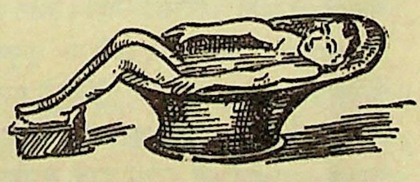
मिट्टी बहुत साफ होनी चाहिए, लेकिन ज्यादा चिकनी या रेतीली नहीं, न खादवाली। खूब मुलायम हो, कंकरीली नहीं। अगर कहीं मिट्टी सूखी न मिलती हो तो उसे धूपमें सुखाकर कूटकर महीन करके रख छोड़ें। जमीनकी ऊपरी सतहकी मिट्टी प्रायः साफ नहीं मिलती, एक-डेढ़ फुट नीचे खोदकर अच्छी मिट्टी पाई जा सकती है।

साफ मिट्टीको ठंडे पानीसे गूंधकर करीब आध इंच मोटी पट्टी बनानी चाहिए। एक बार इस्तेमालकी हुई मिट्टीको दूसरी बार काममें नहीं लाना चाहिए।

३. स्नान

कटि-स्नान

व्यक्तिके डीलडौलके हिसाबसे छोटा या बड़ा टब लेना चाहिए। उसमें पानी उतना भरना चाहिए कि बैठनेपर जांघका ऊपरी हिस्सा और पेड़ू पानीमें रहे। पानी ६४ से ६८ डिग्री फारेनहाइटका होना चाहिए, अथवा कुएं-नल या नदीसे जिस मौसममें जैसा ताजा पानी मिले। पानीके अंदर अंदर पेड़ूको नाभिसे एक मोटे, खुरदरे तौलिएसे नीचेकी ओर तथा दाहिने-से बायें और बायेंसे दाहिने, बिना रुके तेजीसे मलना चाहिए। शरीरमें ठीक-ठीक ठंडक आ जानेतक मलना जारी रखना चाहिए। शुरूमें पांच-दस मिनट काफी होंगे। बादको कुछ समय—२०-२५ मिनटतक बढ़ाया जा सकता है। पर बहुत



कमजोरों तथा बच्चोंके लिए तो कुछ ही मिनट बस होंगे। ध्यान रखें कि नाभिसे ऊपरका तथा जांघसे नीचेका हिस्सा ठंडा न किया जाय। उन हिस्सोंमें प्रायः रक्तकी कमी रहती है, इसलिए उन्हें ऊनी कपड़ेसे ढंक देना चाहिए। कटि-स्नानके बाद शरीरको तुरत गरमाना चाहिए। खुली

हवामें तेजीसे टहलने जाकर या दूसरा कोई व्यायाम करके गरमी लानी चाहिए। नाजुक दशावाले या बहुत नाजुक रोगियोंको गरमी लानेके लिए कंबल उढ़ाकर बिस्तरोंमें लिटाया जा सकता है। यदि गरमी देरसे आती हो तो पेड़ू पर एक ऊनी पट्टी काममें लानी चाहिए।

ऐसे कटि-स्नान दिनमें एकसे तीन बारतक लिये जा सकते हैं। कितनी देरतक लेना और पानी कितना ठंडा रखना यह रोगीकी दशा देखकर तय करना चाहिए।

बहुतोंको इसके बदलेमें मेहन-स्नान ठीक हो सकता है अथवा एक वक्त मेहन-स्नान और एक वक्त कटि-स्नान भी लिया जा सकता है।

मेहन-स्नान

यह स्त्री-रोगोंके लिए विशेष रूपसे आवश्यक है।

उपर्युक्त टबमें एक छोटी चौकी रख दी जाती है। टबमें पानी इतना डालना चाहिए कि चौकीका सिर्फ तख्ता ऊपरसे सूखा रहे, बाकी हिस्सा पानीमें आ जाय। रोगीको उस चौकीपर बैठकर और खद्दरके छोटे तौलिएको पानीमें भिगोकर जननेंद्रियको (योनिके ऊपरी हिस्सेको) धीरे-धीरे धोना चाहिए। तौलिएमें जहांतक संभव हो अधिक-से-अधिक पानी उठाकर धोना चाहिए। यह आवश्यक है कि जननेंद्रियकी बाहरी जिह्वाको धोना चाहिए, जननेंद्रियके भीतरी हिस्सेको नहीं। और ऊपर-नीचे किसी तरफसे रगड़ना नहीं चाहिए। उसके बाद रोगी या शुश्रूषकको धीरे-धीरे कमरको ऊपर-नीचेसे तथा दायें-बाएंसे गीले तौलिएसे मल देना चाहिए। पुट्ठोंको भी। इस स्नानमें भी पैरका भाग तथा शरीरके ऊपरका हिस्सा सूखा रखना चाहिए। स्नानके बाद शरीरमें गरमी लानी चाहिए—उसी तरह जिस तरह कटि-स्नानमें बतलाई गई है।

मासिकके दिनोंमें यह स्नान बंद रखना चाहिए। पर यदि रक्त बहुत अधिक आता हो यानी रक्त-प्रदरकी तरहकी शिकायत हो तो उन दिनों भी यह स्नान जारी रखा जा सकता है। लेकिन यह इस चिकित्साके किसी जान-

कारकी सलाहसे ही करना चाहिए।

मासिकका काल तीन या चार दिनका मानना चाहिए। इससे ज्यादा दिन लगना अस्वाभाविक है और यह रोगकी गिनतीमें है। वैसी दशामें चार दिनके बाद मेहन-स्नान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

मेहन-स्नानके लिए पानी ५९ से ६० डिग्री तकका ठंडा लेना अच्छा होगा। पर इतना ठंडा न मिले तो रातको मिट्टीके घड़ोंमें रखकर ठंडा किया हुआ लेनेसे काम चल सकता है।

रोगीकी उम्र और दशाके अनुसार यह स्नान दस मिनटसे एक घंटे तक लिया जा सकता है। पर जाड़ेमें कमरेमें आरामदेह गरमी होनी चाहिए।

पानी इस स्नानमें जितना ठंडा रहेगा, लाभ उतना अधिक मिलेगा, लेकिन रोगीकी बरदाश्तके बाहर ठंडा नहीं होना चाहिए।

मेहन-स्नानके लिए कोई भी टब काममें लाया जा सकता है। टब २५-३० सेर पानी आने लायक होना चाहिए और ऐसा कि उसमें चौकी रखकर उसपर आरामसे बैठा जा सके और पानी चौकीके किनारेतक पहुंच जाय। कम पानी होनेपर उसकी ठंडक जल्दी कम हो जायगी—उसमें गरमी आ जायगी और स्नान का लाभ पूरा न मिलेगा। यदि बहता पानी मिले तो बहुत अच्छा है अथवा पानीको कुछ समय धूपमें रखकर तब काममें लाना चाहिए। लेकिन दिनमें धूपमें रखनेके बाद घड़ोंमें रखें और ठंडा हो जानेपर ही काममें लाएं।

मर्दोंको भी मेहन-स्नान उपर्युक्त विधिसे ही लेना चाहिए। उन्हें लिंगेंद्रियके ढकनेके चमड़ेके अगले सिरेको धोना चाहिए। रोगीको चाहिए कि वह उस सिरेको बांए हाथके अंगूठेके बाद की दूसरी-तीसरी अंगुलीके बीचमें दबाकर—ढकनेको—त्वचाके अग्रभागको आगे बढ़ा ले और उसे पानीमें धीरे-धीरे धोए। आगे बढ़ानेका मतलब यह है कि धोनेमें भीतरी हिस्सेपर कोई रगड़—घर्षण न हो। इन हिदायतोंको स्वयं या किसी जानकार द्वारा अच्छी तरह समझे बिना यह स्नान लाभके बदले हानिकर हो सकता है।

पूर्ण भाप-नहान

यह रोगीको २॥ फुट चौड़ी और ६ फुट लंबी, सुतलीसे बिनी खाटपर लिटाकर, या बेतकी बुनी कुर्सीपर बिठाकर दिया जा सकता है।

खाटपर रोगीको लिटाकर उसके नीचे तीन पतीलियां उबलते पानी-की रख दें—एक रोगीकी पिंडलीके नीचे, दूसरी पुट्ठोंके नीचे, तीसरी कमरके नीचे । उसके बाद रोगीको कंबलसे खाटसहित इस तरह ढक दें कि भाप बाहर न जा सके। रखते समय पतीलियां ढकी रहें, नहीं तो भाप निकल जायगी । जब रोगीपर कंबल डालें तब पती-लियां खोलें। अब रोगीको भाप लगनी शुरू हो जायगी । कंबलसे ढकते समय रोगीका मुंह, सिर सब ढक दें । पर चार-पांच मिनटके बाद सिर और मुंहसे कंबल सरकाकर गलेपर कर दें। रोगीको खाटपर लिटानेके पहले आध सेर अच्छा गरम पानी पिलानेसे पसीना ज्यादा आयेगा । अंगीठी या चूल्हेपर एक चौथी पतीली उबलते पानीकी और रखनी चाहिए। आठ-दस मिनट बाद उस पतीलीको पुट्ठेवाली पतीलीसे बदल दें । जब इस पतीलीका पानी फिर उबलने लगे तो उसे कमरवाली पतीलीसे बदल दें। पिंडलीवाली पतीली बदलनेकी प्रायः जरूरत नहीं होती।

२०-२५ मिनटमें रोगीके शरीरसे पसीना टपकने लगेगा । रोगी-के सिरपर ठंडे पानीमें भिगोकर निचोड़ा हुआ एक अंगोछा रख देना चाहिए और बीच-बीचमें उसे भिगोते रहना चाहिए। पसीना गरमीमें जल्दी आता है, जाड़ेमें समय अधिक लगता है। रोगीकी प्रकृतिकी भिन्नता-के कारण भी किसीको जल्दी और किसीको देर से आता है। पसीना पहले पीठपर लगने दें, फिर दायें-बायें करवट बदलकर लें तब पेटकी तरफ।

छोटे बच्चेको भाप सिर्फ एक पतीली कमरके नीचे रखकर दें।

अगर खाटके बजाय बेतकी बुनी कुर्सीपर देना हो तो कुर्सीके नीचे सिर्फ एक पतीली रखनेसे काम चल जाता है। यदि रोगीको पसीना देरसे

आता हो तो उसके पैरोंको उस समय गरम पानीमें रखना चाहिए। रोगी, कुर्सी और पतीलीको इस तरह ढकना चाहिए कि भाप बाहर न जाय।

हमेशा यह खयाल रखना चाहिए कि भाप इतनी तेज न हो कि रोगीको असह्य होजाय। ज्यादा तेज होनेसे त्वचा जलनेका डर रहता है। पसीना पंद्रहसे बीस मिनटतक बहने देना चाहिए। शरीरके जिन भागोंमें दोषकी अधिकता होती है उसमें पसीना देरसे आता है और रोगी ऐसे स्थानोंमें अधिक गरमी लगाना चाहता है। उसकी इच्छा पूरी करनी चाहिए। इससे भाप-नहानका उद्देश्य पूरा होता है।

ज्यादा कमजोर तथा खतरनाक दशाके तथा नाड़ी-दौर्बल्यसे पीड़ित रोगियोंको भाप-नहान नहीं लेना चाहिए। इन्हें मेहन और कटि-स्नानके साथ धूप-नहान जोड़ लेनेसे वही लाभ मिलेगा।

जिन्हें स्वभावतः आसानीसे पसीना आता हो उन्हें भाप-नहान लेनेकी आवश्यकता नहीं होती। बहुत कमजोरोंको भी भाप-नहानसे बचना चाहिए।

भाप-नहानके बाद ठंडे पानीसे पंद्रह-बीस मिनटका कटि-स्नान लेना अत्यावश्यक है। इस कटि-स्नानके पहले या अंतमें छाती, हाथ, पैर, सिर और गर्दनको भी फुर्तीसे धो डालना चाहिए, जिसमें उनकी सफाईके साथ-साथ शरीरमें ठंडक आ जाय। पसीनेके बाद ठंडे पानीसे नहानेमें डरनेकी जरूरत नहीं।

इस कटि-स्नानके बाद शरीरमें कसरतसे इतनी गर्मी लानी चाहिए कि जिसमें हल्का पसीना चमक आये। मजबूत रोगी खुली हवामें, खासकर धूपमें कुछ कसरत करके गर्मी ला सकते हैं। ज्यादा कमजोर रोगी कमरेकी खिड़कियां खुली रखकर रजाई ओढ़कर बिस्तरमें लेटे।

रोगीको भाप देनेके लिए एक सहायककी आवश्यकता होती है। भाप लेना बहुत आसान होनेपर भी किसी जानकारसे समझ लेना चाहिए। बिना समझे देनेसे हानि उठानी पड़ती है।

धूप-नहान

यह धूपमें तेजी होनेपर ही—१० से ३ बजे तक—लिया जा सकता है। चटाई, कंबल या तख्तपर, लंगोटी लगाकर, पैरसे गलेतक एक बहुत पतला कपड़ा ओढ़कर—जिसमें तेज हवा न लगे—लेट जायं। स्त्रियां सिर्फ एक पतली साड़ी पहनकर लेटें। सिर और चेहरेको सूर्य-किरणों-से बचानेके लिए केलेका पत्ता या नीम-जैसी छोटी पत्तियोंका झुप्पा अथवा गीला कपड़ा रख सकते हैं। इसी प्रकार पेडूपर भी कपड़ा न रखकर पत्ता या गीला कपड़ा रखना चाहिए।

धूप-नहान आध घंटेसे डेढ़ घंटेतक लिया जा सकता है। जिन्हें पसीना जल्दी न आता हो वे और भी देरतक—थकान न आनेका खयाल रखकर—ले सकते हैं। अधिक गरम दिनोंमें अधिक देरतक न लें।

जिन्हें पहले-पहल धूप-नहान लेनेपर सिर-दर्द या अवसाद जान पड़े उन्हें समय धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। यह उन्हींके लिए है जिन्हें शीघ्र पसीना न आता हो या बड़ी मुश्किल से आता हो।

धूप-नहानके बाद २०-२५ मिनटका ठंडा कटि-स्नान या मेहन-स्नान लेना चाहिए। जिन मरीजोंको इन स्नानोंके बाद शीघ्र गरमी न आती हो उन्हें फिर थोड़ी देर धूपमें बैठना या टहलना चाहिए। नाजुक मरीजोंको आरंभमें धूप-नहान कुछ कड़ा पड़ सकता है।

खाना खाये हुए दो अढ़ाई घंटे होनेपर लेना चाहिए। इसके लेनेके आध घंटे बाद खाना खाया जा सकता है।

गांठों, बाहरी या भीतरी घावों तथा दर्दवाले स्थानोंपर धूप-नहान-से बहुत लाभ होता है। उन-उन स्थानोंको केलेके बड़े पत्ते या छोटी पत्तियोंके झुप्पेसे ढककर धूप देनी चाहिए।

अनुक्रमणिका

प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी पुस्तकें

□

कब्ज, कारण और निवारण

मैं तन्दुरुस्त हूं या बीमार ?

सरल योगासन

तन्दुरुस्ती हजार नियामत

बीमारी कैसे दूर करें ?

प्राकृतिक चिकित्सा : क्या व कैसे ?

वैज्ञानिक मालिश

नवीन चिकित्सा

नीरोग होने का सच्चा उपाय

आकृति से रोग की पहचान

प्राकृतिक चिकित्सा के चमत्कार

□□

सस्ता साहित्य मण्डल